आञ्जनेयकी आत्मकथा

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

'श्रीकृष्ण-सन्देश'

[आध्यात्मिक मासिक पत्र]

—इसका वर्ष जनवरी से प्रारम्भ।

—'श्रीकृष्ण' सन्देश प्रतिमास ९६ पृष्ठ पाठ्य सामग्री देता है।

—आप श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र' की सशक्त लेखनशैली से इस ग्रन्थ के द्वारा परिचित हो गये हैं।

—'श्रीकृष्ण-सन्देश' में श्री 'चक्र' द्वारा लिखित श्रीकृष्ण चरित प्रति अङ्क ४८ पृष्ठ और उन्हीं द्वारा लिखित 'श्रीराम चरित' प्रति अङ्क ३२ पृष्ठ जारहा है।

—वार्षिक शुल्क १०)

—आजीवन शुल्क १५१)-

सम्भव हो तो आजीवन ग्राहक बनें।

व्यवस्थापक श्रीकृष्ण-सन्देश
श्री कृष्ण जन्मस्थान सेवासंघ
मथुरा—२८१००१

स्वर्गीय श्रीबनारसीलालजी झुनझुनवालाकी पुण्य-स्मृतिमें
मानस चतुश्शती समापन समारोह, चाकुलिया (बिहार) के अवसरपर
६-११-१९७६ को प्रकाशित

आञ्जनेय की आत्मकथा

लेखक :

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

प्रकाशक :
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवासङ्घ,
मथुरा-८१००१

प्रथमावृत्ति-सन् १९७६ ई०
संस्करण-४०००
मूल्य-९) रु०

मुद्रक :
हर्षगुप्त
राष्ट्रीय प्रेस,
डैम्पियर नगर,
मथुरा।

रोम-रोममें राम

अनुक्रमणिका

१. मङ्गलाचरण — १
२. अपनी बात — २
३. उपक्रम — ५
४. आविर्भाव — १०
५. हनुमान — १६
६. बाल चापल्य — २७
७. मातृ स्मरण — ३०
८. शिक्षा — ३३
९. अयोध्यामें — ३६
१०. किष्किन्धामें — ४८
११. विपत्तिके साथी — ५२
१२. आराध्य आये — ५८
१३. सुग्रीवसे मैत्री — ६३
१४. उद्बोधन — ६८
१५. अन्वेषणका आरम्भ — ७२
१६. अन्वेषण–यात्रा — ७८
१७. सम्पातीसे साक्षात् — ८७
१८. समुद्र-लंघनकी समस्या — ९१
१९. समुद्र-लंघन — ९६
२०. अन्वेषणसे पूर्व — १०२
२१. अम्बाका अन्वेषण — ११०
२२. अम्बाका दर्शन — ११७
२३. अम्बाका आशीर्वाद — १२१
२४. फलाहार : वाटिका-विध्वंस — १३१
२५. रावणकी सभामें — १३९
२६. लंका-दहन — १४४
२७ प्रत्यावर्तन — १५१
२८. प्रभुके पादपद्मोंमें — १५६
२९. लंकेश्वर विभीषण — १६१
३०. सागरपर सेतु — १६९
३१. सुबेल-शिखर — १७५
३२. लंकाकी समर-भूमि — १८०
३३. संजीवनी आनयन — १८५
३४. अहिरावण उद्धार — १९६
३५. भगवती भूमिजा आयीं — २०५
३६. हनुमदीश्वर — २१०
३७. जननीका अपनत्व — २१४
३८. श्र रामदूत — ११८
३९. अयोध्यामें आनन्दके दिन — २२२
४०. आराध्यसे युद्ध — २३१
४१. तत्वोपदेश — २३९
४२. कथा-लेखन — २३६
४३. अश्वमेधीय अश्वके साथ — २४७

४४. मेरा वरदान २५०
४५. मैं निमित्त बना गर्व--हरणमें २५१
४६. अर्जुनसे साक्षात्कार २५६
४७. भीमसेनसे भेंट २५९
४८. शनिसे सामना २६२
४९. रामदास मिले २६४
५०. तुलसीकी तुष्टि २६६
५१. उपसंहार २६६
५२. परिशिष्ट २७०
(क) स्वरूप एवं वैशिष्ट्य २९५
(ख) अनुष्ठान २९९
(ग) स्तुति ३००
(घ) श्रीहनुमानजीका-महामन्त्र ३०२
(ङ) सङ्कटमोचनाष्टक ३०३
(च) आरती ३०५
(छ) लाङ्गूलोपनिषत् ३०६

———

श्रीआञ्जनेय

आञ्जनेयकी आत्मकथा

अतुल बल, अमित तेज, ज्ञानधाम—

अप्रमेय,

(श्री) राम चरण पंकज चारु चञ्चरीक

आञ्जनेय !

राम-श्याम स्वजनोंके सहायक स्वजन नित्य

सर्वकाल संकटमें स्मरण अभयदेय !

कृपा यह—श्यामका स्मरण चित्त चाह वृद्धि—

देहका ममत्व—भोग, अन्तरमें रहे हेय !

२–अपनी बात

'आञ्जनेय' लिखा गया था सन् १९३७ में। उस समय मैं मेरठमें 'संकीर्तन' मासिकका सम्पादक होकर आया था। 'आदेश' के सम्पादक भाई श्रीमदनगोपाल सिंहजी प्रायः 'संकीर्तन' कार्यालयमें शामको मेरे पास आजाते थे। उनके साथकी चर्चाओंमें श्रीहनुमान-चरितकी बात आयी तो उन्होंने आग्रह प्रारम्भ कर दिया—'इसे पहिले लिख दीजिये।'

उन दिनों लिखनेकी धुन थी। शरीर कुल २६ वर्षका होनेसे उत्साह था। मुझे स्मरण है, एक अध्याय प्रतिदिनके क्रमसे 'आञ्जनेय' शीघ्र ही पूरा हो गया था। नगरसे बाहर सूर्यकुण्डपर श्रीमनोहरनाथके मन्दिरमें रहता था। अब तो वहाँ तक नगरका विस्तार हो चुका है। प्रातःकाल अपने नित्यकर्मसे निवृत्त होकर लिखने बैठ जाता था। अध्याय पूरा करके तब कार्यालय दस बजेके लगभग पहुँचता था।

लिखते समय पुस्तकें रखने-देखनेका अभ्यास नहीं है। मनोहरनाथमें तो मेरे पाठका ग्रन्थ श्रीमद्भागवत मात्र था। लेकिन मैं कुछ लिखता हूँ, यह बात तो सत्य नहीं है। लेखनी मैंने अपने कन्हाईसे माँगी थी और इस प्रकार श्यामने मुझे लेखक होनेका सुयश दिया है। जब मुझे स्वयं लिखना-सोचना नहीं तो मैं ग्रन्थ पढ़नेके पचड़ेमें क्यों पड़ूँ। बिना कुछ पढ़े, बिना किसी तैयारीके लिखने बैठ गया था। आपको अद्भुत लग सकता है, लेकिन जो उत्तम कोटिके विद्वान हैं वे अच्छा, भ्रान्तिहीन लेखन प्रवचन कर सकते हैं अथवा जो सर्वथा अपठित है, वह अपनी बात बिना हिचक कह सकता है। मैं लगभग अपठित हूँ यदि आप हिन्दी माध्यमिक शिक्षा (सातवीं कक्षा तक) को ही पठन न मानते हों। मेरे कन्हाईको तो बाबाने पढ़ाया ही नहीं। ब्रजराज कुमारने तो पाँच वर्षकी आयुसे ही बछड़े चराने प्रारम्भ कर दिया। ऐसोंको लिखना था, अतः जो भी मनमें आता गया, लेखनी कागज काला करती गयी।

'आञ्जनेय' मेरी दूसरी पुस्तक थी—ठीक गणना करूं तो चौथी। क्योंकि सबसे पहिले मैंने गोस्वामी तुलसीदासजीकी 'कृष्ण-गीतावली' की टीका की। यह पीछे 'मानसमणि' (रामवन-सतना) और 'परमानन्द'

(कलकत्ता) में क्रमशः प्रकाशित हुई। वाराणसीके ग्राम महराईसे झूसी (प्रयाग) श्रद्धेय श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराजके अखण्ड-सङ्कीर्तन अनुष्ठान यज्ञके दूसरे सत्रमें सम्मिलित होनेपर सन् १९३५ में 'शतदल' लिखा गया। यह सौ गीतोंका संग्रह है। अभी अप्रकाशित है, यद्यपि उसके बहुतसे गीत 'कल्याण' 'संकीर्तन' आदि पत्रोंमें समय-समयपर छप चुके हैं। अभी तो वह तुलसी-संग्रहालय रामवनकी चक्र-पेटिकाकी शोभा है। सन् १९३६ में वृन्दावन आनेपर मैंने अपना पहिला श्रीकृष्ण-चरित 'त्रिभुवन सुन्दर' के नामसे लिखा। यह 'संकीर्तन' के ही सन् १९३९ के विशेषाङ्क 'श्रीकृष्ण-चरिताङ्क' के रूपमें प्रकाशित हुआ। इसके अनन्तर 'आञ्जनेय' लिखा गया। इसको 'संकीर्तन' कार्यालयने ही प्रकाशित किया।

'संकीर्तन' तो श्रीकृष्ण-चरिताङ्क प्रकाशित करके बन्द हो गया। मैं 'मानस-मणि' का सम्पादक होकर रामवन (सतना-म० प्र०) आ गया। लेकिन 'आञ्जनेय' लोगोंको इतना रुचा था कि उसका प्रथम संस्करण डेढ़-दो वर्षमें समाप्त हो गया था। बहुतोंने उसे अपने नित्य पाठका ग्रन्थ बना लिया था। मानससंघ, रामवनसे उसका किञ्चित परिवर्धित संस्करण 'श्रीहनुमान-चरित' के नामसे प्रकाशित हुआ। तब अनेक वर्षोंसे वह भी अप्राप्य हो चुका है।

मैं चाहता था कि 'भगवान वासुदेव' 'श्रीद्वारिकाधीश' 'पार्थ-सारथि' के पश्चात् 'नन्दनन्दन' लिखनेके साथ जब यह विशाल श्रीकृष्ण-चरित पूरा हो गया तो लेखनी रख दूँ; किन्तु लेखनी जिसने दी है, उसे यह जब स्वीकार हो तब यह हो। उसकी इच्छा पूर्ण हो। प्रिय श्रीविष्णुहरि डालमियाका आग्रह है कि मुझे लिखना चाहिए। हाथमें उत्पन्न कम्पनको वे बाधा माननेको प्रस्तुत नहीं। उनका तर्क है—'आप लिख नहीं सकते, पर बोल तो सकते ही हैं।'

शीघ्रलेखनकी सुविधाने मुझे उत्साहित किया। 'शिव-चरित' लिखवा रहा हूँ। उसके पूर्ण होनेसे पहिले ही यह 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' प्रारम्भ करनेका अर्थ इतना ही है कि जो चार चरित लिख-लिखवा देनेका संकल्प उठ गया है, वह पूरा हो जाय। श्रीकृष्ण-चरित तो 'श्रीकृष्ण सन्देश' में क्रमशः प्रकाशित हो रहा है। 'शिव चरित' जैसा क्रम चल रहा है— उसके अनुसार शीघ्र पूर्ण हो जायगा। अब यह 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' और इसके पश्चात 'श्रीराम-चरित।'

'कल्याण' के सन् १९७५ के विशेषाङ्क 'हनुमान अंक' में भाई श्री शिवनाथजी दुबे द्वारा लिखा गया विस्तृत 'हनुमान-चरित' प्रकाशित हो गया। अतः श्रीरामदूतके भक्तोंको एक अच्छा चरित अपने आराध्यका प्राप्त हो गया है। अब उसी चरित शैलीमें फिरसे 'हनुमान-चरित' लिखनेकी आवश्यकता मुझे नहीं लगती। लेकिन भगवच्चरित और सर्वेश्वरके सर्वात्मना सेवकों-भक्तोंका चरित दूसरोंको दृष्टिमें रखकर, पाठकों अथवा साहित्यकी आवश्यकता देखकर नहीं लिखे जाने चाहिए। भगवच्चिन्तन, भक्तचिन्तन चिन्तकके हृदयको पवित्र करके भगवन्मय बनाता है, यही सर्वोत्तम फल है इस चिन्तनका। इस परम लाभसे मैं क्यों वञ्चित रहूँ।

भगवच्चरितकी अपेक्षा भक्त-चरितका लेखन अधिक कठिन है। भगवान तो सर्वरूप, सर्वात्मक हैं। वे सबके भावोंको सार्थक करते है। उन सत्यस्वरूपके श्रीचरणोंसे लगकर समस्त कल्पनाएँ सत्य-सार्थक हो जाती हैं। उनके सम्बन्धमें कोई भी कुछ भी सोचे—कुछ असम्बद्ध नहीं है। वे तो घोषणा कर चुके हैं—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।' —गीता

लेकिन भक्तोंकी तो अपनी अपनी निष्ठा होती है। उनके अपने भाव हैं और वे अत्यन्त दृढ़ हैं। उसमें परिवर्तनके लिए स्थान नहीं है। फिर मैं तो 'आत्म चरित' लिखने चला हूँ। आशा इतनी ही है कि राघवेन्द्रके नाते-उनका वंशज होनेके नाते श्रीपवन-पुत्रका स्नेह मेरा स्वत्व है। वे मंगल-मय हृदयारूढ़ होकर वाणीको, करको बल-वैभव देंगे और मेरा कन्हाई सम्हालता-सजाता चलेगा। इसी आस्थापर यह धृष्टता प्रारम्भ कर रहा हूँ।

जय जय श्री रघुवीर समर्थ !
जय जय श्री रामदूत-पवनपूत आञ्जनेय !

अतिथि-भवन
उड़िशा सिमेंट लि०
राजगंगपुर-७७००१७
शनिवार-भाद्र पूर्णिमा संवत् २०३२ वि०

—सुदर्शन सिंह

३—उपक्रम

आत्मचरित-कथन, प्रकाशन किसी भी शिष्ट व्यक्तिके लिए अत्यन्त अप्रिय कार्य है। आत्मचरित-वर्णन अर्थात् आत्म-प्रशंसा और यह प्रशंसा सत्य भी हो तो भी शास्त्र इसे आत्महत्याके तुल्य कहते हैं। मेरे लिए तो यह सत्य भी नहीं है। मेरे शरीरसे जितने कार्य हुए—विशेषतः जिन्हें महान कार्य लोग कहते हैं, उन्हें किया तो मेरे सर्वसमर्थ स्वामीने; किन्तु मुझ जैसे तुच्छ कपिको अपना माध्यम बनाकर यशभाजन बना दिया। अब लोक कुछ भी कहे, मैं स्वयं इन कर्मोंको अपना कहूँ तो अपनी ही अनुभूतिके विपरीत बोलनेके कारण सत्यवादी कहाँ रह जाता हूँ। अतः मेरे लिए आत्मचरित-वर्णन मिथ्याभिमान, अपनी ही अनुभूतिके विपरीत असत्य कथन होनेसे अत्यन्त अप्रिय कार्य है।

यह सब ठीक होनेपर भी मेरी विवशता है। माँ श्रीविदेहनन्दिनी भले मुझे अपना परमप्रिय पुत्र मानती हैं, यह उन अनन्त वात्सल्यमयीका स्नेह है; परन्तु मैं तो उनके और श्रीराघवेन्द्रके परम सुकुमार चारु-चरणोंका अत्यन्त तुच्छ सेवक ही हूँ। मेरे लिये श्रीसीतारामके सभी उपासक सम्मान्य हैं, सेव्य हैं। ऐसी अवस्थामें रघुकुलजात कुमारोंको मैं सम्मान्य, सेवनीय मानता हूँ। यह तो कहनेकी बात ही नहीं रह जाती।

मेरे आराध्यने मुझे कल्पान्त अमरत्व दे दिया है। फलतः लव-कुश और उनके वंशमें बहुत पीछे उत्पन्न कुमारोंमें कोई महत्व सम्बन्धी अन्तर कर लेना मुझे कठिन ही नहीं—अनुचित भी लगता है। मेरे चिद्घन नित्य-स्वामीके लिए देश-काल कोई अर्थ नहीं रखते। देश-काल उनमें कल्पित हैं। अतः जो उनके हैं—जो अपनेको उनका मानते हैं, वे सब उनके प्रत्यक्ष सान्निध्यमें ही हैं। इसलिए जो उनके हैं—उनके वंशजात हैं वे कहीं भी हों, मुझे तो उनके श्रीचरणोंके समीप ही दीखते हैं। वे सब मेरे लिए सम्मान्य हैं।

मैं सामान्य कपि हूँ। रघुवंशी कुमारोंके समीप आकारमें भी उनसे छोटा ही रहता हूँ। वे मेरे स्कन्धारूढ़ हों, मेरे कानों या लांगूलसे क्रीड़ा करें, यह तो मेरे लिए भी बहुत आह्लाददायी है; किन्तु ये कथा-श्रवणके

प्रेमी कुमार जब आग्रह करने लगते हैं--'पवन-नन्दन ! हम तो आपका चरित सुनेंगे !' मैं बहुत संकोचमें पड़ जाता हूँ।

चरित प्रभु श्रीराघवेन्द्रका श्रवण-मनन-चिन्तन-वर्णनके योग्य है। श्रीसीतारामका चरित-गान सचराचरको पवित्र करता है। मेरा चरित क्या—एक कपिके चरितकी चर्चा क्यों ? लेकिन बालक मेरा कोई तर्क नहीं सुनते। सभी मुझे विकट कहते हैं; पर बालकोंकी हठसे क्या अधिक विकट हूँ मैं ! इन कुमारोंकी हठने मेरे चराचरसे अजित प्रभुको ही पराजित कर रखा है, मैं किस गणनामें आता हूँ। इसपर भरतलाल हैं, कुमार लक्ष्मण और शत्रुघ्न हैं, मेरी वात्सल्यमयी माँ श्रीजनकनन्दिनी हैं—इन सबको अपने कुलके शिशुओंका समर्थन करना है। सबको पता नहीं, वानरके चरित-श्रवणमें क्या रस है कि सब आग्रह करने लगते हैं--'हनुमान ! बालकोंका अनुरोध टाला नहीं करते। कुमारोंका उत्साह-भंग मत करो। तुम तो सर्वज्ञ हो, अपना पूरा चरित सुनाओ। इस प्रकार सुनाओ कि ये समझ सकें—धारण कर सकें।'

मैं न इस आदेशका उल्लंघन कर सकता हूँ न कुमारोंका अनुरोध टाल सकता हूँ। अतः अनौचित्य चाहे जितना हो, मुझे यह अप्रिय कार्य करना पड़ता है। अनेक बार करना पड़ता है।

वानर—उपदेवता

राघव कुमार पूछते हैं—'हनुमानजी ! आपके लांगूल क्यों है ? आपके सम्पूर्ण शरीरपर यह इतनी बड़ी सघन स्वर्णिम रोमावली क्यों है ?'

'इसलिये कि मैं कपि हूँ।'

'नहीं, आप कपि तो नहीं हैं।' रघुकुलके कुमार ऐसे बहकावेमें आते हों, ऐसा मैंने कभी नहीं देखा। वे तर्क करते हैं—'आप कच्छ बाँधते हैं। वस्त्राभरण तथा यज्ञोपवीत धारण करते हैं। वेद-वेदांगोंका आपने अध्ययन किया है। हम सबके समान ही आप नित्यकर्म, स्नान, सन्ध्यादि करते हैं। सुना है, किष्किन्धामें उत्तम भवन हैं।'

मुझे अब तथ्य समझाना पड़ा—'हम उपदेवता हैं। उपदेवता देवताओंसे किञ्चित् निम्न कोटिके होते हैं; लेकिन मानवसे श्रेष्ठ नहीं, मानव तो सृष्टिमें सर्वश्रेष्ठ हैं। तभी तो परात्पर ब्रह्म मानवोंमें अवतीर्ण हुए हैं।'

उपदेवताओंमें अनेक जातियाँ हैं—वानर, ऋक्ष, नाग, किन्नर, यक्ष आदि । इनमें-से जिस जातिके पुरुषोंकी आकृति-प्रकृति, पृथ्वीके जिस पशुसे मिलती-जुलती है, उसे उस पशुके नामसे जाना जाता है । जैसे मेरी आकृति-प्रकृति कपियोंके समान है । जाम्बवानजीकी ऋक्षके समान ।

उपदेव जातियोंमें केवल पुरुषवर्गमें यह आकृतिजन्य विशेषता होती है । नारीवर्ग सर्वथा मानव नारियोंके समान होता है । केवल नाग उपदेव जातिकी नारियाँ यदा-कदा नागिनोंके समान विष-धारण करती हैं और अपने कुलके पुरुषोंके साथ सम्बन्ध रखनेके कारण कण्ठसे नीचेका शरीर सर्पाकार बनाये रहती हैं । अन्यथा सभी उपदेव जातियोंके स्त्री-पुरुष वस्त्राभरण धारण करते हैं । मनुष्योंके समान ही भवन-नगर, शासन एवं शिक्षण-व्यवस्था रखते हैं । उपदेव जातिके पुरुषवर्गमें पृथ्वीके कपि, ऋक्षादिकी आकृति आती है तो इन पशुओंकी सहज शक्ति एवं स्वभाव भी बहुत कुछ आ जाता है ।

'हमने सुना है कि हमारे महाराजाधिराजको लंका-युद्धके समय अपने असंख्य सैनिकोंके लिए आहार एवं आवासकी कोई व्यवस्था नहीं करनी पड़ी ।' कुमारोंने प्रसन्न होकर कहा—'आप सब केवल पाषाण-शिलाओं तथा तरु-शाखाओंका आयुधके रूपमें उपयोग करते थे ।'

'हमारे लिए यह अधिक सुविधाजनक है ।' मैंने कुमारोंको बतलाया कि यद्यपि हम भवनोंमें रहते हैं, मानव-आहार भी करते हैं और धनुर्वेदकी शिक्षा भी ग्रहण करते हैं; किन्तु वृक्षोंकी शाखाओंपर निवास, फल-पत्रादि आहार हमें अधिक प्रिय है । तरु-शाखाओंपर कूदते रहना हमारी प्रिय क्रीड़ा है । क्रोधावेशमें अस्त्र-शस्त्रकी अपेक्षा गिरि-खण्ड तथा तरु-शाखाएँ अस्त्र-शस्त्रके रूपमें उपयोग करना हमारे लिए सुविधाजनक है; क्योंकि कपि-स्वभाव होनेसे हम अस्त्र-शस्त्र रख नहीं सकते । वृक्षोंपर चढ़ने, छलांग लगानेकी सुविधा अस्त्र-शस्त्र रखनेपर बहुत घट जाती है ।

सभी उपदेवता कामरूप होते हैं अर्थात् हम सभी जब जैसा चाहें, वैसा रूप धारण कर सकते हैं । आकारको छोटा—अतिशय छोटा या अकल्पित बड़ा बना लेना हमारे लिए सहज सिद्ध है । मानव अथवा किसी प्राणीका आकार हम इच्छा करते ही ग्रहण कर सकते हैं, उस आकारमें चाहे जब तक रह सकते हैं ।

'तब आप सदा मानवाकारमें ही क्यों नहीं रहते ?' कुमारोंने पूछा।

'इसलिए कि मैं आप सबका सेवक हूँ।' मैंने अपने हृदयकी बात कहदी—'मुझे स्वामीकी समता नहीं करनी चाहिए। मेरे प्रभुने मुझे अपने चरणाश्रित भक्तोंकी सहायता-संरक्षणका दायित्व सौंपा है। मैं कपि हूँ—शौचाचार तथा शास्त्रानुमोदित सदाचारकी मर्यादाका पालन मेरे लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है। अतः कोई इन सबसे च्युत भी हो तो मेरी दृष्टि उसके इस स्खलनपर नहीं जाती। मेरे लिए ये स्खलन महत्त्वहीन हैं।'

'आप तो अपनी बात कहने लगे।' कुमारोंने हँसकर ताली बजादी—'जाम्बवानजी, सुग्रीवजी आदि दूसरे भी तो उपदेव वर्गके सम्मान्यजन सम्पूर्ण मानवाकारमें नहीं रहते।'

'बात यह है कि उपदेवताओंका जो पशु-रूप एवं प्रकृति है, वह नैसर्गिक है।' मैं सावधान हो गया। मुझे पूरे वर्गकी बात समझानी है—'फलतः वह रूप एवं स्वभाव हमें प्रिय होता है। उसीके अनुसार रहना हमारे लिए सुखद रहता है। इच्छानुसार अन्य रूप तो प्रयोजन एवं परिस्थितिवश हम ग्रहण करते हैं; किन्तु वह हमारे लिए प्रिय अथवा सुविधाजनक नहीं होता। जैसे आप सब भी अवसर-विशेषपर अस्त्र-शस्त्र सज्ज होकर सैनिक वेश धारण करते हैं; किन्तु सुविधा होते ही उसे त्याग देते हैं।'

'आप सबमें और भी तो जन्मजात सिद्धियाँ हैं ?' मुझसे बालकोंने पूछा।

'हैं।' मुझे समझाना ही था। उपदेव वर्गकी नारियाँ गर्भवती होनेपर तत्काल भी प्रसव कर सकती हैं और सुरक्षा-सुविधा न हो तो दीर्घकाल तक सैकड़ों वर्ष तक भी गर्भको उदरमें ही रख सकती हैं। उपदेव वर्गकी सभी जातियोंके शिशु उत्पन्न होनेके पश्चात् कुछ क्षणमें ही अपना पूर्ण आकार तथा शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। किसी भी पिताको अपनी सन्तान शिशुके रूपमें देखनेका सुअवसर कदाचित ही मिलता है। नवजात पुत्र या पुत्री तरुणावस्थाका आकार एवं शक्ति कुछ क्षणोंमें प्राप्त करके स्वयं जाकर पिताको प्रणाम करता है।

उपदेवताओंके शरीरमें रोग नहीं होते। वे वृद्ध होनेपर भी तरुणके समान ही दीखते हैं। यद्यपि वृद्धावस्थामें शक्तिका ह्रास होता है; किन्तु

वह इतना अल्प होता है कि उसे दूसरा कोई लक्षित नहीं कर सकता। स्वेद भी उपदेवताओंको बहुत अधिक ताप प्राप्त हो, तभी होता है।

हमारे वस्त्र आभरणादि भी हमारे शरीरपर आकर विशिष्ट शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। वे इच्छा करनेपर छोटे या बड़े हो सकते हैं, शरीरके अनुरूप? प्रकट या तिरोहित हो सकते हैं।'

'हमने सुना है कि आप एकादशम् रुद्र हैं।' बालकोंने जिज्ञासा की—'आपने यह अवतार क्यों धारण किया?'

भगवान महेश्वरके अनुग्रहसे मुझे काल प्रभावित नहीं करता। मेरे स्वामी श्रीराघवेन्द्रकी अनुकम्पा मेरी स्मृतिको किञ्चित् भी म्लान नहीं होने देती। अतएव मुझे इन कुमारोंको अपना पूर्व-चरित भी सूचित कर देनेमें—उसका संक्षिप्त संकेत दे देनेमें बाधा नहीं है। जब आत्म-चरित सुनाना ही है तो वह सम्पूर्ण ही सुनाना समुचित है।

—:*:—

४–आविर्भाव

'हनुमानजी ! आप तो अवतार हैं—भगवान शंकरके अवतार !' ये राघव कुमार पूछते हैं—'आपने यह वानर रूपमें क्यों अवतार लिया ? कैसे लिया ? और आपके माता-पिता भी तो अवतार ही होंगे ?'

इन कुमारोंको भ्रान्त नहीं किया जा सकता। इनसे कुछ छिपा लेना भी अपराध ही है। संकोच चाहे जितना हो, इनसे अब पूरी स्पष्ट कथा ही कहनी पड़ेगी।

'यह वानर रूप कोई आज इस त्रेतामें मैंने नहीं धारण किया है। यह तो मेरा लगभग नित्य रूप है अब। वानर रूपमें ही मैं एकादशम रुद्र भी हूँ।'

सृष्टिके प्रारम्भमें-स्वायम्भुव कल्पमें ही हुए थे महर्षि शिलाद *। वे गृहस्थ थे। शास्त्रज्ञ थे। कर्मनिष्ठ थे। परम शैव थे। जब बहुत दिनों तक उनके कोई सन्तान नहीं हुई तो उनकी पत्नीने उनसे प्रार्थना की—'ब्रह्मन् ! आपने मेरा पाणिग्रहण किया है। नारीकी सफलता उसका मातृत्व है। आपके पितृगण भी अपने वंशधरकी प्रतीक्षा करते होंगे। आप मुझपर अनुग्रह करें।'

महर्षिने अब तक तो इस ओर ध्यान ही नहीं दिया था। पत्नी-परिग्रह (विवाह) करके वे सन्तुष्ट हो गये थे कि अब उनकी आराधना, यज्ञादिमें एक सहायिका उन्हें मिल गयी और अब गृह-आश्रमकी व्यवस्थापर भी उन्हें ध्यान नहीं देना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त भी कुछ गृहस्थ होकर करना है—कभी संकल्प ही नहीं उठा था।

'अच्छा देवि !' पत्नीकी प्रार्थना उचित थी। महर्षिका इस ओर ध्यान गया और तत्काल उन्होंने निर्णय किया—'पशु-पक्षियोंके समान कामज सन्तति तो मानवका वाञ्छनीय नहीं हो सकता। सन्तान वह जो

---

* खेतकी फसल कट जानेपर जो दाने खेतमें गिर जाते हैं, उन्हें शिल कहते हैं। उनको चुनकर जो उन्हींसे अपनी आजीविका चलावे, उसे शिलाद कहा जाएगा।

कुल को अपने कर्मसे उज्वल करे। ऐसी सन्तान सर्वेश्वरके अनुग्रहके बिना कैसे प्राप्त हो सकती है।'

महर्षि पत्नीको समझाकर तप करने चले गये। दीर्घकालीन तपस्या एवं आराधनासे भगवान शंकर प्रसन्न हुए। वरदान माँगनेको कहनेपर भगवान शिवसे उन्होंने माँगा—'मुझे आपके समान गुण-प्रभाव-शक्ति वाला मृत्युजयी पुत्र प्राप्त हो।'

भगवान महेश्वर भी अपने समान दूसरा कहाँसे लाते। उन्होंने कह दिया—'मैं ही अपने अंशसे आपका पुत्र बनूंगा।'

एकादशम रुद्र ही शिलाद-पुत्रके रूपमें प्रकट हुए। इस पुत्रका नाम महर्षिने नन्दी रखा; क्योंकि इसके होनेसे उन्हें बहुत आनन्द हुआ था। बड़े होकर नन्दीने भी उग्र तप करके भगवान महारुद्रको सन्तुष्ट किया। जब आशुतोष प्रकट हुए; नन्दीने मांगा—'मैं आपका नित्य अनुचर रहूँ। मेरा शरीर वामन रहे, दुर्बल रहे, कुरूप रहे और मेरा मुख वानरका रहे।'

'ऐसा क्यों ?' भगवान गङ्गाधरने पूछा।

'प्रभु ! सेवकको स्वामीकी समता नहीं करनी चाहिए।' नन्दीने कहा—'मैं दुर्बल, कुरूप, वानर मुख रहूँगा तो मुझमें कभी देहाभिमान नहीं जागेगा।'

'एवमस्तु !' आशुतोषने वरदान दिया—'मेरा महावृषभ नन्दी है, तुम नन्दीश्वर हुए। तुम मेरे समस्त पार्षदोंके अधिपति, मेरे नित्य परिकर होकर मेरे समीप ही रहो।'

मेरे आराध्य--मेरे स्वामी परात्पर परमपुरुष साकेताधीश भूमिपर पधारने वाले हैं; यह बोध होते ही मेरा हृदय भी धरापर आनेके लिए आतुर हो उठा था। भगवान महेश्वरका हार्दिक समर्थन प्राप्त था मुझे। जब सभी देवता अपने अंश रूपसें पृथ्वीपर जन्म ले रहे थे, सदाशिव ही क्यों वञ्चित रह जाँय। मैं—शिलादतनय नन्दीश्वर एकादशम रुद्रका ही स्वरूप था—मुझे अनुज्ञा प्राप्त हो गयी।

एक बात और—श्रीराघवेन्द्रका अवतार लोक-कण्टक दशग्रीव-दलनके लिए होने वाला था। उस नैकषेयने अपने दस मस्तकोंकी आहुति दी थी दस रुद्रोंके नामोंसे—उसके द्वारा आराधित दस रुद्र उसके उच्छेदमें सहायक नहीं हो सकते थे, अतः भगवान महेश्वरने यह सौभाग्य मुझे दिया। रुद्र

रूपमें रावणके द्वारा मैं अनाराधित था और नन्दीश्वर रूपमें उस राक्षसाधिपने मेरा उपहास किया था—मेरे द्वारा वह प्रशप्त था।*

एकदशम रुद्र—भगवान नीललोहित ही बने थे नन्दीश्वर और वही नन्दीश्वर शिलाद-तनय अपने दूसरे रूपमें यह हनुमान है।

'इसलिए आप वानर—उपदेव वानर हैं।' कुमारोंने प्रसन्न होकर कहा—'किन्तु आप खर्व-तनु और कुरूप तो नहीं हैं। क्षीणकाय भी नहीं हैं। आप तो महाबली हैं।'

'नन्दीश्वर केवल दुर्बल-क्षीणकाय हैं। वे भी अतुलनीय बलशाली हैं।' मैंने समझाया—'मुझे अपने प्रभुकी सेवा करनी थी—राक्षसोंके साथ संग्राम करना था प्रभुको, अतः क्षीण-काय, खर्व-तनु ऐसी सेवाके उपयुक्त नहीं था। सौन्दर्यैक दिव्यदेह श्रीराघवेन्द्रके सेवकके उपयुक्त—शरीर अभीष्ट था मुझे। प्रभुके स्वजन, परिजन, प्रजामें किसीकी समता कैसे कर सकता था मैं। सब मानव थे, अतः मैं वानर बना—सबसे हीन, सबसे तुच्छ, जिससे सबकी सेवाका कुछ अवसर पा सकूँ। युग-युग तक श्रीराघवेन्द्रके भक्त तो मानव ही होंगे, मैं उन सबसे तुच्छ वानर—उन सबका सेवक ही होकर रहना चाहता हूँ।'

'इसीलिए आप सबके सम्मान्य—सबके पूज्य हैं!' कुमारोंमें रघुकुलकी गरिमाके अनुरूप विवेक एवं नम्रता है। लेकिन मैं इनकी श्रद्धा—विनयसे बचना चाहता हूँ, इसलिए मैंने स्वयं आत्मचरित आगे बढ़ाया।

वैसे मैं भी उसी दिव्य छविसे उद्भूत हूँ, जिसे अपने आविर्भावमें परात्पर पुरुषने निमित्त बनाया। जिसे निमित्त बनाकर श्रीभरत, लक्ष्मण लाल एवं शत्रुघ्नकुमार प्रकट हुए।

कुमारोंमें उत्सुकता जागृत होना स्वाभाविक था। मैंने उन्हें अब विस्तारसे बतलाया—मेरे जन्ममें अनेक निमित्त बने। इन निमित्तोंमें-से चक्रवर्ती महाराज दशरथके पुत्रेष्टि यज्ञमें प्रकट होकर अग्निदेवने जो हवि प्रदान की उसका एक अंश भी निमित्त है।

---

* शिवचरित सम्बन्धी सब कथाएँ 'शिव-चरित' में विस्तारपूर्वक आ गयी हैं। उनके लिए लेखकका 'शिव चरित' देखें। प्रकाशक—श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा संघ, मथुरा २८१००१।

'हमने महर्षियों द्वारा सुना है कि मर्यादापुरुषोत्तम प्रभुमें और भवगान सदाशिवमें अन्तर नहीं है। दोनों नित्य अभिन्न हैं।' कुमारोंमें-से एकने कहा—'अतः जिस हविष्यको अपने आविर्भावका हेतु वे परात्पर पुरुष बना रहे हों, जिसके कारण उनके अंशोंका प्राकट्य हो रहा हो, उसीको निमित्त बनाकर सदाशिव भी अपने अंश रूपमें आविर्भूत हों, यह स्वाभाविक है।'

'हमने सुना है कि यज्ञ-कुण्डसे प्रकट पावक द्वारा प्रदत्त पायसको चक्रवर्ती महाराजने दो भागोंमें विभक्त करके आधा बड़ी महारानीको दे दिया था। शेष आधेके दो भाग करके एक माता सुमित्राको और एक भाग माता कैकेयीको दिया; किन्तु तभी एक गृद्धचील (काक) ने झपट्टा मारा और माता सुमित्राके हाथका पूरा लेकर उड़ गयी। माता सुमित्राको खिन्न होते देखकर माता कौशल्या तथा माता कैकेयीने अपने-अपने पायसमें-से एक-एक भाग उन्हें दिया था।' कुमारोंने उत्साहपूर्वक सुनाकर साश्चर्य मेरी ओर देखा—'भाग्यवान थी वह गृद्धचील; किन्तु हनुमानजी! आप उस गृद्धचीलके पुत्र तो नहीं हैं? आप तो माता अञ्जनाके तनय हैं?'

'वह ब्रह्मलोककी अप्सरा सुवर्चला थी।' मैंने बतलाया—'भगवान ब्रह्माकी सभामें यह तनिक अशिष्टता कर गयी तो सृष्टिकर्ताने शाप दे दिया—'देवता होकर भी तुझमें धैर्य नहीं, एक पुष्पपर झपट्टा मारती है! गृद्धचील (काक) होकर मर्त्यलोकमें जा।'

अप्सराने आर्तनाद किया, स्तुति की। ब्रह्माजीने शापानुग्रह किया—'त्रेतामें महाराज दशरथके पुत्रेष्टि यज्ञसे प्राप्त चरुका महारानी सुमित्राका भाग लेकर उड़ेगी तो उसके स्पर्शसे पवित्र होकर पुनः अप्सरा हो जायगी और यहाँ ब्रह्मलोक आ जायेगी।'

माता अञ्जना पुत्र-प्राप्तिके लिए तपकर रही थीं। वे व्रत-नियमादिका पालन करती हुई शिवार्चनमें लगी थीं। उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर भगवान वृषभध्वज प्रकट हुए। उन्होंने वरदान दिया—'अपने एकादशम रुद्र नीललोहित रूपसे मैं ही आपका पुत्र बनूँगा। पवनदेव आपको जो प्रसाद दें–उसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण कर लें। इससे आपको सर्वगुण सम्पन्न पुत्र प्राप्त होगा।'

स्वयं मेरी माता अञ्जना मातृकाओंमें-से हैं। वहाँ भी वे वानरमुखी हैं। उन्होंने एक बार अप्सरा रूप बनाया और इन्द्रकी सभामें पहुँच गयीं।

देवराज इन्द्र उनकी ओर झुके तो उन्होंने झिड़क दिया—'तेरे शरीरमें तो नेत्र ही नेत्र हैं।'

'तुझे अपने रूपका इतना गर्व है ? वानरमुखी हो जा।' सहस्राक्षने शाप दे दिया।

'म्याऊँ !' जब देवराज मेरी माताको शाप देरहे थे, उनकी सखी अद्रिकाने शक्रको चिढ़ा दिया बिल्लीकी ध्वनि करके।

'तू बिल्लीके मुख वाली हो जा !' इन्द्रने अद्रिकाको भी शाप दे दिया।

वानरराज कुञ्जकी पुत्रीके रूपमें मेरी माताने जन्म ग्रहण किया। अद्रिका वानर-कन्या ही बनी।

वानरराज केशरीने दोनोंका पाणिग्रहण किया। एक बार महर्षि अगस्त्य अतिथि हुए। वानरराज तो उपासनामें लगे थे दक्षिण-समुद्र तटपर, दोनोंने महर्षिका आतिथ्य किया, उनकी सेवासे सन्तुष्ट होकर महर्षिने वरदान माँगनेको कहा तो माता अञ्जनाने माँगा–'मुझे सबसे बलवान्, सर्वोपकारक पुत्र चाहिए।'

'एवमस्तु !' मुनिने अद्रिकाको भी पुत्र-प्राप्तिका वरदान दिया। अद्रिकाको निवृत्तिके अंशसे अद्रि नामक पुत्र हुआ। यह पिशाचोंका अधीश्वर मेरा समातृ भाई है।

पीछे महर्षि गौतमके आदेशसे हम दोनों भाई अपनी-अपनी माताओंको कन्धोंपर लेकर गोदावरी-स्नान कराने गये थे। वहाँ स्नान करनेसे मेरी माता तथा मेरी सौतेली माताका मुख भी परम सुन्दर होगया। उनका वानरी या मार्जारी मुख लुप्त होगया। तबसे वहाँ गोदावरीमें आञ्जनतीर्थ तथा मार्जार तीर्थ हुए।

मेरी माताने सुनाया था शैशवमें मुझे कि उनके पिता (मेरे मातामह) सन्तानहीन थे। उन्होंने सन्तान-प्राप्तिके लिए शिवोपासना प्रारम्भ की। भगवान शिवने प्रकट होनेपर भी कह दिया—'तुम्हारे प्रारब्धमें पुत्र नहीं है ; किन्तु तुम्हें भुवन-वन्दनीया पुत्री होगी।'

माता बड़े उल्लाससे सुनाती थीं—'मेरे यहाँ एक सामुद्रिकज्ञात पुल्कसी एक बार आयी। यह तो पीछे महर्षि गौतमने बतलाया कि उस

रूपमें धर्म देवता आये थे, वह पुल्कसी एक वेत्र तथा एक सूत्र-रज्जु लिये थी। मैंने उसे हाथ दिखलाकर पूछा था—'मेरे पुत्र होगा ?'

'तेरे कोई ऐसा-वैसा पुत्र होगा !' उसने कहा था—'तेरा पुत्र तो सबका विपत्तिवारक, आर्तोंका आश्रय होगा। तू चिन्ता मत कर, तप कर !'

माताने ऋष्यमूकपर तपस्या प्रारम्भ की तब महर्षि मतङ्ग ने पूछा—'पुत्री ! तू तप क्यों कर रही है ?

'सन्तान-प्राप्तिके लिए !' माताने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया—'नारी वन्ध्या कहलाती है पुत्रके बिना।'

'तू वेङ्कटाद्रिपर जाकर वृषभाचलपर आकाश गङ्गाके समीप तपस्या कर।' महर्षिने आदेश दिया—'वहाँ तेरा मनोरथ शीघ्र सफल होगा। कामनाके अनुसार उपासना-स्थान शीघ्र फलप्रद होता है।

उस समय सूर्य मेष राशिपर थे और चित्रा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा थी जब मेरी माताकी तपस्यासे प्रसन्न होकर वायुदेव उसके सम्मुख प्रकट हुए। उन्होंने प्रकट होते ही स्वयं वरदान दिया—'देवी समरभूमिमें अजेय, समस्त शस्त्रास्त्रोंसे अवध्य पुत्रकी प्राप्ति होगी तुम्हें। मैं ही तुम्हारा पुत्र बनूँगा। तुम्हारा पुत्र बल-पराक्रममें मेरे तुल्य होगा।'

आप सबने मोहिनी अवतारका चरित पढ़ा-सुना है। निखिलेश्वर मायाधीश जब स्वयं किसीको सम्मोहित करना चाहें; कोई स्थिर कैसे रहे सकता है। भगवान विष्णुने मोहिनी रूप धारण किया तो सदाशिव उस अकल्पनीय सौन्दर्य राशिको देखकर उन्मत्त हो उठे। वे दिगम्बर वस्त्रहीना मोहिनीके पीछे दौड़ते फिरे लोकोंमें। आवेशाधिक्यसे उनका रेतस्खलन हो गया। तत्काल भगवान विष्णु मोहिनी रूप त्यागकर अपने पुरुष रूपमें आ गये। महेश्वरका स्खलित वीर्य एक पर्णपुटकमें लेकर उन्होंने सप्तर्षियोंको दे दिया।

माता अञ्जना वेङ्कटाद्रिपर तप करके वरदान प्राप्त करके लौट आयी थीं। लेकिन जब शीघ्र सन्तान प्राप्त नहीं हुई, वे पुनः तपस्या करने लगीं। वैसे भी वे स्वभावसे ही तपस्विनी हैं। व्रत, आराधना, ध्यान ही उनका जीवन है। मैंने तो उन्हें कम ही लौकिक विषयोंमें रुचि लेते देखा है।

वे पुनः तपोनिरता थीं, तभी सप्तर्षि उनके समीप आये। उन्होंने मातासे पूछा—'तुम आराधना तो कर रही हो; किन्तु तुमने किसीसे दीक्षा ली है ?'

'क्यों ?' माताने जिज्ञासा की।

'गुरुसे दीक्षा लिये बिना मन्त्र सप्राण नहीं होता।' सप्तर्षियोंने कहा—'अदीक्षितकी आराधना कदाचित ही सफल होती है। किसी मुनिसे दीक्षा ले लो।'

'मैं अज्ञ हूँ, अबला हूँ. गुरुके अन्वेषणमें कहाँ भटकती फिरूँगी।' मेरी माताने प्रार्थना की—'आप सब सर्वज्ञ हैं, दयालु हैं। मेरी स्थिति, मेरे अधिकारको समझते हैं। आप ही मुझपर अनुग्रह करें !'

'अच्छी बात।' सप्तर्षि तो भगवान विष्णुकी सम्मतिसे आये ही इसी निमित्त थे। माताने स्नान किया। सप्तर्षियोंका पूजन किया। उनमें-से सूर्यवंशके कुलगुरु महर्षि वशिष्ठने मेरी माताको पञ्चाक्षर शिव-मन्त्रकी दीक्षादी। दीक्षाके समय पर्णपुटकमें रखा शम्भु शुक्र, जिसे वे साथ लाये थे, मेरी माताके दक्षिण कर्णरन्ध्रसे उन्होंने माताके शरीरमें फूंक दिया।

'आप भी महर्षि वशिष्ठके ही शिष्य हैं तब तो राघव कुमारोंने प्रसन्नता प्रकट की।

'मैं तो महर्षिके शिष्योंके श्रीचरणोंका सेवक हूँ।' मैंने कथा-प्रवाह बनाये रखनेमें ही अपना मन लगाया।

मेरे पिता वानरराज केशरीने एकबार गोकर्ण क्षेत्र निवासी ऋषियोंको संतप्त करने वाले असुर शाम्बसादनको मार दिया था। पश्चिम-समुद्र तटवासी उन महर्षियोंने तब मेरे पिताको पुत्रवान् होनेका आशीर्वाद देकर शिवमन्त्रकी दीक्षा दी और शिवाराधन करनेको कहा। उसी गोकर्ण क्षेत्रमें मेरे पिता आराधना करने लगे। भगवान शशाङ्क-शेखर प्रसन्न होकर प्रकट हुए और फिर अपने तेजोमय रूपसे मेरे पिताके मुखमें प्रविष्ट हो गये। पिताने ऋषियोंसे यह बतलाया तो ऋषियोंने उन्हें अपने सदन लौटनेकी आज्ञा दे दी।

मेरी माताने उसी दिन महर्षि वशिष्ठके द्वारा मन्त्र दीक्षा ग्रहण

की थी। पिता दीर्घकालकी उपासनाके अनन्तर गोकर्ण क्षेत्रसे लौटे तो माताने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। पिताने जैसे ही माताको उठाकर आलिङ्गन किया, माताको लगा कि उनका समस्त शरीर कुछ अद्भुत हो उठा है। आनन्द, तेज, ओजस्विता—माताजी उस स्थितिका ठीक-ठीक वर्णन नहीं कर पाती थीं। मैं समझता हूँ कि पिताके भीतर जो शाम्भव तेज आया था, माताके शरीरमें वह आविष्ट होगया आलिङ्गनके समय।

उस आवेशमें आनन्दमग्ना माताने शृङ्गार किया अपना। पतिके लौट आनेसे उन्हें अपना प्रोषित-पतिका वेश त्यागना ही था। पिताने कह दिया था कि अब पुत्र-प्राप्तिके लिए तप या आराधन अनावश्यक है। माता सदा ही पिताके संकेतकी अनुवर्तिनी रही हैं। उस दिन तो उनके रोम-रोममें आह्लाद उमड़ रहा था। शृङ्गार करके वे गिरि-शिखरपर सहज भावसे खड़ी हुईं। मन्द पवनका वेग अचानक बढ़ा, एक झोंका आया। माताके वस्त्र शरीरसे थोड़े उड़े।

'इतनी धृष्टता !' माताके नेत्र कठोर हुए। उनको लगा कि पवनने सविकार उनका शरीर स्पर्श किया है। वे वायुदेवको शाप देने ही जा रही थीं।

'देवि, क्षमा !' लोकपाल वायुदेवता मूर्तिमान अञ्जलि बाँधे प्रगट होगये और कम्पित स्वरमें बोले—'मैंने तुम्हें पुत्र प्राप्तिका वरदान दिया है। मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा, यह कह चुका हूँ। तुम्हारे भीतर भगवान महेश्वरका अंश आगया है। उससे एक होनेके लिए मैंने यह प्रयत्न किया है। मेरा यह अपराध शाप देने योग्य तो नहीं है।'

'आप प्रसाद प्रदान करने पधारे हैं? माताने प्रसन्न होकर पवनदेवकी ओर देखा। उन्हें भगवान उमाकान्तका आशीर्वाद स्मरण होगया था।

'अवश्य देवि !' पवनने मानो स्वयं वरदान पाया हो, इस प्रकार कृतज्ञता भरे स्वरमें बोले—'आप कुछ क्षण उन्मुक्त अञ्जलि, बन्ददृग यहाँ अवस्थित रहें और यदि मेरा वेग बढ़े, तो उसके कारण उद्विग्न न हों।'

अयोध्यासे माता सुमित्राके भागका पायस लेकर वह गृद्धचील उसी समय उड़ी थी। जैसे ही वह गगनमें पहुँची, बड़े वेगसे अन्धड़ आया। सहसा आये अन्धड़के वेगके कारण वह पक्षिणी लड़खड़ा गयी। चरुका पर्णपुटक (द्रोण) उसके चञ्चुसे छूट गया। अवश्य ही उस दिव्य पायसका एक सीकर उसके शरीरपर पड़ा उस समय। इससे उसका कायाकल्प

होगया। वह शापमुक्ता होगयी। वहाँ गृद्धचील (काक) नहीं थी। वह तो दिव्य रूप धारिणी अप्सरा होगयी थी। वह अप्सरा ब्रह्मलोक चली गयी।

पायसका वह पर्णपुटक पवनने सम्हाला और पर्वतपर प्रतीक्षा करती मेरी माताकी अञ्जलिमें ऊपरसे ही पटक दिया। माताने सादर सिरसे स्पर्श कराया उसका और पतिकी आज्ञा लेकर उसका प्राशन कर लिया।

इस प्रकार मेरी माता अन्तर्वत्नी हुई! मेरे जन्मके ये अनेक निमित्त बने। मैं क्यों आञ्जनेयके साथ केवल केशरी-नन्दन न होकर, शङ्करसुत और पवन-पुत्र भी हूँ, यह इतनेसे स्पष्ट होजाता है।

हम उपदेवताओंकी माताएँ अन्तर्वत्नी होनेके पश्चात उसी क्षण या जब उनकी इच्छा हो, प्रसव समर्था होती हैं। मेरी माताने मुझे कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी, मङ्गलवार, स्वाती नक्षत्रमें जन्म दिया। *

---

*(क) श्रीहनुमानजीकी जन्मतिथियाँ अनेक हैं। कल्पभेदसे उनका आविर्भाव काल भिन्न-भिन्न है। वैखानस शास्त्रके अनुसार—'श्रावणे श्रवणे जातः' अर्थात् वे श्रावण नक्षत्रयुक्त श्रावणी पूर्णिमाको उत्पन्न हुए। (हनुमदर्चनोत्सव विधिः)

(ख) ऊपरका जन्म-समय वैष्णवमताब्ज भास्करके अनुसार है।

(ग) वाल्मीकीय रामायणके अनुसार आश्विन मास, स्वाती नक्षत्रका जन्म है।

(घ) चैत्र शुक्ल १५, मङ्गलवारका जन्म—स्कन्द पु०मा०के० ८.९९-१००।

(ङ चैत्र शुक्ल ११, मघा नक्षत्र शनिवारका जन्म (आनन्दरामायण सारकाण्ड)

(च) किसी कल्पमें हनुमानजी पञ्चमुख भी अवतीर्ण हुए हैं। यद्यपि ऐसे अवतारकी कथा नहीं मिलती; किन्तु पञ्चमुख रूपमें इनकी उपासनाका वर्णन उपासना ग्रन्थोंमें है। श्रीविद्यातन्त्रके अनुसार पञ्चमुख हनुमानका पूर्वमुख वानरका सूर्यप्रभ, दक्षिणमुख नृसिंहका भीषण तेजोदीप्त, पश्चिम-मुख गरुड़ जैसा, रोगशमनकारी, विषवारक, उत्तरमुख वाराह जैसा नील वर्ण, ऊर्ध्वमुख हय शीर्ष-—दानवनाशक है। ये दसभुज पीताम्बरालंकृत हैं।
पञ्चास्यमच्युतमनेक विचित्रवीर्य वक्त्रं सुशङ्ख विधृतं कपिराजवर्यम्।
पीताम्बरादि मुकुटैरभि शोभिताङ्गं पिङ्गाक्षमाद्यमनिशं मनसा स्मरामि॥'
(श्रीविद्यार्णवितन्त्र—हनुमत्प्रकरण)

१. खड्ग, २. त्रिशूल, ३. खट्वाङ्ग, ४. पाश, ५. अंकुश, ६. पर्वत, ७. स्तम्भ, ८. मुष्टि, ९. गदा, १०. वृक्षशाखा--ये इनके दसों करोंके आयुध हैं।

हम उपदेव जातिके हैं, अतः मानव शिशुके समान नग्न नहीं उत्पन्न होते। ये स्वर्ण वर्ण सम्पूर्ण शरीरके रोम तथा केश मेरे जन्मजात हैं। मैं ऐसा ही पीतनेत्र, मणिकुण्डल, कौपीन, मौञ्जीमेखला, यज्ञोपवीत पहिने, हाथमें गदा लिये उत्पन्न हुआ था। उपदेवताओंके लिए यज्ञोपवीत संस्कार अनिवार्य नहीं है।

मैंने यह वानर रूप इसलिए भी लिया है कि इसमें स्नान-शौचाचारादिकी मर्यादा नहीं रखनी पड़ती। सेवाके लिए सम्यक् अवसर रहता है और जो प्रभुके जन हैं, उनके शौचाचार, सदाचारादिपर भी दृष्टि नहीं जायगी; क्योंकि वानरमें ही ये नहीं हैं तो दूसरोंसे इनकी अपेक्षा कैसे की जायगी। न जातिका गर्व, न रूपका, न आचार या धर्मका और प्रभुको हमारे भोजनादिकी चिन्ता-व्यवस्था भी नहीं करनी पड़ती।

—:❀:—

५—हनुमान

'आपका हनुमान नाम आपके पिताजीने रखा है?' बालकोंको यह नाम कुछ अटपटा लगता हो तो क्या आश्चर्य। माता तथा पिताके कारण मेरे जो नाम पड़ गये हैं—आञ्जनेय, पवनात्मजादि उन्हें समझा जा सकता है, किन्तु हनुमान (ठुड्डीवाला) नाम अटपटा तो है ही। बालक जिज्ञासा करते हैं—'आपकी हनु (ठुड्डी) का वाम पार्श्व आहतके समान भग्न क्यों दीखता है?'

'मैं शिशु था। हम उपदेवताओंमें उत्पन्न होते ही शिशु पूर्ण आकार एवं शक्ति प्राप्त कर लेता है; किन्तु मानसिक दृष्टिसे शिशु ही रहता है। मैं भी ऐसा ही शिशु था।' मैंने अपने नामकरणकी कथा प्रारम्भ की।

प्रातःकालका समय था। पिता ब्राह्ममुहूर्तमें ही उठकर स्नान, सन्ध्यादिके लिए प्राची सागरतट पहुँच जाया करते थे। माता भी प्रति-दिनकी भाँति स्नान करके वनमें आह्निक अर्चनके लिए सुमन-सञ्चय करने चली गयीं।

मुझे क्षुधा लगी थी। बालकोंको भी पक्षियोंके समान निद्रासे उठते ही उदर-पूर्ति सूझती है। मैंने इधर-उधर देखा—कोई आहारके योग्य वस्तु दृष्टि नहीं पड़ी। सहसा प्राचीमें क्षितिजपर सूर्य-बिम्ब ऊपर उठा। लाल-लाल उदित होता सूर्य—मुझे लगा कि इतना बड़ा, ऐसा अरुणिम चमकदार यह कोई फल है तो मधुर कितना होगा ? मैं उसे पकड़नेके लिए आकाशमें उछल पड़ा।

'सूर्य बिम्ब फल ! आप उसे फल समझकर भक्षण करना चाहते थे ?' बालकोंको इस कल्पनासे बहुत आनन्द आया। सबके मुख प्रफुल्ल हो उठे। एक-दो छोटे किशोरोंने तो ताली भी बजायी; किन्तु क्षण भरमें वे सब शान्त होगये।

तुम जानते ही हो कि मुझे आकाशमें श्रेष्ठतम पक्षीसे भी तीव्र गतिसे दौड़नेमें कोई कठिनाई नहीं होती। गरुड़ने एक बार स्पर्धा की अपनी गतिके गर्वमें आकर मुझसे और उन्हें मुँहकी खानी पड़ी। यह कथा तुमको आगे सुना दूँगा। उस दिन तो मैं क्षुधातुर था और वह सिन्दूरारुण सूर्य-मण्डल मुझे बहुत आकर्षक लग रहा था।

मैंने समझा था कि वह अरुण फल निकट होगा; किन्तु वह तो बहुत दूर निकला। उसकी अरुणिमा लुप्त होने लगी और शीघ्र ही वह ज्योतिर्मय हो गया। मैं उसे पानेको और भी आतुर हुआ। मैंने समझा कि वह फल परिपक्व होगया है। उसके भीतर इतना ज्योतिर्मय रस है तो उसका माधुर्य कितना अधिक होगा। वैसे भी कार्य प्रारम्भ करके अपूर्ण त्याग देना मेरे स्वभावमें नहीं है। बाधाएँ मुझे निराश करनेके स्थानपर उत्तेजित ही करती हैं। वह फल लगता था कि दूर—और दूर होता जा रहा है। उसकी इस दूरी—बढ़ती लगती दूरीने मेरे मनमें उसे प्राप्त कर लेनेका आग्रह अधिक दृढ़ कर दिया। मैं पूरे वेगसे दौड़ने लगा।

उस दिन जो कुछ हुआ, उसका वर्णन कुछ तो माताने, कुछ मेरे पिता पवनदेवने और कुछ देवर्षि नारदने मुझे पीछे सुनाया। पिता पवनने कहा—'वत्स ! जब तुम सूर्य-मण्डलकी ओर दौड़ चले, मैं सशङ्क हो उठा। मैं नहीं समझ सका कि तुम चाहते क्या हो ? तुम शिशु हो, तुम्हारा यह प्रथम-प्रयास था। तुम्हारा उत्साह भङ्ग करना किसी भी प्रकार उचित नहीं था, अतः जब तुम मेरे क्षेत्र (वायुमण्डल) को पारकर ऊपर जाने लगे,

मैं अपने आधिदैवत रूपसे तुम्हारे पीछे-पीछे चलने लगा। अन्तरिक्षमें तुम्हारे साथ कोई दुर्घटना न हो, इसके लिए मैं सावधान था।'

कोई दुर्घटना नहीं हुई। कोई उपग्रह या धूमकेतु मार्गमें नहीं मिला। कोई मिल भी जाता तो मैं उसे एक ओर बचाकर निकल जा सकता था। मुझे स्वयं लगा कि अन्तरिक्षमें पहुँचकर मेरा वेग बहुत अधिक हो गया। यह पीछे पता लगा कि पृथ्वीका वायुमण्डल तथा आकर्षणावरण पार करनेपर गति बनाये रखनेके लिए शक्तिकी कोई आवश्यकता नहीं होती। मैंने केवल यह अनुभव किया कि मैं अन्तरिक्षमें बिना श्रम दौड़ा जा रहा हूँ। अवश्य ही मैं अपनी गति किसी भी क्षण इच्छा होते ही अवरुद्ध कर देनेमें समर्थ था।

देवर्षि नारद जब उस घटनाके पश्चात् मिले, उन्होंने हँसते हुए सूचित किया—'उस दिन अमावस्या थी। दिनके द्वितीय प्रहरमें सूर्य-ग्रहण होने वाला था। भू-छाया सूर्य-मण्डलके समीप पहुँचने वाली थी। छायापुत्र (भूछायाका अधिदेवता) राहु सूर्यको अपना ग्रास बनानेको उत्सुक था; किन्तु पवननन्दन! तभी तुम पहुँचे और सूर्य-मण्डलस्थ भगवान सूर्यको ही उठाकर अपने मुखमें रख लिया। अधिदेवताके आक्रान्त होनेसे सूर्य-मण्डल तेजोहीन हो गया—ठीक वैसा तेजोहीन जैसे मूर्छित व्यक्तिका शरीर हो जाता है। भूमण्डलके गणितज्ञोंने इसे आदित्य-मण्डलका कान्ति मालिन्य माना।'

मुझे जब भी इस घटनाका स्मरण आता है—बहुत लज्जा आती है। भगवान भास्कर मेरे गुरु हैं। वे त्रिभुवनवन्दनीय—उन्होंने मेरी धृष्टता क्षमा कर दी अपने सहज औदार्यसे। मैं उस समय अबोध शिशु ही तो था।

'भगवान आदित्यको जैसे ही तुमने मुखमें रखा, राहु भागा।' देवर्षि नारद ने कहा—'उसे इस प्रकार दौड़ते मैंने देखा तो उसके पीछे कुतूहलवश लग गया कि यह अब कहाँ जाता है—क्या करता है।'

'आशाके विपरीत राहु दैत्येन्द्र बलिके समीप सुतलमें, दैत्याचार्य शुक्रके समीप तथा सृष्टिकर्ताके पास ब्रह्मलोक नहीं गया। वह अमरावतीमें प्रविष्ट हुआ। सुरलोक समीप पड़ता था वहाँसे इसलिए। उसने सुधर्मा सभाके द्वारपरसे ही पुकारना प्रारम्भ किया—'देवराज! आप यदि विश्व-स्रष्टाकी मर्यादा नहीं मानते तो हम देख लेंगे। दैत्य इतने दुर्बल नहीं हैं कि

अदितिके पुत्रोंसे दयाकी भिक्षा माँगें। मैं केवल चेतावनी देने आया हूँ—मर्यादा आपने भङ्ग की है।'

'मर्यादा मैंने—हम अमरोंने भङ्ग की?' महेन्द्र अपने सिंहासनसे उठ खड़े हुए—'महाभाग सैंहिकेय! मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। इस समय किसने कौनसी मर्यादाका अतिक्रमण करके आपकी अवमानना की है? हम उसे दण्डित करेंगे।'

'आप मुझे यह विश्वास कर लेनेको कहते हैं कि भगवान हंस-वाहन भी अपने द्वारा निर्धारित मर्यादा विस्मृत हो जाते हैं?' अङ्गारनेत्र राहुने व्यङ्गपूर्वक पूछा—'आज अमाके पर्वकालमें जबकि सूर्यको मेरा ग्रास होना चाहिए, विश्व निर्माताने कोई दूसरा राहु निर्मित करके मार्तण्डको ग्रस्त करने भेजा है? यह दैत्य-द्वेषी अदिति-पुत्रोंकी दुरभिसन्धि नहीं है?'

'दूसरा राहु? हमने तो किसीको नहीं भेजा। भगवान ब्रह्मा किसीको भेजते तो मुझे अवगत कर देते।' इन्द्रको चिन्ता हुई, होनी चाहिए थी; क्योंकि लोकपालों एवं देवताओंके अधिपतिको त्रिभुवनमें व्यवस्था बनाये रखनेका दायित्व वहन करना पड़ता है। जो सृष्टिकी मर्यादा ही नहीं मानता, वह इन्द्रकी अमरावतीके लिए आतङ्क नहीं बनेगा? महेन्द्र सुधर्मासे निकलकर ऐरावतपर आरूढ़ हुए। उन्होंने वज्र सम्हाल लिया था। राहुको साथ लेकर बढ़े—'देखते हैं कि इतना औधत्य करनेका साहस किसमें आगया है!'

'आप जानते हैं कि मुझे कभी-कभी केवल अमा और पूर्णिमाको आहार प्राप्त होता है।' राहुने मार्गमें सुनाया—'मेरे शरीर है नहीं। शशि अथवा सूर्य कुछ घटिकाओंको मेरे भीतर (मुखमें) आ जाते हैं तो मानसिक तृप्ति होती है। आज मैं पर्व पाकर पहुँचा सूर्यके समीप तो वहाँ सूर्य-रथमें कोई महाकाय वानर मुझसे कुछ क्षण पूर्व पहुँच गया। उसने थोड़ी क्रीड़ा की भास्करके साथ और फिर उन्हें उठाकर अपने मुखमें रख लिया। मैंने तो समझा कि आपने सन्धि भङ्ग की है।'

'अब तुम रविको अपना ग्रास बना सकते हो!' इन्द्रने राहुको उत्साहित किया।

'राहु बढ़ा सूर्य-मण्डलकी ओर; किन्तु तुमने तो राहुको ही झपटकर पकड़ लिया।' देवर्षि खुलकर हँसे—'वह त्राहि ! त्राहि !! चिल्लाने लगा। लेकिन तुमने सूर्यको मुखसे निकाल दिया था।'

मुझे कोई स्वाद नहीं जान पड़ा, सूर्यमें। मेरे मुखमें पहुँचकर भगवान भास्करने अपने करोंसे मेरे मुखके अन्तरालका स्पर्श किया। मैं चौंक गया कि भूलसे मैंने कोई सजीव प्राणी मुखमें डाल लिया है। हम वानर उपदेव सर्वथा शाकाहारी हैं। मैंने राहुको भी कोई जम्बूफलके समान परिपक्व काला फल समझकर ही पकड़ा था। वह बिना हाथ-पैरका गोल मुख—लेकिन जब वह आर्तनाद करने लगा, मैं समझ गया कि वह भी प्राणी है। उससे मुझे कोई द्वेष नहीं था। मैंने उसे छोड़ दिया। वह भागा भयके कारण। मैं उसे पुनः पकड़नेकी इच्छा नहीं करता था। 'त्राहिमाम् ! त्राहिमाम् !' पुकारता राहु भागा और ऐरावतकी ओटमें छिप गया। तब मेरा ध्यान ऐरावतकी ओर गया। तब तक प्राणी और फलमें अन्तर कर-पाने जितना विवेक मुझमें नहीं था। मुझे लगा कि यह बहुत बड़ा श्वेत फल सम्मुख है। मैं ऐरावतको फल समझ कर उसे पकड़ने झपटा। मुझे क्षुधा पीड़ित कर रही थी। तभी इन्द्रने वज्र उठा लिया। तीव्र प्रकाश, प्रबल गड़गड़ाहट और मुझे लगा कि मेरे हनुको भस्म कर दिया गया है। मैं कुछ समझ सकूँ, इससे पूर्व ही संज्ञाशून्य हो गया।

मुझे देवर्षिने बतलाया था—'देवराज इन्द्र ऐरावतके साथ तत्काल लौट गये। राहुने सूर्यको अपना ग्रास बनाया। मेरा मूर्छित शरीर सामान्य अवस्थामें सूर्य-मण्डलके चारों ओर उपग्रहके समान सदा घूमते रहनेके लिए छोड़ दिया गया था। इन्द्रने यह भी जानना आवश्यक नहीं माना कि यह शरीर किसका है। वहाँ एक ओर अनति दूर पवन देव भी विद्यमान हैं, इसे देखकर भी सहस्राक्षने नहीं देखा। देवाधिपति अकारण किसी दिक्पालकी ओर क्यों ध्यान देने लगे।'

'मुझे कितना दुःख हुआ, कितना रोष आया देवताओंपर, इन्द्रपर, इसे वर्णन नहीं किया जा सकता।' मेरे पिता पवनने मुझसे कहा कुछ दिनके अनन्तर—'मैंने तुम्हारे मूर्छित शरीरको सम्हाल लिया। जैसे वात्याचक्रके ऊपर कोई शुष्क पत्र स्थिर हो जाय—मैं धीरे-धीरे तुम्हारे शरीरको लेकर मन्दराचलकी गुफामें आया। वहाँ तुमको अङ्कमें लेकर मैं स्थिर बैठ गया।

मैंने अपनी समस्त गति समेट ली। मेरा पुत्र—मेरा एकमात्र पुत्र मेरे अङ्कमें मूर्छित पड़ा था ! मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा था।'

'तुम्हारे हनुका वामपार्श्व भग्न हो गया था। वहाँसे रक्त आता, यदि मैंने अपने उस वेगसे जो तुम्हारे शरीरमें था, रक्तको सम्हाल न लिया होता।' पिताने बतलाया था—'मुझे अतिशय क्रोध आ गया था। मैं जगत्प्राण हूँ। शक्रने मेरी अवज्ञाका साहस किया ! मेरे पुत्रपर वज्र-प्रहार ? अब इन्द्र और इन्द्रका त्रिभुवन बिना वायुके अपना काम चलावे—मैंने केवल अल्पप्राण भूलोकके प्राणियोंपर दया की। ऐसा न करता तो पृथ्वी उसी समय प्राणिहीन हो जाती। तुमने पृथ्वीपर जन्म लिया था। पार्थिव प्राणी तुम्हारे थे। अतः मेरे अपने थे। पृथ्वीपर वायुकी गति तथा श्वासोच्छ्वासमें किसीके लिए कोई अन्तर नहीं पड़ा; किन्तु स्वर्गमें और असुरलोकोंमें भी श्वास-रोध सबका हो गया। मुझे इन्द्रके कारण सुरोंपर और राहुके कारण असुरोंपर भी रोष था।'

'कुछ क्षण भी व्यतीत नहीं हुए थे कि मन्दराचलकी उस गुफाके सम्मुख स्वयं भगवान हंसवाहनका हंस अपने पक्षोंकी गतिसे सस्वर सामगान गगनमें गुञ्जित करता उतरा। मैं चौंक गया। तुम्हारा शरीर भूमिमें रखकर मैंने लोकपितामहको प्रणिपात किया।' पिता इस वृत्तको सुनाते समय भी आवेशमें आगये थे—'मैंने देख लिया कि प्रायः समस्त सुर सृष्टिकर्त्ताके पीछे खड़े हैं।'

'वत्स!' लोकपितामहने अभय कर उठाया। 'आप समर्थ हैं !' आप किसी भी अन्यको श्वासोच्छ्वासका माध्यम बना सकते हैं !'

मैंने अपना आक्रोश स्पष्ट व्यक्त किया—'मेरा पुत्र मेरे सम्मुख मृत पड़ा है। मुझमें कोई उल्लास है कि मैं गतिशील बना रहूँ ? इतनेपर भी मैंने आपकी अवज्ञा नहीं की है। मर्त्यलोकके अल्पप्राण-प्राणी किसी कष्टका अनुभव नहीं करते हैं। मेरे पुत्रपर जिन्होंने वज्रका प्रहार किया, जिनके कारण यह आघात हुआ, मैंने उनको भी अभी गतिशील रखा है। केवल अपनी प्राणात्मक गतिका रोध—किसी सिद्ध, ऋषिलोकमें मैंने कोई धृष्टता नहीं की है; किन्तु अब मैं अपने सुतके शत्रुओंको किसी प्रकारका सहयोग नहीं देना चाहता। आप क्षमा करेंगे मुझे, यदि अब इस वर्गकी आन्तर-वाह्य समस्त गतिमें अपना सहयोग समाप्त करदूँ। मैं देख लूँगा कि मेरे सहयोगसे रहित होकर शक्रके वाहु वज्रका वहन कैसे करते हैं और उनका वज्र ही कैसे गतिशील होता है।'

'देवताओंने एक साथ आर्तनाद किया—नहीं ! नहीं !' मैं पिताके कहे बिना भी समझ सकताहूँ कि उनके वाक्योंका क्या अर्थ है । वे यदि अपना सम्पूर्ण सहयोग समाप्त करदें–सुर हों या असुर, वे गतिहीन, चेतनाहीन जड़-द्रव्यमात्र रह जायेंगे ।

'बिना एक शब्द कहे सृष्टिकर्त्ता अपने वाहनसे उतर पड़े ।' पिताने बतलाया—'वे स्थिर पदोंसे मन्दरकी उस गुफामें प्रविष्ट हुए । अपने करके कमण्डलु-जलसे उन्होंने तुम्हारे शरीरको अभिसिञ्चित किया । तुमने नेत्र खोले और मैं यह देखकर हर्ष विह्वल हो उठा कि तुमने बिना किसीके संकेतके पृथ्वीमें पड़कर भगवान ब्रह्माको प्रणिपात किया ।'

'वत्स हनुमान!' लोकस्रष्टाने ही तुम्हारा नामकरण किया—'तुम अजर-अमर होगये । मेरा ब्रह्मास्त्र भी तुमको पीड़ित नहीं करेगा । कोई वरदान ?'

'श्रीराघवेन्द्रके चरणोंमें अविचल भक्ति !' मैंने अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की ।

'एवमस्तु!' हंसवाहन प्रभुने मेरे मस्तकपर अपना कर-कमल रखा । पुनः वे पिताकी ओर अभिमुख हुए—'तुम शक्रको क्षमा कर दो !'

पिताने मस्तक झुका लिया । सुर तथा असुरोंका श्वासरोध समाप्त हो चुका था । सहसा देवराज इन्द्र आगे बढ़े—'वत्स! मेरा वज्र और इन्द्रास्त्र तुम्हारा कभी कुछ नहीं बिगाड़ेंगे । केवल एक अनुरोध—पृथ्वीपर मेरे अंशसे उत्पन्न वानर सुग्रीव हैं किष्किन्धामें । तुम उनके रक्षक-सहायक रहना ।'

'मैं आज्ञापालन करुँगा ।' मैंने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया ।

'मैं अपना शतांश तेज तुम्हें प्रदान करता हूँ ।' भगवान भास्करने आगे आकर आशीर्वाद दिया—'अब तुम्हें आतप अथवा पिपासा कभी कष्टप्रद नहीं होगी ।'

'तुम यमदण्डसे निर्भय होगये ।' धर्मराजका वरदान मिला—'कोई व्याधि तुम्हारा कभी स्पर्श नहीं करेगी ।'

'मेरा पाश तुमपर निष्प्रभाव रहेगा और जलसे तुम्हें कोई भय नहीं होगा ।' वरुण देवने कहा—'वारुणास्त्र तुमको आर्द्र भी नहीं करेगा ।'

'मेरी गदासे तुम निर्भय हो युद्धमें अविषह्य रहोगे। जिसे जब चाहे प्रसन्न होकर सम्पन्न बना सकोगे।' धनाधीश कुबेर बोल उठे—'यक्ष-राक्षसोंसे तुम नित्य अजेय रहोगे।'

इतनेमें विश्वकर्माने कहा—'वत्स, समस्त आयुधोंका निर्माता मैं आशीर्वाद देताहूँ कि तुम मेरे द्वारा निर्मित सभी आयुधोंसे अक्षत रहोगे।'

'मेरे द्वारा निर्मित आयुधोंसे और मेरे पाशुपतास्त्रसे भी।' मैंने और पिताने भी नहीं देखा कि कब भगवान वृजभध्वज उपस्थित होगये। पिताके साथ मैंने उनके श्रीचरणोंमें प्रणिपात किया तो मुझे दोनों करोंसे उठाकर अङ्कसे लगा लिया उन्होंने—'पुत्र तो तुम मेरे हो। यह पवन तो अपने पुत्रत्वका आरोपण मात्र करता है। तुम चिरायु हो और आश्रितोंके रक्षक हो।'

'आग्नेयास्त्रसे और मेरी ज्वालासे, तुम्हें केवल प्रसन्नता प्रदान करे इतनी ही उष्णता मिलेगी।' अग्निदेवका यह वरदान लंकादहनके समय मेरे लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ था।

वरदानोंकी झड़ी लग गयी। सभी सुरोंने अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार आशीर्वाद दिया। उसमें सबके अस्त्र-शस्त्रोंसे अभय और उनकी शक्ति साधनका स्वेच्छानुसार उपयोग करने—दूसरोंको प्रदान करनेकी सामर्थ्यके वरदान भी सम्मिलित थे।

भगवान ब्रह्मा प्रथम अपने लोक चले गये थे। भगवान सदाशिव वृषभारूढ़ हुए तो मैंने पुनः प्रणति की। सभी देवता आशीर्वाद देकर अपने-अपने धाम पधारे। मेरे पिताने अन्तमें वरदान दिया—'पुत्र! तुममें मेरे समान वेग जन्मसे है। तुम्हारी गति सर्वत्र अनवरुद्ध रहेगी। मेरा वायव्यास्त्र तो तुम्हें देखकर ही शान्त होजायगा। जितने भी वायु-शरीरी भूत-प्रेत पिशाचादि हैं, तुम्हारे स्मरणसे दूर भागते रहेंगे।'

पिताने ही मुझे मेरी माताके समीप जानेका मार्ग-निर्दिष्ट किया। जब मैं वहाँ पहुँचा—माता मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं। पिता पवनने अदृश्य रहते हुए जो कुछ हुआ था, सब सुना दिया। इससे माता प्रसन्न हुईं; किन्तु उन्होंने कहा—'अब ऐसे आकाशमें मुझसे पूछे बिना मत दौड़ना। वहाँ कोई फल नहीं होता।'

———

६—बाल-चापल्य

'आप कभी चपल भी रहे हैं ?' कुमारोंको तो श्रीपवनपुत्र सदा ही गम्भीर लगे हैं। उनके मनमें प्रश्न उठा—'ये शैशवमें चपल रहे होंगे तो क्या करते होंगे ?'

'उपदेव सही, हम हैं तो वानर ही।' हनुमानजी हँसे—तुमने कभी कपि भी गम्भीर देखा है ? कपि तो वृद्ध भी चपल ही होता है और कपि-किशोरकी चञ्चलता तो लोकप्रसिद्ध है। बहुत चञ्चल था मैं अपने शैशवमें।

बालकोंके नेत्रोंमें उत्सुकता देखकर श्रीकेशरीकुमार स्वयं ही वर्णन करने लगे—मुझे जब कोई महागज वनमें मिल जाता था तो मैं उसके पद पकड़कर उठाकर देखता था कि वह कितना भारी है। कोई गज मुझे कभी भारी नहीं लगा। मेरी समझमें ही नहीं आता था कि मेरे उठानेपर गज सूड़ ऊपर उठाकर क्यों भयसे चिग्घाड़ने लगते थे। मैं उन्हें न पटकता था, न कष्ट देता था। यह तो केवल विनोद था—भारोत्तोलनका विनोद।

सभी गज गहुत अल्प भारके होते हैं। उनको उठानेसे तो थोड़ा भी व्यायाम नहीं होता था। इसलिए मैं वड़े-बड़े वृक्षोंको नीचेसे पकड़कर हिलाने लगता था। मेरें हिलानेसे कोई वृक्ष उखड़कर गिर जाय, मेरे कूदनेसे वृक्षकी मोटी शाखा टूट जाय तो इसमें मैं क्या कर सकता था ?

मुझे खीझ आती थी जब मैं किसी सिंह या व्याघ्रको किसी मृग अथवा दूसरे सीधे पशुके पीछे दौड़ते, उसको आतङ्कित करते देखता था। तब मैं उस सिंह या व्याघ्रकी पूँछ कूदकर पकड़ लेता था। अनेक बार ये पशु पूँछ पकड़ते ही अपने वेगके कारण गिर पड़ते और लोटपोट होने लगते थे। कोई गुर्राता तो मैं उसके कान उमेठ देता था।

बहुत शीघ्र वनके क्रूर प्राणियोंने समझ लिया कि मैं कहीं समीप होऊँ तो उन्हें शान्त रहना चाहिए। किसी अबल पशुको भयभीत करना उन्हें भारी पड़ सकता है। वे वनमें मेरी उपस्थिति समझते ही झाड़ियोंमें दुबक जाया करते थे। शशक, मृग आदि मुझे प्रिय लगते थे। मैं गवय

अथवा चीतलोंके साथ चौकड़ी भरता दौड़ता-कूदता था। लेकिन उनका साथ देनेमें अपने वेगको सम्हाले रहनेके कारण शीघ्र ऊब जाता था।

एक शिखरसे कूदकर दूसरेपर चले जाना हमारा सहज स्वभाव है। बाल-क्रीड़ामें यह कपि-कुमारको बहुत प्रिय होता है। इसमें यदि शैल-शिखर भग्न होते हैं तो सृष्टि-निर्माताको उन्हें क्या कुछ और सुदृढ़ नहीं बनाना चाहिए ?

ऋषि-मुनियोंके आश्रम मुझे बहुत प्रिय थे—अब भी प्रिय हैं। मुझे कैसे पता हो सकता था कि वे ध्यानस्थ हों तो उनकी गोदमें नहीं बैठना चाहिए। मुझे तो अपने पिताके समान लगते थे वे। जब उनमें कोई बैठा हो—भले नेत्र बन्द करके बैठा हो, मैं कूदकर उसकी क्रोड़ीमें जा बैठता था। तब मैं यह कहाँ समझ पाता था कि मेरा भार उन्हें कष्ट देता है। यह समझ पाता तो मैं अपना भार कम कर लेता। हमको तो जन्मसे भार कम करने या बढ़ानेकी लघिमा और गरिमा सिद्धियाँ प्राप्त थीं।

मानव शिशु भी मल-मूत्रका वेग होनेपर उसका त्याग तत्काल कर देते हैं। वानर-बालक कैसे विचार करता कि कहाँ यह करना, कहाँ नहीं करना ; किन्तु अब समझता हूँ कि इस असावधानीसे ऋषि-मुनियोंको सचमुच क्लेश होता था। उनकी यज्ञशाला, उटज आदि अपवित्र हों तो उन्हें कष्ट तो होगा ही।

मैं मुनियोंके कमण्डलु उठाता। बालक अनुकरण ही तो करता है—मैं भी अनुकरण करता था ; किन्तु कमण्डलु लेकर कूदते ही वह किसी शाखासे टकराकर टूट जाता था। मुनियोंके वल्कल लेकर मैंने अनेक बार उनके समान ही अपना देह आच्छादित करनेका प्रयत्न किया। शीर्णकाय तपस्वियोंका वल्कल मैं अपने शरीरपर लपेटने लगता तो वह पूरा ही नहीं पड़ता था। मैं उसे पूरा करनेके लिए खींचता था और वल्कल फट जाता था। ऐसे ही उनके मृगचर्म भी फट जाते थे।

केवल जटा-श्मश्रुधारी मुनिगण ही यज्ञ कर सकते हैं, मैं नहीं कर सकता ? कठिनाई यह थी कि मैं अवसर देखकर जब भी किसीका स्रुक्, स्रुवा अथवा प्रोक्षिणी-पात्र उठाता था तभी कोई न कोई दौड़ पड़ता था कुछ कहता-पुकारता। ऐसेमें कैसे ध्यान रहे कि पात्र सम्हालकर नीचे धर देना है। कभी मैं उस पात्रको लिये वृक्षपर कूद जाता और कभी फेंक कर। अनेक बार इस कुतूहलने मेरे द्वारा यज्ञ-पात्रोंको भग्न कराया।

ऋषि-मुनियोंका मुझपर स्नेह था। कोई मुझसे कभी रुष्ट नहीं हुआ। किसीके मनमें मुझे शाप देनेकी बात नहीं उठी; किन्तु आश्रमके वृक्ष अथवा उनकी शाखाएँ टूट जायँ, यज्ञपात्र, बल्कल, कमण्डलु टूट-फूटकर अनुपयोगी हो जायँ तो उन अपरिग्रही वनवासियोंको असुविधा तो होनी ही थी। कब तक वे यह उत्पात सहन कर सकते थे।

'अपने लाल को समझाओ!' कभी भी कोई मुनि या ऋषि मेरे पिता अथवा माताके समीप उपालम्भ देने पहुँच जाते थे—'हमारा कमण्डलु इसने फोड़ दिया और अभी लताओंमें लगे नवीन कमण्डलु कच्चे हैं।'

'हमारे इस बल्कल को देखलो।' कोई मेरी मातासे कहते—'आप जानती हैं कि इस ऋतुमें वल्कल वृक्षोंसे नहीं मिलता और हम सव आवश्यकतासे अधिक परिग्रह करते नहीं हैं।'

'यह अनेक बार हवन-आराधना कालमें ही यज्ञ-मण्डप या अर्चास्थल अपवित्र कर आता है।' इस प्रकारके उपालम्भोंसे मेरी माता बहुत खिन्न होती थीं।

'तू ऋषि-मुनियोंको उत्पीड़ित क्यों करता है?' माता यह भी नहीं कह पाती थीं कि मैं मुनियोंके समीप जाऊँ ही नहीं। बालकको सत्पुरुषोंके समीप जानेसे वारित किया जायगा तो वह कुसङ्गमें पड़ सकता है, यह आशङ्का भी उन्हें त्रस्त करती थी।

'मैं तो किसीको कष्ट नहीं देता!' सचमुच मैं किसीको कष्ट देना नहीं चाहता था। किसीकी कोई हानि नहीं करना चाहता था; किन्तु मेरे स्वाभाविक चापल्यका मैं क्या करता?

'आप सब समर्थ हैं! यह शिशु है, इसके अपराध क्षमा करें।' एक बार उपालम्भोंसे खिन्न मेरी माताने साश्रुलोचन, बद्धाञ्जलि ऋषियोंसे प्रार्थना की—'आप कुछ ऐसी कृपा करें कि यह चपलता त्यागकर अध्ययनमें लगे।'

'इसे अपने बलका, वेगका भी अभिमान है!' एक वृद्ध ऋषिने बहुत गम्भीर होकर कहा—'असीम वेग, अपरिमेय शक्तिके बोधने ही इसे इतना चपल तथा प्रमत्त बना दिया है। हम इसका उपाय करेंगे।'

'इसके बल-विक्रम-वेग............?' माताका कण्ठ भर आया। वे अत्यन्त कातर हो उठीं।

'देवि ! आप भय मत करो।' उस वृद्ध ऋषिने आश्वासन दिया— 'आपका कुमार भुवनका रक्षक, सबका आराध्य होगा। इसका अनिष्ट करनेका विचार भी किसी सात्विक चित्तमें नहीं आ सकता। यह संयमित रहे—इतना ही करना है।'

'आपका अनुग्रह........' माताने उन वृद्ध ऋषिको प्रणाम किया। वे दूसरे साथ आये मुनिगणोंके साथ उस दिन चले गये।

'तू अपने बल-वेगको विस्मृत हो जा !' मैं जब दूसरे दिन उन ऋषिके आश्रममें पहुँचा और सहज क्रीड़ा करने लगा—मेरे हिलानेसे एक भारी आश्रम-वृक्ष मूल सहित उखड़ गया। तब उन ऋषिने अपने दक्षिण करमें जल लेकर मुझे शाप दिया—'तुझे अपने बल-विक्रम-वेगका स्मरण तब होगा; जब कोई स्मरण दिलावेगा।'

इस शापके पश्चात् तो मैं शिथिल हो गया। मैं विस्मृत ही हो गया कि वृक्षों अथवा गिरि-शिखरों पर मैं छलांग लगा सकता हूँ अथवा कोई भारी वस्तु उठा भी सकता हूँ। तबसे मैं शान्त रहने लगा। तबसे बहुधा माताके समीप ही रहने लगा।

—:×:—

७—मातृ स्मरण

'लाल ! तू सचमुच हनुमान बनेगा ?' मेरी माता अनेक बार उल्लासमें आकर मेरे मस्तकपर, मेरी पीठपर, मेरी लांगूलपर कर फिराती थीं। 'कहीं तू सचमुच हनुमान बन जाता तो मैं धन्य हो जाती ! धन्य हो जाते तेरे पिता ! धन्य हो जाता यह वानर वंश।'

'माँ ! मैं हनुमान तो हूँ।' मैं कहता था और माताके अङ्कमें मस्तक रख देता था।

'हनुमान—श्रीरामका सेवक हनुमान' —माता पता नहीं गगनमें क्या देखने लगती थीं। उनका स्वर गद्गद हो उठता था—'परात्पर पुरुष मर्यादा पुरुषोत्तमका सेवक आञ्जनेय !'

'मैं आञ्जनेय तो हूँ। तुम्हारा पुत्र नहीं हूँ क्या ?—मैं माताकी ठुड्डीमें कर लगाता—'परात्पर पुरुष श्रीराम कहाँ हैं ? मैं उनका सेवक बनूंगा। कहाँ हैं मेरे वे स्वामी ?'

माता मुझे श्रीरामचरित सुनाने लगती थीं—पूर्व कल्पका राम-चरित। माताकी वह भाव विभोर वाणी—मैंने शैशवमें अनेक अनेक बार उन पूजनीयाके श्रीमुखसे श्रीराम-चरित सुना है। सभी बालकोंको—उपदेव बालकोंको भी कथा—उपाख्यान सुनना प्रिय होता है। मैं आग्रह न भी करता तो भी माता मुझे प्राचीन पुण्यपुरुषोंकी गाथायें सुनाती थीं। इतिहास-पुराणोंकी कथायें मैंने माताके मुखसे उसी समय सुनी हैं ; किन्तु मुझे दूसरी कथाओंके श्रवणमें—दूसरे अवतारोंके चरित-श्रवणमें भी विशेष रुचि नहीं थी। मुझे रुचि थी रामचरित सुननेमें। श्रीअयोध्यानाथ मुझे अपने लगतें थे और वही सचमुच मेरे अन्तरके स्वामी तब भी थे।

माताको भी जो आनन्द--जो तन्मयता रामचरित सुनानेमें प्राप्त होती थी, वह दूसरे किसी चरितके वर्णनमें प्राप्त नहीं होती थी। माताका भी एक हनुमान था और वही श्रीरामका हो सकता था। इस हनुमानको लेकर माताके अन्तरमें पता नहीं कितनी कल्पनाएँ, कितने स्वप्न थे।

श्रीरामका पूर्व कल्प-चरित—अनिवार्य रूपसे उन चरितोंमें भी लङ्काधिप रावणका वर्णन आता ही था और वह रावण मुझे बहुत अप्रिय था। बड़ा क्रोध आता था मुझे रावणपर—विशेषतः तब जब मैं सुनता था कि जगज्जननीका हरण किया। मुझे तब भी—माता अञ्जनीके अङ्कमें बैठे होनेपर भी लगता था कि मेरी वास्तविक माता तो वे श्रीजनकात्मजा ही हैं। मुझे उस हनुमानपर भी झल्लाहट होती थी—उसने रावणको मार ही क्यों नहीं दिया।

यह तो अब समझता हूँ कि रावण दूसरोंके लिए चाहे जैसा रहा हो, भले वह लोक रावण—सबको रुलाने वाला रहा हो, मुझे उसका कृतज्ञ होना चाहिए। मुझपर उसके असीम उपकारका भार है। रावण ही था कि उसके कृत्योंके कारण मुझे अपने हृदय सर्वस्व, अपने सदा-सदाके स्वामीके श्रीचरणोंका सान्निध्य प्राप्त हुआ। अपने आराध्यकी सेवाका सुअवसर मिला।

यह भी अब समझता हूँ कि पूर्व कल्पोंमें हनुमानने जो कुछ किया था, वही उचित था। वही मुझे भी करना पड़ा। वही करनेके लिए हनुमान्की रचना सृष्टिका सञ्चालक–नियन्ता कल्प-कल्पमें करता है।

'रावण तो अब भी लङ्कामें राज्य करता है!' मैं बहुत क्रुद्ध हो उठता था तो माता हँस पड़ती थीं। वे मुझे बतलाती थीं—इस कल्पमें रावण है। समुद्रके मध्य त्रिकूटके शिखरपर उस रावणकी राजधानी—स्वर्णपुरी लङ्का है।'

'मैं उसे मार दूंगा!' मैं प्राय: उत्तेजित हो उठता था।

'क्यों? क्या हानि की है उसने तुम्हारी?' माता हँसकर कहती थीं—'वह वानरराज बालिका मित्र हो गया है और अयोध्यापर आक्रमण न करने की प्रतिज्ञा की है उसने।'

'अयोध्या—अयोध्याके स्वामी, मेरे आराध्य श्रीराघवेन्द्र!' मैं भाव-विभोर पूछने लगता था मातासे—'वे श्रीराम कहाँ हैं? कहाँ है अयोध्या?'

'तुम अयोध्या नहीं जा सकते।' माताका वात्सल्य उमड़ पड़ता था—'अभी श्रीरामका अवतार कहाँ हुआ? अयोध्याके मानवोंके मध्य कोई वानर बालक कैसे रह सकता है?'

'क्यों नहीं रह सकता?' तब भी मेरी समझमें नहीं आता था कि मैं अयोध्या रहूँ, इसमें कठिनाई क्या है। यह बात तो अब सिद्ध हो चुकी है कि अयोध्याके जन सामान्य भी इतने उदार हैं कि उनके मध्य किसी भी प्राणीको सहज ही आश्रय प्राप्त हो सकता है।

'अयोध्यामें रहने और श्रीरघुनाथकी सेवा करनेके लिए कुछ योग्यता भी तो चाहिए।' माताका यह ऐसा अस्त्र था, जिसके सम्मुख मैं चुप हो जाता था। श्रीराघवेन्द्र की सेवाके उपयुक्त तो मैं न कभी था और न हो सकूंगा। एकाकपिकी योग्यता क्या? वे अनन्त करुणावरुणालय ही अपनी अहैतुकी कृपासे द्रवित न हुए होते—हनुमान अधिकारी था उनके श्री चरणोंके समीप बैठने का?

—:×:—

८—शिक्षा

'आप तो पता नहीं, क्या-क्या कहने लगते हैं।' रघुकुलके बालकोंको श्रीहनुमानजीकी योग्यता—असीम विद्याके सम्बन्धमें कोई भ्रम नहीं है। वे पवननन्दनको बीचमें ही रोककर पूछते हैं–'आप तो भगवान भुवनभास्करके साक्षात शिष्य हैं। नित्ययात्री श्रीसूर्यनारायणने कैसे पढ़ानेका अवसर प्राप्त किया ? आपने धरापर किसी महर्षिको क्यों नहीं चुना अपने विद्या-गुरुके रूपमें ?'

'मैं अधिकारी नहीं हूँ अयोध्या जानेका—मुझे अभी कुछ आता नहीं है।' यह माताका बार-बार कहना मेरे मनको उत्तेजित करता था। साथ ही मेरा हृदय यह सोचकर बैठ जाता था कि 'मैं वानर हूँ, मेरी योग्यता होगी भी तो भला कितनी? मेरे हृदयके स्वामी तो सच्चिदानन्दघन हैं। श्रुति उनका निःश्वास है। उनको अपनी विद्यासे—अपने ज्ञानसे एक वानर शिशु प्रसन्न कर पावेगा ?'

'वे दयाके, कृपाके अनन्त सागर हैं। अशरण-शरण, अनाथ-नाथ, दीनबन्धु, पतितपावन हैं।' माताकी यह वाणी मेरे लिए आश्वासन थी—'वे साधनहीन, शक्तिहीन, सर्वथा दुर्बल—सब प्रकारसे दुर्बल पर सबसे पहिले प्रसन्न होते हैं।'

यह सब तो ठीक; किन्तु उनकी सेवा करनी है तो सेवाकी कुछ तो योग्यता अपनेमें चाहिए। अतः आवश्यक था कि मैं अध्ययन करता। मैंने पितासे मचलना प्रारम्भ किया—'मेरा उपनयन करा दीजिए। मैं विद्याध्ययन करूँगा।'

'तुम किससे अध्ययन करोगे ?' पिताने एक दिन पूछा।

'जो सबसे बड़े ज्ञानी होंगे, सबसे बड़े विद्वान होंगे श्रुति-शास्त्रोंके, उनसे।' मैंने सोल्लास कहा—'वे कौन हैं ?'

'सबसे बड़े श्रुति-शास्त्रके विद्वान ?' पिता दो क्षण मौन रह गये—'मैं इसका निर्णय नहीं कर सकता। तुम किसी वृद्ध महर्षिसे पूछ लेना।'

ऋषि-महर्षि हमारे लिए दुर्लभ नहीं थे। मैंने मातासे सम्मति ली और महर्षि अगस्त्यके आश्रम पहुँच गया। मुझपर उन दयाधामका सदा स्नेह रहा है। मैंने उनके चरणोंमें प्रणाम करके जब जिज्ञासा की, वे भी गम्भीर होगये।

'सबसे बड़े लोकपितामह भगवान ब्रह्मा। सब ऋषि-महर्षिगणोंके आदिपुरुष वे; किन्तु उनको भी श्रुतियोंका ज्ञान भगवान नारायणसे प्राप्त हुआ।' महर्षिने कहा।

'भगवान नारायणने किससे अध्ययन किया?' मैंने बाल-चपलतावश पूछा।

'उन्हें कौन अध्यापन करावेगा? वे स्वयं ज्ञानस्वरूप हैं।' महर्षिने स्नेहसे समझाया—'श्रुति उनका निःश्वास है—का अर्थ ही है कि श्रुति उनका स्वरूप—उनका जीवन है। वे प्रभु ही ज्ञान हैं।'

'मैं उन्हींसे अध्ययन करूँगा।' मैंने झटपट निर्णय कर लिया—'कहाँ मिलेंगे वे? मुझ वानरको वे पढ़ावेंगे?'

पता नहीं क्यों महर्षिने नेत्र बन्द कर लिये। कुछ काल वे ध्यानस्थ रहे। नेत्र खोलनेके पश्चात बोले—'वत्स! अवश्य वे तुम्हें अध्यापन करेंगे। तुम उनके—केवल उन्हींके अन्तेवासी हो सकते हो। साक्षात रुद्रको पढ़ा सके, ऐसा कोई महर्षि जनलोकमें भी नहीं है, धरापर कहाँसे होगा?'

'वे कहाँ मिलेंगे?' मैंने पुनः पूछा।

'ये गगनमें भासमान भगवान आदित्य साक्षात नारायण हैं।' महर्षि अगस्त्यने आकाशकी ओर संकेत किया—'समस्त श्रुतियोंके मन्त्र इन मरीचि-मालीकी किरणोंके कम्पनमें नित्य शब्दायमान हैं। कोई भी ऋषि तभी ऋषि होता है जब वह इन सविता देवताकी कृपासे इनकी किसी किरणमें संयम करके उसके कम्पनसे ध्वनित मन्त्रका श्रवण करता है। अपने अन्तरमें और समाधिके द्वारा उस मन्त्रके अर्थका साक्षात्कार प्राप्त करता है।'

महर्षिकी वाणी मेरी समझमें तब ठीक-ठीक नहीं आयी थी, किन्तु मैं इतना समझ गया था कि भगवान सूर्य सबसे श्रेष्ठ ज्ञानी हैं। महर्षिसे मैंने विदा ली।

'मैं भगवान सूर्यसे अध्ययन करूँगा ।' लौटकर जब मैंने अपना यह निर्णय सुनाया, माता प्रसन्न हो गयी ।

'सर्वसाक्षी, सर्ववेदमय भगवान सूर्य ही हैं ।' माताने मुझे उत्साहित किया—'धराके ऋषि-मुनि पता नहीं वानर-बालकको अध्यापन करना स्वीकार भी करेंगे या नहीं ।'

पिताने मेरा उपनयन संस्कार करा दिया । यद्यपि हम उपदेवताओंके लिए यह आवश्यक नहीं था । मैं माताके गर्भसे मौञ्जीमेखला तथा मौञ्जी यज्ञोपवीत पहिने ही उत्पन्न हुआ था । किन्तु मैंने सुना था कि आर्य शिशु उपनीत होनेके पश्चात अध्ययन करने गुरु-गृह जाते हैं। मैंने इसीसे उपनयनका आग्रह किया । सविधि उपनयन हुआ मेरा ।

उपनीत हो जानेके पश्चात जब गुरु-गृह जानेका प्रश्न आया, मैंने गगनकी ओर देखा और हताश होकर बैठ गया । मेरे नेत्रोंसे अश्रु-बिन्दु टपकने लगे । अब तक मैंने सोचा ही नहीं था कि भगवान सूर्य इतने दूर हैं, मैं उन तक कैसे पहुँच पाऊँगा । ऋषिके शापके कारण मुझे अपने वेग एवं शक्तिका विस्मरण तो हो ही गया था ।

'तू खिन्न क्यों है ? रुदन क्यों कर रहा है ? माताने समीप आकर पूछा ।

'भगवान सूर्य पता नहीं कितनी दूर गगनमें हैं ।' मैंने रोते-रोते ही कहा—'मैं उनके चरणों तक कैसे पहुँच पाऊँगा ?'

'कितनी दूर ? ' माता खुलकर हँस पड़ी—'तू शिशु था तब तो उनको फल समझकर उन्हें निगलने पहुँच गया था उनके समीप और अब वे दूर हो गये ? मेरे लालके लिए भी त्रिभुवनमें कोई स्थान दूर है या कोई कार्य असाध्य है ? उठ ! वे रहे भगवान आदित्य ।'

माताने आकाशकी ओर हाथ उठाया तो मुझे ऐसा ही लगा कि सचमुच रवि-मण्डल तो अत्यन्त समीप है । अपना पलाश-दण्ड, मृगचर्म, कमण्डलु मैंने सम्हाल लिया । माताको प्रणाम करके उपनयन कराने वाले ऋषिसे अनुमति ली और आकाशमें ऊपर दौड़ पड़ा । मेरे लिए आकाशमें दौड़ने और पृथ्वीपर दौड़नेमें कोई अन्तर नहीं है । हम कपि छलांग लेनेके अभ्यस्त होते हैं ।

'यह केशरी-कुमार वानर हनुमान श्रीचरणोंमें प्रणिपात करता है !' मैंने जैसे ही भगवान सूर्यके रथका दर्शन किया, पृथ्वीमें नहीं, अन्तरिक्षमें पड़कर उन्हें प्रणिपात किया। मेरे लिए दृश्यमान रवि-मण्डलके अधिदेवता सप्तवर्णी सप्ताश्व रथारूढ़ भगवान भास्कर प्रत्यक्ष थे। मुझे पर्याप्त आगे प्रणिपात करना पड़ा था; क्योंकि सूर्य-रथका वेग बहुत अधिक है। मेरे उठनेसे पूर्व ही रथ समीप आ गया। अब मुझे रथके समान वेगसे पीछेकी ओर चलते भी जाना था।

'आयुष्मान भव ! पूर्णकामो भव !' भगवान सविताके सुस्पष्ट सुप्रसन्न स्वर सुनकर मैं आश्वस्त हुआ। वे ज्योतिर्मय देव कह रहे थे— 'हनुमान ! मैं तुम्हें पहिचानता हूँ। तुम कैसे आये इस समय ?'

'माता-पिताने आज्ञा दी है।' मैंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'आप अनुग्रह करके इस वानर बालकको अपना अन्तेवासी स्वीकार करें। विद्या-काम यह श्रीचरणोंमें उपस्थित हुआ है।'

'जो विद्वान होकर भी विद्याकाम, विनीत, श्रद्धावान, संयमी शिक्षार्थी-को ज्ञानदान नहीं करता, उन ज्ञानखलको ब्रह्मपिशाच योनि प्राप्त होती है।' भगवान सूर्यने खिन्न स्वरमें कहा—'वत्स ! तुम श्रद्धालु हो, दृढ़ संयमी हो, विनीत हो। तुम्हारे अधिकारमें कोई त्रुटि नहीं है; किन्तु मेरी विवशता तुम देख रहे हो। सृष्टिके परम सञ्चालकने मुझे इस रथसे उतरनेकी आज्ञा नहीं दी है। मैं रथसे उतरूँ तो प्रलय हो जाय। केवल प्रलय होनेपर मुझे विश्राम प्राप्त हो सकता है। मेरे ये हस्त-पादहीन सारथि अरुण अश्वोंको रोकना तो दूर, उनकी गतिको किञ्चित मन्द भी करना नहीं जानते और तुम यह भी देख रहे हो कि इस रथमें दो व्यक्ति सुविधापूर्वक बैठ सकें इतना स्थान नहीं है।'

'इसमें स्थान होता तो भी मैं अपने गुरुदेवके आसनपर, उनके समकक्ष आसीन होनेकी धृष्टता तो नहीं कर सकता था।' मैंने अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की—'किन्तु मुझे तो इस आपकी अनवरत यात्रा और मेरे अध्ययनमें कोई विरोध नहीं दिखलायी पड़ता। श्रीचरण देख ही रहे हैं कि मैं आपकी ओर मुख किये हूँ और इस रथके वेगके समान वेगसे पीछेकी ओर चलता भी जा रहा हूँ। मैं दीर्घकाल तक इसी प्रकार चलते रहनेमें अपने लिए कोई कठिनाई अनुभव नहीं करता।'

'तब ठीक है!' भगवान सूर्यने तत्काल कहा—'तुम्हारे जैसा शिष्य प्राप्त करके शिक्षककी सरस्वती सफल ही होती है। शुभारम्भ करो—गणानांत्वा गणपतिं………… ।'

'मेरी शिक्षा प्रारम्भ हो गयी। मैं भगवान सूर्यके सम्मुख था। वहाँ रात्रि अथवा सन्ध्याकालका प्रश्न ही नहीं था। उन कालके स्रष्टाके समीप कालकी कल्पना कैसी ?

अविराम सूर्य-रथकी गति। समान वेगसे पीछे चलनेकी मेरी गति अविराम और अविराम भगवान भास्करकी परावाणी। रथ चलता रहा, पीछेकी ओर मैं चलता रहा, बालखिल्य ऋषियोंका सम्मुख स्तवन चलता रहा, अप्सराओंका नृत्य चलता रहा, पीछेसे बलपूर्वक सूर्य-रथको नैऋति (असुर) कोलाहल करते ठेलते रहे और इन सबके मध्य भगवान आदित्यका अध्यापन चलता रहा।

मुझे साक्षान्नारायण शिक्षक मिले थे। यह मेरी बुद्धि, मेरी प्रतिभा, मेरी धारणाका प्रभाव नहीं है, यह उन सर्वसमर्थ ज्ञानघन तेजोमूर्तिकी कृपाका परिणाम है कि उनके शिक्षणका प्रत्येक शब्द अपनी व्याख्या सहित मेरे मस्तिष्कमें अङ्कित होता गया और कभी विस्मृत नहीं हुआ।

श्रुतियाँ जिनके संकेतसे साकार हो जाती हैं, वे स्वयं प्रवचन कर रहे थे। सृष्टिकर्ताके साक्षात् पुत्र तथा संसारके सभी ऋषि मुनि, शास्त्रज्ञ द्विजमात्र नियमपूर्वक नित्य वेदमाता गायत्रीके द्वारा जिनसे अपनी मेधाको प्रेरित करनेकी प्रार्थना करते ही रहते हैं, वे मेरे गुरुदेव—शिष्यका अज्ञान शिक्षकके लिए भी तो अशोभनीय होता है। जब उन्होंने मुझे अपना छात्र स्वीकार कर लिया—मुझे उनसे स्मृति, मेधा प्रदान करनेकी प्रार्थना करना कहाँ आवश्यक रह गया।

वेद, वेदाङ्ग सबका प्रवचन किया मेरे दयामय उन लोक गुरुने। कोई उपवेद उन्होंने अपने प्रवचनमें छोड़ा नहीं और न किसी विद्या, किसी कलाके रहस्यको प्रकट करनेमें कोई कार्पण्य किया।

भगवान सूर्य श्रुतियोंके मन्त्र, वेदाङ्गों एवं उपवेदोंके केवल सूत्र बोल रहे थे। वे प्रवचन कर रहे थे, यह उनका अपार वात्सल्य ही था,

अन्यथा प्रज्ञाके उन प्रकाशकके सङ्कल्प करने मात्रसे भी वह सब ज्ञान किसीकी भी बुद्धिमें उद्भासित हो सकता है।

मुझे व्याख्याकी आवश्यकता नहीं हुई। आयुर्वेद, स्थापत्यवेद, गान्धर्ववेद जैसे व्यावहारिक प्रशिक्षणकी विद्याओंमें भी किसी प्रशिक्षणकी आवश्यकता नहीं हुई। कोई शङ्का कहीं नहीं उठी। ऐसा कुछ होना नहीं था; क्योंकि जो अन्तर्यामी प्रज्ञाको भीतर बैठकर प्रकाशित करते हैं, वही बाहर प्रत्यक्ष उपदेष्टाके रूपमें आसीन थे।

'ऐसा होता तो है।' बालकोंने कहा—'हमने सुना है कि मर्यादा-पुरुषोत्तम जब भाइयोंके साथ गुरुगृह अध्ययन करने गये थे, तब भी ऐसा ही हुआ था। महर्षि वशिष्ठने केवल मन्त्र एवं विद्याओंके सूत्र सुनाये थे। चौंसठ दिनमें ही हमारे वे परमपूज्य सकल शास्त्र एवं विद्या निष्णात होकर लौट आये थे।'

'केवल एक अन्तर है।' हनुमानजी कहने लगे—'वहाँ श्रीराघवेन्द्रका यह प्रभाव था। उनको कुछ अध्ययन नहीं करना था। उन ज्ञानघनका तो केवल मर्यादा-स्थापन अभीष्ट था, गुरु-मुखसे विद्या-प्राप्तिकी। लेकिन मुझ वानर बालकमें बुद्धि कैसी? मेरे सम्बन्धमें तो समस्त प्रभाव मेरे प्रकाश धाम शिक्षकका।

वहाँ दिनकी गणना सम्भव नहीं थी। मेरा अध्ययन शीघ्र समाप्त हो गया। शिक्षण समाप्त हुआ तो भगवान भास्करने आशीर्वाद दिया—'वत्स! तुम्हारी बुद्धिमें समस्त ज्ञान सदा सतेज रहेगा। काल तुम्हारे ज्ञान एवं स्मृतिका आवरक कभी नहीं बनेगा। समस्त विद्याओंके रहस्य तुम्हारी कृपासे प्राणी प्राप्त कर सकेंगे।'

'देव! मैं अल्पशक्ति वानर हूँ।' मैंने अन्तमें जब अञ्जलि बाँधी, बोलना कठिन हो रहा था मेरे लिए—'मैं निखिल लोकोंके आराध्य, सर्वेश्वरके श्रीचरणोंमें क्या दे सकता हूँ। कोई सेवा करनेमें समर्थ नहीं; किन्तु यदि कृपा करके आप कोई आदेश दे दें तो मैंने किञ्चित् भी गुरु-दक्षिणा नहीं दी, इस ग्लानिसे बच जाऊँगा। लोकमें मेरा उपहास नहीं होगा।'

'मैं तुम्हारी श्रद्धासे, विनयसे परम सन्तुष्ट हूँ।' भगवान मार्तण्ड महिमामय हैं। उनके औदार्यकी सीमा नहीं है। उन्होंने मेरी सन्तुष्टिके लिए आदेश दिया—'धरापर मेरे अंशसे उत्पन्न वानर सुग्रीव है। वह मेरा अपना ही पुत्र है। तुम उसकी सहायता करना। उसकी रक्षा करना सङ्कटके समय। यही मेरी दक्षिणा।'

'मैं उनका आपके समान ही सम्मान करूँगा।' मैंने वचन दिया। अपने उदार शिरोमणि गुरुदेवकी आज्ञा लेकर उनको प्रणिपात करके मैं धरापर लौट आया।

तुम लोग जानते ही हो कि मैं नैष्ठिक ब्रह्मचारी हूँ। मेरे समावर्तन-संस्कारका प्रश्न ही नहीं था। मेरे प्रत्यागमनसे माता-पिता अत्यन्त आह्लादित हुए।

९-अयोध्यामें

आशुतोष सदाशिव एक दिन अकस्मात पधारे। एकान्तमें मुझे मिले। मैंने उनके श्रीचरणोंमें प्रणिपात करके अपनेको धन्य माना। अपने अंशको अपने नित्याश्रित इस शिलाद-तनय नन्दीश्वरको वे महिमामय विस्मृत नहीं हुए थे। वे इस जनको अपने आराध्यके करोंमें देने पधारे थे। प्राणियोंके परमगुरु वे महेश्वर—उनकी कृपाके बिना श्रीरघुनाथका सान्निध्य सुगम नहीं होता। वे नीलकण्ठ द्रवित हों तो श्रीअयोध्यानाथ दूर नहीं रह पाते।

'हनुमान ! अयोध्या चलोगे ?' उन्होंने स्नेहपूर्वक कहा—'परात्पर परम प्रभु अयोध्यामें अवतीर्ण हो चुके हैं और शैशव क्रीड़ा समाप्त करके अब बाल-लीला करनेमें लगे हैं। अब उनका सामीप्य प्राप्त हो सकता है तुम्हें।'

मैंने उनके श्रीचरण पकड़ लिये—'आप अनुकम्पा करेंगे तो यह भी सम्भव हो जायगा।'

'मातासे अनुमति ले लो।' गङ्गाधरने कहा—'देखते ही हो कि मैं एकाकी आया हूँ बिना वृषभके। अयोध्यामें देव अथवा उपदेव जाँय तो

केवल अर्चा ले सकते हैं। वहाँ उन्हें महाराजाधिराजके कुमार श्रद्धा सहित प्रणाम करेंगे।'

'उनकी अर्चा, उनका वन्दन लेने जाना........।' मैं कातर हो उठा। अपने आराध्यके श्रीचरणोंमें उपस्थित होना पहिली बार और वह भी अर्चा ग्रहण करने ?

'आशङ्का अकारण है।' मुझे आश्वस्त किया उन अवढरदानीने—'एक सामान्य कपि-शिशु अयोध्याके राजकुमारका पर्याप्त मनोरञ्जन कर सकता है। उसे उनके श्रीचरणोंमें बैठनेका स्वत्व सहज प्राप्त हो जायगा।'

मैंने जब मातासे कहा—'माँ ! मैं अयोध्या जा रहा हूँ।' उन वात्सल्यमूर्तिने मुझे अङ्कसे लगा लिया। उनका स्वर गद्‌गद् हो गया। उनके नेत्र बिन्दु मेरे मस्तकपर गिरने लगे—'पुत्र ! तुमने मेरा जीवन भी कृतार्थ किया। उन दयाधामका स्नेह प्राप्त हो तुम्हें।'

माताका आशीर्वाद—उन आराधनास्वरूपाके अन्तरसे निकला आशीर्वाद असफल हो नहीं सकता—मेरी पूरी आस्था थी। इस आस्थाने यात्राको अत्यधिक उल्लासपूर्ण बना दिया। माताका आशीर्वाद और भगवान आशुतोष स्वयं साथ चल रहे, अन्यथा मुझ कपिमें क्या था कि अयोध्याकी ओर उन्मुख होनेका साहस कर पाता।

हमारे लिए अयोध्या दूर नहीं थी। मेरे लिए रवि मण्डल ही दूर नहीं बना था और प्रभु शशाङ्कशेखरका तो मैं क्षुद्र अंश था। अयोध्या धरापर थी। इस अजनाभ**वर्ष**में* ही थी। अयोध्याके पार्श्ववर्ती अरण्य तक हम अलक्षित आकाशमार्गसे ही आये। कानन भूमिमें भगवान महादेवने मदारीका रूप ग्रहण किया। मैं छोटा-सा कपि-शिशु बन गया।

'मुझे तुमको बाँधना पड़ेगा !' सहास्य चन्द्रमौलिने कहा।

'जीव आपके साथ बँध नहीं पाता, इसीलिए तो अनादिकालसे बन्धनमें—मायाके बन्धनमें पड़ा है।' मैंने उन उमाकान्तके पावन पदोंको दोनों करोंसे पकड़ लिया—'अल्पप्राण असहाय असमर्थ है प्राणी। आप अनन्त करुणावरुणालय ही जब अकारण द्रवित होकर किसीको अपने गुण-पाशसे आबद्ध करलें, मायाके पाशसे वह मुक्त हो जाता है।'

*** भारतवर्षका भारत नाम पड़नेसे पूर्वका नाम।**

'मैं यह बन्धन-रज्जु श्रीरामके करोंमें देकर चला जाऊँगा।' मेरे कण्ठमें अत्यन्त कोमल रज्जु उन प्रभुने बाँधी जिनका व्यसन ही प्राणियोंको मुक्त करना है। मैं उसी समय धन्य-धन्य हो गया। सदाशिव अपने साथ जिसे निबद्ध कर लें, जिसकी बन्धन-रज्जुका छोर उन ज्ञानघनके करोंमें हो—प्राणीका इससे बड़ा कोई सौभाग्य हो सकता है ? मुक्ति-स्पृहा भी नहीं कर सकती इस बन्धनके साथ।

'वत्स ! तुम्हें इससे कोई कष्ट तो नहीं ?' कण्ठमें रज्जु बाँधकर उन करुणामयने पूछा।

'कष्ट-अभाव, चिन्ता-भय-शोक तो प्राणीको तब तक प्राप्त होते हैं जब तक उसे आपके इन श्रीचरणोंका स्मरण नहीं होता।' मैं अपने कपि स्वभावके अनुसार उछलने-कूदने लगा था—'आप सच्चिदानन्दघन किसीको बाँधेंगे भी तो ज्ञान अथवा आनन्दसे ही तो बाँधेंगे। अज्ञान-अविद्या एवं क्लेश आपके समीप ही नहीं आते। आप चाहें भी तो किसी को कष्ट दे कैसे सकते हैं।'

'तुम ठीक उछलते हो !' प्रभुने डमरू बजाया—अब कपि-कलाका अभ्यास कर लो ! चक्रवर्ती महाराज दशरथके राजकुमारोंको तुम्हें प्रसन्न करना है।'

मुझे कोई चिन्ता, सन्देह अथवा संकोच नहीं था। योग्य गुरु जिसे अपना लेते हैं--जिसे अपने साथ बाँध लेते हैं—जिसे अपना स्वीकार कर लेते हैं, उसका समर्पण जब तक परमेश्वर स्वीकार न कर लें, तब तक वे स्वयं सचिन्त रहते हैं। शिष्य तो अपनेको गुरुके हाथमें देकर निश्चिन्त हो जाता है। मुझे तो निखिल ब्रह्माण्डोंके परमगुरुने बाँधा था। उनके संकेतोंका अनुवर्तन—इतना ही तो शिष्यका कर्तव्य है।

हमने अरण्यसे निकलकर अयोध्याके बाह्य नगर-द्वारमें प्रवेश किया। द्वार-रक्षक वैसे भी दिनमें किसीसे कुछ पूछते नहीं थे। एक कलाजीवी मदारी अपने कपिके साथ नगरमें प्रवेश करे, इसमें पूछने जैसी कोई बात नहीं थी।

'यह स्वर्णरोमा कपि !' द्वार रक्षकोंने मेरी ओर प्रसन्नतापूर्वक देखा। यह प्रसन्नता, यह आश्चर्य नगरवासियोंमें मुझे प्रायः सर्वत्र देखनेमें

आया—'ऐसा अद्भुत कपि लाये हैं आप कि अवश्य हमारे महाराजाधिराज एवं उनके राजकुमार प्रसन्न होंगे।'

'केवल रोमावली ही इसकी स्वर्णिम नहीं है।' भगवान शङ्करने द्वारमें प्रविष्ट होकर वहीं डमरू बजाना प्रारम्भ किया—'इसमें अकल्पनीय रत्निम कला है।'

निखिल कलादिगुरुके करोंकी डमरू ध्वनि—वहिर्द्वारके समीप ही नगरके पुरुषों—स्त्रियों और बालकोंका समूह एकत्र होने लगा। सबसे अधिक बालक आये। उनका समूह बढ़ता गया। दूर-दूरसे बालक दौड़े आ रहे थे। स्त्रियाँ सेविकाओंके वर्गकी ही थीं; किन्तु पुरुषोंमें कुछ राजपुरुष भी आ गये। थोड़े ही क्षणमें वह समूह इतना बड़ा हो गया कि हम उससे वाहरकी स्थिति देख नहीं सकते थे।

मैं अपने कण्ठमें बँधी रज्जुके संकेतको समझ सकता था। उस संकेतके अनुसार मैं कूदता था, कुलाँचे लेता था अथवा दोनों पैरोंपर खड़े होकर चलता था। कभी किसी तरुण या वृद्धके समीप भी चला जाता था; किन्तु किसीको स्पर्श नहीं किया मैंने। किसीको भयभीत करनेका प्रश्न ही नहीं था।

अयोध्याके सामान्य नागरिक-सेवक भी अतिशय उदार हैं। वहाँ उन लोगोंने अपने आभरण, वस्त्र तथा स्वर्ण-मुद्राएँ देनी प्रारम्भ की तो मेरे मदारीने हाथ जोड़कर कहा—'मैं एकाकी व्यक्ति हूँ। आप सब मुझपर अनुग्रह करें। अभी किसीका अनुदान लेकर मैं कहाँ रखूँगा? कैसे ढो सकूँगा उसे?'

'हम तुमको रथ देंगे!' एक राजपुरुषने कहा—'पर्याप्त सुसज्ज रथ तुम्हारे लिए और तुम्हारी सामग्रीके लिए भारवाही शकट। अयोध्या आकर कोई फिर अन्यत्र याचना करने जानेकी आवश्यकताका अनुभव करे—यह अयोध्याके-अयोध्यानाथके निर्मल यशके अनुरूप हो सकता है क्या?'

यहाँसे विदा होते समय आपमें-से जो मिलेंगे, उनका प्रसाद मैं स्वीकार कर लूँगा।' अपने मदारीकी इस बातपर मैंने अपनी प्रसन्नता कुलाँचें लेकर व्यक्त की। केवल मैंने समझा कि वे यहाँसे ऐसे विदा होंगे कि उन्हें कोई मिल ही नहीं सकेगा। वे कह रहे थे—'श्रीमहाराजाधिराजका

दर्शन तो सुरेन्द्रका सौभाग्य है। मैं तो उनकी प्रजा—उनके नगर जनोंको प्रसन्न कर सकूँ, इतना ही अहोभाग्य।'

अपने अर्पित उपहार कोई लौटा लेगा, इसकी आशा करनी ही नहीं चाहिए। मदारी ऐसे नहीं थे कि वे उन पदार्थोंपर दृष्टि डालते। बालकोंने मेरे करोंमें फल देनेका प्रयत्न किया ; किन्तु मैंने जानबूझ कर उधर ध्यान नहीं दिया। अवधके किसी नागरिकके करोंसे लेकर उसके उपहारको भूमिपर डाल दूँ, इतना अशिष्ट मैं नहीं था और आहार-ग्रहण करने लगूँ, इसके उपयुक्त अवसर नहीं था।

सहसा बालकोंका एक बड़ा समूह भीड़में पीछे लौटा। मैं कुछ भी नहीं समझ सका कि बालक ही क्यों इस प्रकार मेरी ओरसे उदासीन होकर भाग गये हैं। मुझे कैसे पता हो सकता था कि अवधके बालकोंको मेरी क्रीड़ा प्रिय लगी है और वे उत्सुक हो उठे हैं कि उनके परमप्रिय राजकुमार भी यह क्रीड़ा देखें।

अयोध्याके बालकोंका वह अनुग्रह—मैं सदाके लिए उनका ऋणी हूँ। उन्होंने जाकर राजकुमारोंसे कहा और मेरे मदारीके समीप बहुत शीघ्र राज-सेवक आया। उसने आते ही कहा—'महाराजाधिराज तुम्हें कपिके साथ देखना चाहते हैं। बड़े राजकुमार श्रीरामभद्रने पितासे तुम्हारे कपिकी क्रीड़ा देखनेकी इच्छा व्यक्त की है। यहाँ स्थान पर्याप्त नहीं है। तुम महाराजके समीप राज-दरवारमें चलो तो वहाँ प्रजाके लोगोंको भी कपि-क्रीडा देखनेका सुयोग प्राप्त होगा।'

'जैसी महाराजकी आज्ञा !' मदारीको तो यह अभीष्ट ही था। मुझे लेकर राजसभामें वह चल पड़ा।

मैंने वहाँ महाराजाधिराजकी महानता देखी। लोकपाल भी जिसके पाद-पीठका स्पर्श अपने किरीटके अग्रभागसे संकोच पूर्वक सम्यक् शिष्टतासे करते हैं, उन सम्राट्ने अभिवादन करनेपर एक सामान्य मदारीको (क्योंकि मैं सामान्य कपि रूप था और विश्वनाथ साधारण मदारीके ही वेशमें थे) सत्कृत किया। वे बोले—'भद्र ! तुम्हारे इस कपिकी स्वर्णिम रोमराजि ही कहती है कि तुम अपनी कलाके मर्मज्ञ हो। ऐसा असाधारण कपि तुम्हारे अन्वेषणकी निपुणताका परिचायक है। हम जानते हैं कि श्रेष्ठ

कलाकार स्वयंमें सम्राट्से कनिष्ठ नहीं होता। भगवती वीणापाणिका अनुग्रह जब किसी अधिकारीपर अवतीर्ण होता है, त्रिभुवनका अधीश्वर भी केवल नम्रता स्वीकार करके उसका प्रसाद प्राप्त कर सकता है। कलाकार ही वह जिसे पारितोषिक प्रलुब्ध नहीं करता। वह तो पारितोषिकको स्वीकृति देकर देने वालेको गौरवान्वित करता है।'

'भद्र ! हमने यहाँ बुलाकर तुम्हारी या तुम्हारी कलाकी अवमानना नहीं की है।' महाराज कहते ही गये—'हमें स्वयं आना चाहिए था तुम्हारे समीप ; किन्तु तुम्हारी कलाके उपयुक्त स्थान राजपथ नहीं था और केवल राजकुमारोंका आग्रह होता तो मैं उनको लेकर वहाँ आ गया होता। मुझे कुलगुरुने आदेश दिया कि तुमको यहीं आमन्त्रित करूँ।'

'महाराजका शील उनके उपयुक्त है।' मेरे मदारीने अञ्जलि बाँधी– 'किन्तु यह जन सेवक है। इसे महाराज लज्जित कर रहे हैं। मैं यहाँ प्रवेश पा सका, यह मेरा अहोभाग्य।'

मैं देख रहा था कि महर्षि वशिष्ठ अपलक मेरे मदारीकी ओर ही देख रहे थे। मुझे भय लगा—इन सर्वज्ञसे कुछ छिपाया नहीं जा सकता। कहीं इन्होंने हमारा परिचय देना प्रारम्भ किया........।

मदारीने महर्षिको मस्तक झुकाया तो महर्षिने भी लगभग साथ ही सिर झुका दिया। सामान्य सभासदोंने भले इसे महर्षि द्वारा कलाका सम्मान माना हो, मैंने लक्षित कर लिया कि दृष्टि मिलते ही महर्षि तथा मदारीके अधरोंपर भी गूढ़ स्मित खेल गया। मेरे कण्ठकी रज्जुमें किञ्चित् कम्पन हुआ। मैंने संकेतके अनुसार मञ्चपर चढ़कर महर्षिके पदोंमें मस्तक रख दिया तो उनका अभयकर स्नेह पूर्वक मेरे सिरपर घूम गया।

मैंने महाराजाधिराजका भी इसी प्रकार चरण-वन्दन किया। दूसरे सभी सम्मान्यजनों तथा महामन्त्रीको भी मैं अपने ढङ्गसे प्रणाम कर आया। चारों राजकुमारोंको प्रणाम करनेके पश्चात् मैं पुनः बड़े राजकुमार—अपने आराध्यके सम्मुख जाकर ऐसे लेट गया जैसे कपि अपनी परिपूर्ण दीनता प्रदर्शनके लिए लेटता है।

उन करुणावरुणालयने उठकर मुझे अपने करोंसे थपथपाया तो मैं उनके दक्षिण पादको पकड़कर उससे सटकर बैठ गया। इसपर राजकुमारोंने

हास्य ध्वनि की। महाराजने मदारीसे कहा–'तुम्हारा कपि अपने सुरङ्गसे ही सुन्दर नहीं है, उसमें उचित व्यक्तिकी पहिचान भी है।'

मदारीने महाराजकी अनुमति प्राप्त करके डमरू बजाना प्रारम्भ किया। रज्जुका संकेत मिला। मैं उन निखिलेश्वरको प्रसन्न करने योग्य कहाँ था। कपिकी कला उछल-कूद—मुझसे जो हो सकता था, मैं उसके द्वारा प्रभुको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करने लगा। प्राणीके पास जो है, वही वह उन सर्वेशके श्रीचरणोंमें उपस्थित कर सकता है। वे तो अपने सहज स्वभावसे ही प्रसन्न होते हैं। सम्मुख आयेको अपनाना ही उनका स्वभाव है।

मुझे वह अनुग्रह प्राप्त हुआ। चारों राजकुमार सम्राटके समीपसे आकर जहाँ मैं क्रीड़ा-प्रदर्शन कर रहा था, बालकोंके साथ खड़े होगये। बालकों के—अपने सखाओंके साथ वे भी तालियाँ बजाने लगे। वे बार-बार मेरी प्रशंसा करते थे। मुझे उत्साहित करते थे।

मुझे पता ही नहीं लगा कि कब बड़े राजकुमार वहाँसे जाकर पिताके अङ्कमें बैठ गये। श्रीलक्ष्मणलाल अपने अग्रजके नित्य अनुगामी—वे भी चले गये थे। मुझे यह भी पता नहीं लगा कि कब उन्होंने पितासे क्या कहा; किन्तु मैंने सम्राटको सस्नेह कहते सुन लिया —'वत्स! कपिका तुम क्या करोगे? वह कलाकार अपना दुर्लभ कपि दे दे, यह प्रस्ताव भी अशोभन है।'

मैं उधर ही देखने लगा। लक्ष्मणलाल वहाँसे उठे और दौड़ आये। उन्होंने मदारीसे कहा—'तुम अपना कपि हमारे अग्रजको दे दो। वे इसे प्राप्त करना चाहते हैं। तुम जो कुछ चाहोगे, हमारे पिताश्री तुम्हें प्रदान करेंगे। तुम कपि दोगे?'

'आप अपने अग्रजसे कहो कि वे इसे ग्रहण करें।' मदारी ने हँसकर कह दिया। मुझे इतना हर्ष हुआ—इतना आह्लाद कि मैं अपने मदारीके चरणोंपर ही लेट गया।

'वह आपको अपना कपि देनेको प्रस्तुत है।' लक्ष्मणलाल फिर दौड़ गये। अपने अग्रजसे उन्होंने कहा—'आप चलकर कपि उससे ग्रहण करें।'

श्रीराम—मेरे स्वामी सुप्रसन्न दौड़े आये। उनको कुछ कहना नहीं पड़ा। मेरे मदारीने रज्जु उनकी ओर बढ़ा दी; किन्तु उन्होंने रज्जुका स्पर्श किया मेरे समीप बैठकर। वे कण्ठमें-से रज्जु खोलने लगे। उनका स्वभाव ही सम्मुख आयेको समस्त बन्धनोंसे मुक्त कर देना है।

'भद्र! इस कपिको तुमने हमारे बड़े कुमारको दे दिया—हम

तुम्हारे आभारी ।' महाराज स्वयं सिंहासनसे उठकर समीप आगये— 'हम तो प्रस्ताव करनेकी धृष्टता नहीं कर सकते थे ; किन्तु हम अपनेको उपकृत मानेंगे यदि तुम कुछ भी अभीष्ट मांग लो। तुम अयोध्यामें रह जाना स्वीकार करलो तब तो तुम्हारा ... .।'

'राजकुमार कपिके द्वारा क्रीड़ा कराके देख लें तब इन बातोंपर विचार किया जा सकता है ।' मदारीने महाराजको हाथ जोड़ा । मुझे पीछे पता लगा कि महामन्त्रीने मदारीकी बातका यह तात्पर्य लिया कि वह अपने कपिकी पूर्ण परीक्षा हो जानेपर पर्याप्त बड़े निष्क्रयकी प्राप्तिकी आशा करता था ।

'आप इसे मुक्त करोगे तो यह भाग जायगा ।' किसीने कहा ।

'तू भागना मत !' श्री रामने मेरे कण्ठसे रज्जु इतनी देरमें खोल दी थी । मैं तो अब उनकी स्नेह रज्जुमें सदाके लिए आबद्ध हो चुका था । यह रज्जु पाश खुलता या बँधा रहता—क्या अर्थ इसका । मैं उनके दोनों पदोंके मध्य जा बैठा, रज्जु खुलते ही ।

'यह भागेगा नहीं ।' मदारीने आश्वासन दिया—'अब राजकुमार इससे क्रीड़ा करा देखें ।'

मदारीने अपने हाथका डमरू देनेके लिए बढ़ाया ; किन्तु जो अपने भ्रूभङ्गसे महामायाको भी नचाते रहते हैं, उन्हें क्षुद्र कपिको नचानेके लिए किसी भी वाद्यकी आवश्यकता कहाँ थी । उन्होंने डमरूकी ओर दृष्टि ही नहीं उठायी ।

'अब तू हमको अपनी क्रीड़ा दिखा ।' वे ताली बजाने लगे और मैं कूदने लगा । कलाबाजी दिखलानेमें मैं अपनी शक्ति अब अवशिष्ट कैसे रख सकता था । देर तक मैं अपनी क्रीड़ाका प्रदर्शन करता रहा । अन्तमें जब उन मेरे स्वामीने ही 'बस' कहा तो मैं उनके दोनों पदोंके मध्य आकर बैठ गया ।

'भद्र !' महाराजने सम्भवतः मेरे मदारीको पुकारा था; किन्तु अब वह मदारी कहाँ ? उन देव-देवको अदृश्य होनेका अवकाश मिल गया, जब सबके नेत्र उछलते-कूदते मुझ कपिपर लगे हुए थे । महामन्त्रीने अनेक सेवक दौड़ाये ; परन्तु जो वहीं अदृश्य होकर कैलास चले गये थे, उन्हें चर कहाँ पाते । वे तो आये ही थे मुझे यहाँ पहुँचाने । आराध्यके करोमें शरणागतको सौंपकर उन आद्याचार्यका कार्य पूर्ण हो गया था ।

× × × ×

मैं अपने आराध्य उन अवध-राजकुमारके साथ रहने लगा। महाराजका, माताओंका, महामन्त्रीका, अयोध्याके नागरिकों एवं बालकोंका भी मुझे स्नेह प्राप्त हुआ। अन्ततः मैं उनके परम-प्रेमास्पद श्रीरामका कपि था।

राजसभासे उठते ही छोटे कुमार शत्रुघ्न मेरे लिए सुपक्व आम्रफल ले आये। मैंने फल करमें लेनेके स्थानपर उनके श्रीमुखकी ओर देखना प्रारम्भ किया तो उनको लगा कि मैं उनके अग्रजके करोंसे ही आहार ग्रहण करूँगा। उन्होंने अग्रजसे कहा—'आप ही इसे दो !'

मैं ऐसे फल कैसे ले लेता ? फल देनेको बढ़ाये कर श्रीरघुनाथ खड़े थे और मैं उनका एक पाद—दक्षिण पाद दोनों करोंसे पकड़ उनके श्रीमुखको अपलक देख रहा था। जो प्राणियोंके परमाचार्य हैं–उनको मेरा तात्पर्य समझनेमें कठिनाई नहीं हुई। उन्होंने अग्रजसे कहा—'आर्य ! जब तक आप इस फलको अधरोंसे न लगालें, यह लेता नहीं लगता।'

मेरे सहज संकोची स्वामीने किसी प्रकार फलको तनिक मुखसे लगाया और तब देना चाहा तो मैंने उछलकर ले लिया। सभी कुमार सुप्रसन्न आम्र चूसते मुझ कपिको देखते रहे। तबसे मैं चारों ही कुमारोंका प्रसाद-भोजी हो गया।

पूरे दिन मैं राजकुमारोंके साथ ही घूमता था। रात्रिमें माता कैकेयीके सदनमें अपने स्वामी श्रीरघुनाथकी शय्याके नीचे सो रहता था। माताने मेरे लिए पहिले एक पलनेमें आस्तरण करवाया; किन्तु मैं किसी प्रकार भी वहाँ कैसे जाता। शय्याके नीचे बैठ गया। श्रीरघुनाथके लेटनेपर तो माताने वहीं मेरे लिए आस्तरण करनेको आदेश कर दिया।

मेरा यह सौभाग्य अधिक दिनों तक बना नहीं रहा। एक दिन एकान्तमें मेरे स्वामीने मेरे मस्तकपर कर रखा—'हनुमान ! अभी यहाँ तुम्हारा स्थान नहीं है। तुम्हें गुरु-दक्षिणा भी देनी है। अतः अब अयोध्यासे प्रस्थान करो। मैं स्वयं आऊँगा तुम्हारे समीप और तब तुमको पृथक होनेको नहीं कहूँगा !'

उनका आदेश मुझे स्वीकार करना पड़ा। जानता हूँ कि अयोध्यामें-- राजसदनमें भी सबने आश्चर्य किया होगा कि कपि भाग कैसे गया। लेकिन वहाँसे प्रस्थान करनेको मैं विवश था।

—×—

१०–किष्किन्धामें

'अयोध्यासे आकर हनुमान तो जैसे जीवनका सब उत्साह ही खो बैठा है।' माताने एक दिन मेरे पितासे कहा—'इसे कहीं व्यस्त नहीं बनाया गया तो यह किसी कामका नहीं रह जायगा।'

माता मेरी स्थितिसे बहुत चिन्तित होगयी थीं। उन्होंने मुझे प्रसन्न करने, क्रियाशील बनानेके सब उपाय कर लिये थे। माताकी चिन्तासे, उनकी आकुलतासे मैं अपरिचित नहीं था। मुझे इससे वेदना होती थी; किन्तु मैं भी निरुपाय था।

अपने आराध्यका आदेश स्वीकार करके मैं अयोध्यासे चला आया। कैसे चला आया—मुझे भी पता नहीं है। लेकिन अब यह पता न रहनेका रोग मुझे लग गया था। अपने शरीरका ही अधिकांश समय पता नहीं रहता था। वे नवघन सुन्दर-कमल लोचन, पीताम्बरधारी, वनमाली चक्रवर्तीजीके राजकुमार— जिसने स्वप्नमें भी उनकी एक झांकी प्राप्त की है, वही उनसे पृथक होनेकी मेरी वेदना— मेरी अवस्थाका अनुमान कर सकता है।

कच्चे दूधको जब अग्निपर चढ़ाया जाता है—उफान बहुत आता है। ये उफान आते ही रहते हैं, जब तक दूध परिपक्व नहीं हो जाता। प्रेम-भक्तिका भाव जब अन्तरमें आने लगता है, आरम्भ इसी प्रकारका होता है। रुदन, क्रन्दन और अकस्मात मूर्छा—शरीरका चाहे जब, चाहे जहाँ, समय-असमय, अवसर-कुअवसर मूर्छित होकर गिर पड़ना—अपरिपक्व भावका लक्षण भले हो, यह तो सूचित ही करता है कि भागवती भक्तिके भुवन-पावन पादारविन्दोंकी परमोज्वल कान्ति अन्त:करणके कलमषको स्वच्छ करने लगी है।

मैं अभी बालक ही था। प्रेमका परिपाक तो महत्तम पुरुषोंका सौभाग्य है। वे ही भावावेशको पचा लेनेमें—अश्रु, मूर्छासे अनवसर अपनेको अस्पृष्ट रखनेमें समर्थ होते हैं। यद्यपि रोमाञ्च, स्वेद, कम्पपर कदाचित ही अधिकार कर पाते हैं; किन्तु इनको तो कोई-कोई लक्षित कर पाते हैं।

समुदायकी दृष्टियोंको आकर्षित करनेका माध्यम वे नहीं बनते। लेकिन मैं तो तब असमर्थ था। मेरा अन्तःकरण अवश था—वैसा ही अवश जैसे किसी भी व्यसनी अजितात्माका क्रोध काम अथवा अपने व्यसनावेशके समय होता है। प्रेम भी भाव है, भले वह चित्तको विकृत करनेके स्थानपर परिमार्जित करने वाला भाव हो, उसके आवेशमें भी काम, क्रोधादिके समान ही शरीरमें विकार होते हैं। अश्रु, स्वेद, रोमाञ्च, कम्प, मूर्छा और अन्ततः मृत्यु तक किसी भी भावके आवेशमें सम्भव है। महाप्राण—महापुरुष हैं जिनके भावका परिपाक हो चुका है। वे ही भावावेशके विकारोंको रोकनेमें—भीतर ही सह लेनेमें समर्थ हो पाते हैं।

मेरे नेत्रोंसे अजस्र अश्रुधारा बहती रहती थी। किसीसे भी दो शब्द बोलना विष प्रतीत होता था। आहार, जल-पिपासा विदा हो चुकी थी। शरीर कृश ही नहीं हुआ, रोमावलि झड़ने लगी। स्नान तो मैं कर्तव्यके कारण किसी प्रकार कर लेता था, किन्तु शेष कुछ और कृत्य भी है, स्मरण किसे था। चाहे जहाँ मैं मूर्छित होकर गिर पड़ता था। गिरि-शिखरसे, सरितामें अथवा दावानलमें भी गिरना मेरे लिए आशङ्काका कारण नहीं था। वरुणदेव तथा अग्निने मुझे अभयका वरदान दिया था। मेरे पिता पवनदेव अपने पुत्रकी ही रक्षामें प्रमाद नहीं कर सकते थे। मैं कहींसे गिरूँ, वे तो सर्वव्यापक हैं; किन्तु मेरी अवस्था माताको अत्यन्त व्याकुल बनाये थी।

'राम राम राम राम'—उन परम भाग्यशाली दिनोंने यह महानिधि प्रदान की मुझे। मेरी वाणी, मेरे श्वास, मेरे रक्तकी गतिके प्रत्येक स्पन्दनमें, मेरे शरीरके अणु-अणुकी गतिमें यह दिव्यातिदिव्य नाम उसी समय रम गया—सदाके लिए यह स्वभावमें आगया। मेरे अनन्त करुणार्णव स्वामीने उस अपने वियोगके बहाने यह परम दुर्लभ अपना नामात्मक स्वरूप मुझे प्रदान कर दिया—लेकिन यह उनका अनुग्रह समझ सकने योग्य तब मेरी स्थिति नहीं थी। मेरे संकोची नाथका स्वभाव ही है इसी प्रकार अज्ञात रहकर असीम अनुकम्पा करना, यह तो मैं उनका साहचर्य पुनः प्राप्त हुआ तब समझ सका।

मैं एकान्तमें बैठा रहता था। कुछ करने, कुछ बोलने, कहीं जाने-उठनेका उत्साह नहीं था। अत्यन्त असाधारण स्थिति थी यह वानर-बालकके लिए; क्योंकि हमारा जाति-स्वभाव चपल है।

'विवाह ?' यह उपाय भी पिताके मनमें आया, किन्तु माताने सुनते ही मना कर दिया—'मेरा हनुमान नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका सङ्कल्प कर चुका है। वैसे ही अत्यन्त उद्विग्न है। उसके सम्मुख यह प्रस्ताव भी किया गया तो अवश्य कहीं ऐसे स्थानपर चला जायगा कि हम पुत्रके मुख-दर्शनसे भी वञ्चित हो जायँगे।'

'लेकिन इसे विषयान्तर मिलना चाहिए !' पिताने कहा—'यह इस प्रकार तो क्षीण होता जारहा है। मैं इसे किष्किन्धा ले जारहा हूँ। वहाँ वानरेन्द्र बालिके समीप रहेगा तो वानर-प्रशासनकी राजनीतिके व्यावहारिक पक्षका ज्ञान प्राप्त कर लेगा। इस व्यस्ततामें इसकी उदासी दूर होगी।'

पिताने प्रस्ताव किया तो मैंने आपत्ति नहीं की। वैसे भी मैंने कभी माता-पिताके आदेशकी अवज्ञा-सम्भव है, ऐसी कल्पना भी नहीं की थी। किष्किन्धा मुझे जाना ही था। मैंने भगवान भास्करको सुग्रीवकी रक्षाका वचन दिया था।

सृष्टिकर्त्ताके साक्षात् अंशसे अवतीर्ण ऋक्षराज अपनी कामरूपत्व सिद्धिके कारण जब स्वेच्छासे स्त्री वेश बनाये विचरण कर रहे थे, उनको देवराज इन्द्रके अंशसे बालि और भगवान भास्करके अंशसे सुग्रीव—इन दो पुत्रोंकी प्राप्ति हुई, यह मैंने पिताके मुखसे सुना था। यह भी पितासे ही मैंने सुना था कि इस समय धराके समस्त वानरोंके सम्राट् बालि हैं। किष्किन्धा उन वानरेन्द्रकी राजधानी है।

पिता जब मुझे लेकर किष्किन्धा पहुँचे, वानरेन्द्र बालिने हमारा स्वागत किया। बालि नीतिज्ञ थे। धराके वानर तथा रीछ उपदेव जातियोंके अधिपतिको अपने वशवर्ती समस्त नायकों एवं उनकी प्रजाका समाचार रखना चाहिए। वैसे भी मेरे पिता केसरीसे उनका स्नेह-सम्बन्ध था। अतएव मेरे सम्बन्धकी प्रायः सभी विशिष्ट घटनाओंसे वे पहिलेसे अवगत थे।

'मैं संकोचके कारण ही आपसे कभी प्रार्थना नहीं कर सका।' वानरेन्द्र बालिने मेरे पितासे विनयपूर्वक कहा—'अन्यथा सदा मेरी यह अभिलाषा रही है कि परमपराक्रमी, देवताओंके द्वारा वरदान प्राप्त, मृत्युञ्जय, निखिललोक प्रकाशक भगवान आदित्यके साक्षात् शिष्य कुमार

किष्किन्धामें मेरे तृतीय भ्राताके समान विराजमान रहें और इनकी विद्या, बल-विक्रमका लाभ सम्पूर्ण वानर-रीछ कुलोंको प्राप्त हो। आपने इनको यहाँ लाकर मुझे उपकृत किया। मैं और मेरे सभी परिकर इनकी प्रसन्नता-सुविधाका ध्यान रखेंगे। मेरा पुत्र अङ्गद इनका समवयस्क है। आशा है, वह इनका सख्य प्राप्त कर लेगा।

सचमुच अङ्गदसे शीघ्र मेरी मित्रता होगयी। मेरे पिता मुझे वहाँ छोड़कर लौट गये। वानरेन्द्र बालि मुझपर स्नेह करते थे। उन्होंने मुझे अपनी राजसभाका सचिव बना लिया। वे प्रायः आवश्यक कार्योंमें मेरी सम्मति लेने लगे।

किष्किन्धा आकर मेरा आन्तरिक भाव परिपक्व होने लगा। अब सहसा अश्रु, स्वेद, रोमाञ्च और मूर्छाका आना बन्द होगया। कदाचित कम्प आजाता था; किन्तु अब मैं उसपर भी कुछ नियन्त्रण कर लेता था।

'राम राम राम राम' यह तो मेरा जीवन था। वे श्रीअयोध्या-नरेशके नन्दन मेरे अन्तरमें स्थिर विराजमान थे; किन्तु अब मैं उसकी स्मरणजन्य विह्वलताको सम्हाल लेनेमें समर्थ होगया था। अब ऐसा रहने लगा कि दूसरोंकी दृष्टि मेरी ओर कम आकृष्ट हो।

मुझे—कहना चाहिए कि मेरी बुद्धिको, बलको, विवेकको, विद्याको वहाँ प्रभूत सम्मान प्राप्त हुआ। इसने जहाँ एक ओर मुझे सब प्रकारकी सुविधाएँ प्रदान कीं—अत्यन्त व्यस्त बना दिया। वानरेन्द्र बालि मुझसे पूछे बिना कुछ करना ही नहीं चाहते थे और उनके अनुज सुग्रीव चाहते थे कि मैं सदा उनके समीप ही रहूँ।

मैंने भगवान भास्करको सुग्रीवकी रक्षा करनेका वचन दिया था। इसलिए सुग्रीवका सामीप्य मुझे प्रिय था। बालिकी भी अपने अनुजपर प्रीति थी। वे सुग्रीवसे स्नेह करते थे और सुग्रीव उनका सम्मान करते थे। इसलिए मैं जब सुग्रीवके समीप उनका परिकर होकर रहने लगा—वानरेन्द्रने कोई आपत्ति नहीं की। उन्होंने मुझे प्रोत्साहित ही किया।

वानर-राजकुमार अङ्गद मेरे मित्र होगये थे। सुग्रीवका मैं सम्मान करता था। उनका मुझपर बहुत अधिक स्नेह, सम्पूर्ण विश्वास और मेरी सम्मतियोंपर अडिग आस्था थी। इस प्रकार किष्किन्धा मेरी निवास-भूमि बन गयी। ———

११--विपत्तिके साथी

किष्किन्धा राक्षसोंसे घिरा वानर-राज्य था। एक ओर विराध था, दूसरी ओर खर-दूषण त्रिशिरा थे और तीसरी ओर समुद्रीय द्वीपमें राक्षसेश्वर दशग्रीव था। लेकिन बालिसे सब भयभीत रहते थे। वानरेन्द्र बालि आस्तिक थे, सुरों एवं विप्रोंका सम्मान करते थे; किन्तु जब उनसे युद्ध करने आकर राक्षसराज दशग्रीव उनके कक्षमें दबा रहा, छूटनेपर उन्हें मित्र बना गया। इस मित्रतामें राक्षसोंकी ही कुशल थी। वानरेन्द्र-पर यह कोई आभार नहीं था। बालि निर्भय थे और राक्षसोंकी सम्मिलित शक्तिके लिए भी दुस्सह थे। अतः दशग्रीव तथा दूसरे भी उनकी मैत्रीका सम्मान करते थे।

मुझे पता नहीं क्यों दैत्य, दानव, राक्षसोंसे जन्मजात घृणा थी। इस वर्गको देखकर ही मैं चिढ़ उठता था। इसलिए भी वानरेन्द्र बालि मुझे प्रिय नहीं लगते थे। मैं सुग्रीवका सहचर बन गया था। उनके साथ छायाके समान रहता था।

वानरेन्द्र बालिका अपने अनुज सुग्रीवपर बहुत स्नेह था। दोनों भाइयोंमें प्रगाढ़ प्रेम था। लेकिन मयके पुत्र मायावीके कारण यही प्रेम ऐसी शत्रुतामें परिणत हो गया कि यदि बालि सुग्रीवको पाजाता, जीवित नहीं छोड़ता। सुग्रीवको सकुशल रहना था, अतः बालिकी मृत्युका उन्हें निमित्त बनना पड़ा।

'क्या किया था मायावीने ?' बालकोंने पूछा—'भाइयोंमें इतनी विषम शत्रुता-स्थापनमें वह कैसे सफल हो गया ?'

हनुमानजीने सम्पूर्ण घटना सुनाना प्रारम्भ किया—

मयका पुत्र मायावी एक बार किष्किन्धा पहुँचा। उसने अपने बलके दर्पमें नगर द्वारपरसे गर्जना प्रारम्भ की—'क्षुद्र वानर ! असावधान दशग्रीवको कक्षमें दबाकर तू अपनेको वीर मानने लगा है ? गुफासे निकल ! मैं आज तेरा मान-मर्दन कर दूँगा।'

मायावी सगा भाई था दशग्रीवकी पट्टमहिषी मन्दोदरीका। अतः दशग्रीवकी पराजयका कलङ्क दूर करनेका उत्साह उसके मनमें आवे—अस्वाभाविक नहीं था; किन्तु बेचारेने बालिको देखा नहीं था। केवल वानरेन्द्रका नाम सुना था। जैसे ही साक्षात् अन्तकके समान क्रोधमें भरे बालिको उसने अपनी ओर दौड़कर आते देखा, उसका साहस समाप्त हो गया। वह भाग खड़ा हुआ; किन्तु कोई सुप्त वनराजको पत्थर मारकर क्रुद्ध कर दे—भागनेसे उसका परित्राण हो जायगा? वानरेन्द्र प्रकृतिसे ही क्रोधी थे और शत्रुको क्षमा कर देना उनके रक्तमें ही नहीं था। वे मायावीके पीछे दौड़ पड़े।

सुग्रीव अग्रजके स्नेहवश उनके पीछे दौड़ते गये और मैं सुग्रीवको एकाकी नहीं छोड़ सकता था। दानव मायावी भागता गया। भागते गये उसके पीछे वानरेन्द्र बालि और भागते गये वानरेन्द्रके पीछे सुग्रीव। सुग्रीवके पीछे मैं भी भागता गया।

मायावीने देखा कि वह दौड़कर प्राणरक्षाकी आशा नहीं कर सकता। ऐसे ही दौड़ता रहेगा तो वानरेन्द्र उसे शीघ्र पकड़ लेंगे। अतः अरण्यमें दूर जाकर पर्वतकी एक अन्धकारपूर्ण गम्भीर गुफामें वह प्रविष्ट हो गया।

'तुम दोनों यहीं रुको।' गुफा द्वारपर पहुँचकर वानरेन्द्रने पीछे देखते हुए कहा—'पक्ष भर यहाँ मेरी प्रतीक्षा करना।'

पक्ष व्यतीत हो जाय तो क्या करना है, यह न वानरेन्द्रने स्वयं बतलाया और न हमें पूछनेका अवसर दिया। वे मायावीको पकड़नेकी त्वरामें थे। गुफामें शीघ्र प्रविष्ट हो गये।

सुग्रीवके साथ मैं गुफा द्वारपर रह गया। हम वानरोंको आहारकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। फल या कन्द न मिलें तो हमारा काम पत्तोंसे भी चल जाता है। जल वहाँ दुर्लभ नहीं था। हम गुफामें शत्रुके पीछे प्रविष्ट वानरेन्द्रकी प्रतीक्षा कर रहे थे, अतः निद्राका प्रश्न नहीं था।

गुफाके भीतरसे भयङ्कर शब्द अविराम आ रहा था—परस्पर आघात करनेका, गर्जनाका, हुङ्कारका, उठाकर पटकनेका और ये शब्द गुफामें गुञ्जित होकर मिले-जुले अस्पष्ट होनेसे अधिक भयानक हो रहे थे। भीतर तुमुल संघर्ष हो रहा है, यह हम समझ सकते थे।

हम दोनों एक पक्ष ही नहीं, पूरे एक महीने तक वहीं गुफाद्वारपर वानरेन्द्रकी प्रतीक्षा करते रहे। इस मध्य बार-बार हमारे पास किष्किन्धासे चर आये, अनेक मन्त्री आये। लेकिन वे भी गुफासे आता वह भयानक शब्द ही सुन सकते थे। गुफा अन्धकारपूर्ण थी। मुखके समीप तो केवल एकके ही प्रवेश करने योग्य थी। भीतर हममें-से कोई जाता भी तो वहाँ स्थान नहीं था और वह वानरेन्द्रका कोप-भाजन ही बनता; क्योंकि वे शूरशिरोमणि जब द्वन्द्व-युद्ध कर रहे हों, किसी भी तीसरेका हस्तक्षेप उनको रुष्ट करता। जो भी आते थे, उन्हें हम शीघ्र लौटा दिया करते थे।

अचानक महीने भर पीछे गुफामें-से रक्तकी धारा निकल पड़ी। उसमें-से आता शब्द मन्द पड़ा और बन्द हो गया। अब सुग्रीव भयभीत होकर बोले—'हनुमान ! लगता है कि दैत्यने मेरे अग्रजको मार दिया। गुफासे निकलकर वह मुझे जीवित नहीं छोड़ेगा।'

सुग्रीवकी ऐसी कल्पनाका कारण था। मायावी दानवने मरते-मरते कुछ इस प्रकार चीत्कार किया था कि गुफामें गूँजकर वह शब्द वानर-कण्ठसे निकली क्रन्दनध्वनिका भ्रम उत्पन्न करता था।

मैं कुछ सोचता या करता, इससे पहिले ही सुग्रीवने एक विशाल शिला समीपसे उठाकर गुहा-द्वार रुद्ध कर दिया और तब नगरकी ओर भागे। मुझे उन्होंने अपने साथ आनेको बाध्य कर दिया यह कह कर—'नगरमें हम अनेक रहेंगे तो दानव आक्रमण नहीं करेगा। करे भी तो अपने दुर्गमें रहकर उसका सामना करना सरल है।'

नगरमें तो सभी आतुर प्रतीक्षा कर रहे थे। सुग्रीवने जब कहा—'लगता है कि दानवने वानरेन्द्रको मार दिया। गुहासे रुधिरका प्रवाह निकल रहा है।' तब किसीने भी शङ्का नहीं की। सबने विश्वास कर लिया कि बालि मारे गये। गुहासे मायावी दानव क्रोधमें भरा निकलेगा, इस भयसे अब गुफाकी ओर जानेका साहस किसीमें नहीं था। सबने अङ्गदको और मुझे भी रोक लिया; क्योंकि दानव यहाँ आक्रमण कर सकता था।

'दानव आक्रमण करेगा।' इसे सबने सुनिश्चित मान लिया। उससे युद्ध करना अवश्यम्भावी प्रतीत हो रहा था और नायकके बिना तो युद्धमें सफलता नहीं मिलती। मन्त्रियोंने परस्पर मन्त्रणा की और सुग्रीवको बलात्

सिंहासनपर बैठा दिया। सुग्रीवकी अनिच्छा व्यर्थ थी ; क्योंकि सम्पूर्ण वानर-प्रजाको इस सङ्कटमें रक्षाका दूसरा उपाय नहीं था।

एक महीनेके अविराम अहर्निशि द्वन्द्व-युद्धने बालिको श्रान्त कर दिया था। असुर मायावीको मारकर जब वानरेन्द्र निकलने लगे, गुहा-द्वार उन्हें रुद्ध मिला। गुहाके भीतर अनवरत संघर्षरत वानरेन्द्रको समयका ध्यान रहेगा, यह सम्भव ही नहीं था। मास बीता, पक्ष बीता या सप्ताह ही बीता, यह वे कैसे जानते ? शिला द्वारा गुहाद्वार रुद्ध पाकर वे क्रुद्ध हो उठे।

सुग्रीवने बहुत भारी शिला द्वारपर रखी थी। वे तो दानवको रोकना चाहते थे, अतः जितनी भारी शिला रख सकते थे, उतनी भारी शिला खिसकाकर द्वार तक लाये थे। बालिको उसे हटानेमें पूरा बल लगाना पड़ा था और इससे उसका क्रोध भड़का था।

अब नगर तक वैसे दौड़ते आना आवश्यक नहीं था, जैसे दौड़ते वानरेन्द्र दानवके पीछे गये थे। वे धीरे-धीरे चलकर आये नगरमें; किन्तु राजसभामें सिंहासनपर बैठे सुग्रीवको देखकर तो वे गर्जना करने लगे। उन्होंने शिला द्वारा गुहाद्वार रुद्ध पाया था और अब सुग्रीव सिंहासनपर बैठे दीखे तो उनके मनमें सहज यह बात बैठ गयी कि सुग्रीव उन्हें गुफामें बन्द करके इस आशासे आये थे कि वे वहाँसे निकल नहीं सकेंगे।

सुग्रीव सिंहासनसे कूदकर नीचे आगये अग्रजको देखते ही ; किन्तु बालिको तो भ्रम होगया था कि छोटे भाईने उनको मारनेका प्रयत्न किया है राज्य प्राप्त करनेके लिए। उन्होंने झपटकर मुष्टि-प्रहार किया। किसी प्रकार सुग्रीव उसे सह सके और भागे। बालिने पीछा किया। सुग्रीव भागते रहे और बालि पीछे लगे रहे। सुनिश्चित बात थी कि सुग्रीव मिल जाते तो उन्हें उनके भाई जीवित नहीं छोड़ते। बालिने एक क्षणका भी अवसर किसीको नहीं दिया कि कोई उनसे कुछ कह सके।

मैंने भगवान भास्करको सुग्रीवकी रक्षाका वचन दिया था। ऋषियोंके शापके कारण मुझे अपनी शक्तिका स्मरण नहीं था। मैं सुग्रीवके साथ भाग रहा था। वानरेन्द्र बालिने मेरी ओर उस क्रोधावेशमें ध्यान हो नहीं दिया।

'मतङ्ग पर्वत—शीघ्र मतङ्गाश्रम पहुँचिए।' मैंने दौड़ते-दौड़ते ही सुग्रीवसे कहा—'वानरेन्द्र वहाँ नहीं जा सकते।'

सुग्रीवने मेरी बात सुनी और मतङ्गपर्वतकी ओर मुड़ पड़े। जैसे ही वे मतङ्ग पर्वतकी सीमामें पहुँचे, बालिकी गर्जना सुनायी पड़ी –'मैं देखूँगा कि तू कबतक यहीं रहता है !'

बालिने सुग्रीवका पीछा छोड़ दिया। वे नगर लौट गये ; किन्तु वहाँ पहुँचते ही उन्होंने सुग्रीवकी सब सम्पत्ति तथा भवनपर भी अधिकार कर लिया। उनकी पत्नी रुमाको भी राजसदनमें बन्दिनी बना लिया। केवल सुग्रीवके तीन-चार मन्त्री जो उनके निष्ठावान सेवक थे, ऋष्यमूकके मतङ्गाश्रममें उनके समीप रहने आगये।

'बालि वहाँ क्यों नहीं आया ? बालकोंने पूछा।

'महर्षि मतङ्गके शापके कारण।' हनुमानजीने यह कथा भी बालकोंको सुनायी—

दैत्य दुन्दुभि महिषके वेशमें रहता था। अपने सहस्रगज-बलके गर्वमें वह किष्किन्धा आगया। यहाँ वह गर्जना करता हुआ उपवनके वृक्षोंको टक्कर मारकर गिराने लगा। इसी क्रममें उसने अपने सिरकी टक्करसे नगर-द्वार ध्वस्त कर दिया।

यह समाचार पाकर वानरेन्द्र बालि क्रोधमें भरे दौड़े आये। उन्होंने सींग पकड़कर उस महिषको पटक दिया। वह उठकर भागा, किन्तु ऋष्यमूकके समीप पहुँचते-पहुँचते बालिने उसे पकड़ लिया और पटककर मारदिया। क्रोधावेशमें वानरेन्द्रने उस महिषके शवको उठाकर फेंका तो वह एक योजन दूर पर्वतपर मतङ्गाश्रममें गिरा। असुरका शव बड़े वेगसे गिरा—फट गया। उसके शरीरसे उड़े रक्तके छीटोंसे आश्रम दूषित होगया। महर्षि मतङ्गके शरीरपर भी रक्तके छींटे पड़े। इससे रुष्ट होकर उन्होंने शाप दिया—'यदि बालि फिर कभी इस पर्वतपर आनेकी धृष्टता करेगा तो उसके सिरके सौ टुकड़े हो जायेंगे।'

इस शापके कारण बालि ऋष्यमूकपर नहीं आता था। महर्षि मतङ्गने तभी यह आश्रम छोड़ दिया था ; क्योंकि असुरका शरीर इतना भारी था कि उसे हटाना सम्भव नहीं था। जब वह शव सड़ गल चुका था, तब भी उसकी अस्थियाँ पड़ी थीं और उन्हें भी कोई हटा सके, यह असम्भव लगता था। सुग्रीवके साथ भागते हुए, दूरसे उन पर्वताकार उज्वल अस्थियोंपर दृष्टि पड़नेसे मुझे ऋषिके शापकी कथाका स्मरण हुआ। सुग्रीवको भी मेरी

बातका मर्म समझमें आगया। हम ऋष्यमूकपर आकर बालिसे निर्भय होगये ; किन्तु हमें सशङ्क तो रहना ही पड़ता था।

'बालि वहाँ नहीं आ सकता था, तब शङ्काका कारण ?' बालकोंने पूछा।

बालि वहाँ स्वयं नहीं आ सकता था ; किन्तु किसी दूसरेको भेज तो सकता ही था। किष्किन्धामें हमारे हितैषी थे। वे बालिका विश्वास प्राप्त करके वहाँ रहते थे ; किन्तु वहाँका समाचार किसी न किसी प्रकार हमें भेजते रहते थे। उनके द्वारा ही समाचार मिला था कि बालिने लौटते ही सुग्रीवका सदन, सम्पत्ति तथा पत्नी भी अपने अधिकारमें करली थी।

'सुग्रीव निर्दोष……!' एक दिन वानरेन्द्रको प्रसन्न देखकर एक न्मत्रीने प्रार्थनाका प्रयत्न किया।

'उसका नाम भी मैं सुनना नहीं चाहता।' बालिने गर्जनाकी—'वह समझता होगा कि वह ऋष्यमूकपर रहनेके कारण निर्भय है ; किन्तु मैं अब तक उसे यमपुरी भेज चुका होता। मैं वहाँ नहीं जा सकता, इसका यह अर्थ तो नहीं है कि मेरे कोई शूर सहायक नहीं हैं। किष्किन्धा वीरोंसे रिक्त नहीं है। दशग्रीवको कुछ कहूँ तो वह उसे करनेमें अपना सौभाग्य मानेगा। मैं तो प्रतीक्षा करता हूँ कि केसरी-कुमार वहाँसे कुछ दिनको हटे। मैं वानरनायक केसरीको रुष्ट करके वानरोंमें परस्पर वैमनस्य नहीं उत्पन्न करना चाहता। हनुमान अमर है,सचराचरसे अवध्य है, यह भी मुझे ध्यानमें रखना ही पड़ता है।'

'वानरेन्द्र बालि कभी स्वप्नमें भी शत्रुको क्षमानहीं करते।' सुग्रीवने ही यह कहा था मुझसे—'उनका क्रोध स्थायी होता है। अतः अब मैं तुम्हारे ही आश्रित हूँ।'

मैं सुग्रीवको ऐसी आशङ्का तथा विपत्तिमें छोड़कर कहीं कैसे जा सकता था। सम्पन्नता-सुखके समय सहायकोंका, साथियोंका तो किसीको अभाव नहीं होता ; किन्तु विपत्तिके दिनोंमें अपने उन आश्रयदाताको जिन्होंने सुख-सम्पत्तिमें मुझे सहभोगी बनाया था, एकाकी कैसे कर सकता था ? यदि उनके सुखमें मेरा भाग था तो उनकी विपत्तिमें मेरा भाग उनसे पहिले था।

———

१२–आराध्य आये

ऋष्यमूकपर हम सशङ्क रहते ही थे। एक दिन सुग्रीवकी ही दृष्टि पड़ी। पम्पासरोवरकी ओरसे कोई दो धनुर्धर तरुण ऋष्यमूककी ही ओर चले आरहे थे। यह ठीक है कि वे केवल दो थे। कोई सैना उनके साथ नहीं थी, किन्तु इसीलिए उनके सम्बन्धमें सुग्रीवका भय समझमें आने योग्य था। क्या हुआ कि उनका आकार सामान्य मानवके समान था, उनका शरीर सुकुमार दीखता था; किन्तु यदि वे उत्तरसे आये हों तो खर-दूषण तथा विराध मिले होंगे मार्गमें उन्हें। दक्षिणसे आये हों तो दशग्रीवके अनुचरोंकी दृष्टिसे बचकर नहीं आ सकते। वे मुनिवेशमें होनेपर भी धनुर्धर थे, अतः महर्षि अगस्त्यके आश्रमवासी हो नहीं सकते थे। उस आश्रमके ऋषि-मुनि हमारे परिचित थे। आस-पास कहीं मुनियोंको छोड़कर किसी मानवका आवास नहीं था। राक्षसोंसे भरे इस महारण्यके अङ्कमें इतने अशङ्क विचरण करने वाले? केवल बालि निर्भय था इस अञ्चलमें और बालिकी प्रजा—उसके मित्र निर्भय रह सकते थे।

'हनुमान! ये दोनों धनुर्धर कौन हैं?' सुग्रीवने मेरा ध्यान उनकी ओर आकर्षित किया—'नैकषेयोंसे अरण्य व्याप्त है। इस अरण्यमें इनका इस प्रकार विचरण जैसे किसी सुरक्षित नगरके वाह्योपवनमें वायु-सेवन करने निकले हों। देखते ही हो कि दोमें-से एकने भी धनुषको ज्या-सज्ज तक नहीं किया है। कैसे सम्भव है कि किसी ओरसे भी कोई अरण्यमें यहाँ तक आजाय और मायावी दारुण दानवोंसे अपरिचित रहे? अकल्पित शौर्य होगा इनमें और सम्भव है, बालिने इन्हें उत्तर भारतसे आमन्त्रित किया हो। बालि किसी सामान्यसे सहायताकी याचना तो करेगा नहीं। उसने आमन्त्रित किया हो तो भी ये असाधारण पराक्रम होंगे। यद्यपि यह बालिके स्वभावके विरुद्ध है कि वह किसीसे सहायता लेना चाहे, किन्तु वह यहाँ स्वयं आ नहीं सकता, इस विवशताने उसे बाध्य किया हो और उसने इन्हें मेरे वधके लिए भेजा हो तो हमें संघर्षकी भूल नहीं करनी चाहिए। तत्काल इस पर्वतको त्यागकर हम भाग चलें। ये मानव हैं, अतः वेगमें हमारा पीछा नहीं कर सकेंगे। जब तक जाकर ये बालिको समाचार देंगे, हम कहीं छिपकर रहने

योग्य स्थान प्राप्त करनेका प्रयत्न तो कर ही सकते हैं। तुम शीघ्र इनके समीप जाकर यह जाननेकी चेष्टाकरो कि ये कौन हैं ? इस अरण्यमें क्यों आये हैं ? इस शिखरकी ओर आनेका इनका उद्देश्य क्या है ?'

बालिके मित्रों, अनुचरों तथा किष्किन्धाके लोगोंसे हम परिचित थे। बालिने कोई यात्रा उत्तर भारतकी अभी निकटके दिनोंमें की नहीं थी। किष्किन्धाके हमारे हितैषियोंने भी कोई सूचना इन धनुर्धरोंके सम्बन्धमें नहीं दी थी। लेकिन इनका इतना निर्भय यहाँ विचरण सूचित करता था कि इनका पराक्रम तथा अस्त्र-ज्ञान असीम होना चाहिए। ये हमारे शिखरकी ओर ही आते लगते थे अतः सुग्रीवकी शङ्का निराधार नहीं थी। हमें सावधान तो रहना ही चाहिए।

दोनों कुमारोंका तेज, दूरसे दीखते उनके यज्ञोपवीत, उनका सामान्य भाव कहता था कि ये कोई कामरूप दानव, राक्षस या देवता नहीं हो सकते। मानव हैं, द्विजाति हैं तो ब्राह्मणका सम्मान करते होंगे। ब्राह्मणसे अपना सच्चा परिचय देनेमें इन्हें कोई हिचक नहीं होगी। यह सब सोचकर मैंने ब्राह्मणका वेश धारण किया और उनके समीप पहुँचा।

दोनों कुमारोंने जटा-मुकुट धारणकर रखा था। अधोवस्त्रके स्थानपर बल्कल था और कृष्णमृगचर्मका उत्तरीय बनाया था। ये मुनिवेश-धारी थे, अतः ब्राह्मण इनको प्रथम अभिवादन करे, इसमें अनौचित्य नहीं था। मैंने जाकर दोनों कुमारोंको अञ्जलि बाँधकर प्रणाम किया ; किन्तु इससे वे बहुत संकुचित हुए। उन्होंने मुझे प्रणाम करके कहा—'हम प्रणम्य नहीं हैं।'

जीव अज्ञानी है। यह सचराचर जगत परमात्माका स्वरूप है और सम्मुख है ; किन्तु कौन इसे सच्चिदानन्दके रूपमें देख पाता है ? सगुण-साकार परमेश्वर भी नाना रूपोंमें स्वयं सम्मुख आता है, किन्तु जब तक वही अनुग्रह न करे—अपना परिचय स्वयं न करावे, उसे पहिचाननेमें जीव—कोई कैसा भी प्राणी समर्थ नहीं हो सकता।

मेरे आराध्य, मेरे सर्वस्व मेरे सम्मुख थे और मैं अज्ञानी वानर उन्हें पहिचान नहीं सका। वे सर्वज्ञ अपरिचित बने रहें—उचित था ; क्योंकि मैंने रूप-परिवर्तन कर लिया था ; किन्तु मैं जब अयोध्या था, चारो राजकुमार बालक ही थे। मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि चक्रवर्ती

महाराज दशरथके राजकुमारोंमें-से इस अरण्यमें किसीका इस मुनिवेशमें दर्शन सम्भव है।

'आप दोनोंका तेज देवताओंमें भी कठिनाईसे दीख सकता है।' मैंने नम्रतापूर्वक पूछा—'आप अश्विनीकुमार हैं ? इन्द्र-वरुण हैं अथवा त्रिदेवोंमें-से कोई दो हैं ? इस घोर वनमें आप क्यों पधारे हैं ? आपके अत्यन्त सुकुमार श्रीचरण—इनमें उपानह भी नहीं हैं और आप कुश, कण्टक, कंकड़ियोंसे भरे वन-पथमें पैदल घूम रहे हैं !'

मैंने भले आराध्यको न पहिचाना हो, मेरे हृदयने उन्हें अवश्य पहिचान लिया था। मेरी दृष्टि उनके चरणोंपर जाकर वहीं निबद्ध हो गयी थी। मेरा चित्त उन मुनि-मानस-मराल चारु-चरणोंका स्पर्श प्राप्त करनेके लिए व्याकुल हो उठा था।

'लक्ष्मण ! ये विद्वान हैं।' श्रीरघुनाथने अनुजसे कहा—'इस वनमें ऐसा विद्वान ? इनके भाषणका प्रत्येक शब्द सार-गर्भित है। भाषा व्याकरण-शुद्ध है, स्पष्ट है। शास्त्रज्ञ ही इस प्रकार उपयुक्त भाषण कर पाता है।'

'विप्रश्रेष्ठ ! हम वनमें आये पिताकी आज्ञा स्वीकार करके।' श्रीरघुनाथका मेघ गम्भीर स्वर श्रवणोंमें पड़ा—'हमारे साथ मेरी अर्धाङ्गिनी श्रीजनकराज नन्दिनी थीं। वनमें चतुर्दश वर्ष रहना था। इस अन्तिम वर्षमें दण्डकारण्यमें निशाचरने उनका अपहरण कर लिया, अतः हम उनका अन्वेषण करते वनमें घूम रहे हैं। हमने अपना वृत्त बतला दिया ; किन्तु इस राक्षसोंके उपद्रवसे व्याप्त काननमें विप्रश्रेष्ठ आप कैसे आगये हैं ? आपका वेश तपस्वी जैसा नहीं है। हम तो इक्ष्वाकु गोत्रीय अयोध्या-नरेश महाराज दशरथके पुत्र हैं। मेरा नाम राम और मेरे इन छोटे भाईका नाम लक्ष्मण। आपका परिचय ?'

'मेरे स्वामी !' मैं चौंका और श्रीचरणोंपर गिर पड़ा। मुझे आश्चर्य हुआ कि वे सहज उदार, अनन्त दयाधाम तटस्थ खड़े कैसे रह गये ? उनके विशाल बाहु तो चरणपर पड़े अधमको उठाने सदा बढ़नेके अभ्यासी हैं और इस समय........।

मैं व्याकुल हो उठा। 'मैं इतना अपराधी, इतना पतित कि पतित-पावन भी मेरा स्पर्श करना नहीं चाहते ?' इस व्याकुलताके कारण मैंने जो

सङ्कल्प पूर्वक विप्र-वेश बनाया था, सङ्कल्प छूट जानेसे वह रूप तिरोहित हो गया। मेरा अपना वानर शरीर प्रकट हो गया।

श्रीराम सबको अपना लेते हैं—अधमाधम जीव भी उनका अनुग्रह-भाजन बन जाता है; किन्तु जो अपने ही दम्भसे आवृत है, उस तक अवतीर्ण होनेका मार्ग वह अनुग्रह नहीं पाता। दम्भ, छल, मायासे पृथक हुए बिना परम पुरुषकी कृपा कैसे प्राप्त हो सकती है। मेरा कृत्रिम वेश मिटा और श्रीरघुनाथका अमृत स्वर श्रवणोंमें पड़ा—'हनुमान, तुम ?'

उन दयाधामने झुककर बलपूर्वक मुझे उठाकर वक्षसे लगा लिया। मेरी क्या अवस्था थी, कहनेमें समर्थ नहीं हूँ। मेरे नेत्रबिन्दु उनके श्रीचरणोंपर गिर रहे थे। शरीर अवश हो गया था। मैं एक शब्द बोलनेमें समर्थं नहीं था।

समय लगा मुझे स्वस्थ होनेमें। मेरे नाथ स्नेहपूर्वक मेरी ओर देखते खड़े रहे। मैंने अपनेको कुछ आश्वस्त कर लिया, तब छोटे कुमारकी चरण-वन्दना की। उन्होंने भी मुझे हृदयसे लगाया। मैंने प्रार्थना की—'मैं अज्ञानी हूँ, छुद्र कपि हूँ। मैं विस्मृत हो गया, यह आपकी मायाकी महिमा और मेरा व्यामोह; किन्तु प्रभु ! आप भी अपनानेके पश्चात् अपने जनोंको विस्मृत कर देते हैं ? आप अल्पप्राण प्राणीकी ऐसे परीक्षा लेंगे तो कहाँ आश्रय पावेगा यह ?'

'हनुमान ! विस्मृतिका प्रश्न कहाँ है ?' सस्मित मेरे स्नेह धाम कह रहे थे—'मैंने तुमसे स्वयं मिलनेका वचन दिया था। निमित्त कुछ भी हो, मैं तुम्हारे समीप इस अरण्यमें आया हूँ।'

मैं पुनः पादारविन्दोंपर गिरने जा रहा था; किन्तु मेरे स्वामीकी भुजाओंने मुझे फिर हृदयसे लगा लिया। मुझे स्मरण आ गया कि प्रभुने अयोध्यासे भेजते समय कहा था—'पुनर्मिलनके पश्चात् तुमको इस प्रकार पृथक नहीं होना पड़ेगा यदि तुम स्वयं नहीं चाहोगे।'

मेरा चित्त आश्वस्त हुआ, शान्त हुआ और कर्तव्यकी प्रेरणा जागृत हो गयी। मैंने प्रार्थना की—'यहाँ समीप ही गिरि-शिखरपर वानरराज सुग्रीव निवास करते हैं। आप उनपर अनुग्रह करके उनसे मित्रता कर लें तो वे दिशाओंमें वानर यूथ भेजकर भगवती जानकीका पता लगा देंगे। इन

दिनों वे भी आपदग्रस्त हैं। अशरण, आत आपके सदा अनुग्रह-भाजन रहे हैं। आप उन्हें अपना लें।'

'हनुमान ! तुम जिनपर सानुकूल हो, रामके वे बिना जाने अपने हैं।' श्रीराघवने कहा—'चलो, हम सुग्रीवके समीप चलें।'

मैं अपने स्वामीका यह स्वभाव भली प्रकार जानता हूँ। कोई कैसा भी हो, भले उनका ही अपराधी हो, उनके किसी जनका आश्रय ग्रहण कर ले, प्रभुका कोई छुद्रजन भी उसे स्वीकार कर ले तो वे परात्पर पुरुष उस भक्ताश्रितके अपने हो जाते हैं। उसे स्वीकार करनेमें विलम्ब करना उनसे सम्भव नहीं है। मेरे आराध्य भक्तप्रिय पीछे हैं, भक्तके भक्तके तो वे स्वयं भक्त बन जाते हैं। सुग्रीव कौन-कैसे—कुछ नहीं। श्रीरामने कभी सुग्रीवके व्यवहारपर पीछे भी ध्यान नहीं दिया। मैंने प्रार्थना की और सुग्रीवको उन्होंने अपना स्वीकार कर लिया।

'इन पाटल-दल मृदुल श्रीचरणोंसे आप दोनों इस घोर वनपथमें दो पद भी इन नेत्रोंके सम्मुख चलेंगे तो इस वानरका हृदय विदीर्ण हो जायगा।' मैंने सम्मुख हाथ जोड़कर बैठते हुए प्रार्थना की—'यदि सचमुच इस कपिपर आपका स्नेह है, यदि यह आपकी कृपाका किञ्चित् भी अधिकारी है तो आप दोनों इसके स्कन्धोंपर आरूढ़ होकर इसे धन्य करें !'

'आओ लक्ष्मण !' होंगे भगवान नारायण गरुड़वाहन ; किन्तु गरुड़को भी शेष सहित नारायणको वहन करनेका सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ। मेरे उदार चक्र-चूड़ामणि आराध्य बिना संकोच कपिवाहन बन गये। उन्होंने तनिक मुख घुमाकर अनुजकी ओर देखा। उन्हें आदेश दिया और स्वयं मेरे दक्षिण स्कन्धपर विराजमान हो गये। श्रीलक्ष्मण लालने भी मेरे वाम स्कन्धको कृतार्थ किया।

मैं उसी क्षण धन्य हो गया। मेरे सिरको दोनों ओरसे दोनों भाइयोंके कर पकड़े हुए थे। मेरे वक्षपर दोनोंके एक-एक चरण थे और मेरे पृष्ठ देशपर भी दोनोंके पाद लम्बायमान थे। मैंने अपनी भुजाओंसे दोनोंके पाद आवेष्टित करके उनके चरणोंको अपने वक्षसे सटा लिया।

सेवा सावधानको प्राप्त होती है। मेरे करुणावरुणालय स्वामीने शक्ति दी—सावधानीकी शक्ति। उनकी कृपासे मेरा भाव परिपाकको प्राप्त हो

गया। यह सौभाग्य, यह स्पर्श प्राप्त होनेपर भी मूर्छा तो दूर, मेरे शरीरमें न कम्प हुआ, न रोमोद्गम या अश्रु अथवा स्वेद। ये तो सेवासे वञ्चित करने वाले विकार हैं।

सुग्रीवने जैसे ही देखा कि मैं अपने रूपमें प्रकट होकर दोनों कुमारोंको कन्धोंपर चढ़ा चुका हूँ—आश्वस्त हो गये। स्वागतके लिए प्रस्तुत हो गये।

—×—

१३–सुग्रीवसे मैत्री

मैं जब ऋष्यमूकके शिखरपर पहुँचा, सुग्रीव स्वागत करनेको प्रस्तुत थे। मैंने देख लिया कि उन्होंने कोमल किसलय बिछाकर आस्तरण बना दिया है सम्मान्य अतिथिके लिए ; किन्तु उन्हें कैसे पता हो सकता था कि आगन्तुकोंमें-से छोटे भाई अपने अग्रजके साथ एक आसनपर बैठना किसी प्रकार स्वीकार नहीं करेंगे।

मेरे स्कन्धसे जैसे ही दोनों भाई उतरे, सुग्रीवने चरण स्पर्शका प्रयत्न किया; किन्तु श्रीरघुनाथने उन्हें अङ्कमाल दी। यही किया लक्ष्मणलालने भी। सुग्रीवकी प्रार्थनापर जब श्रीराम उनके द्वारा आस्तृत पत्रोंपर आसीन हो गये, मैंने पुष्पित सघन पत्रकी चन्दन-शाखा तोड़कर छोटे भाईको आसन दिया।

'दुर्दम दशग्रीव भी जिस पुरीकी ओर देखनेका साहस नहीं करता, उसके चक्रवर्ती अधीश्वर महाराज दशरथके यहाँ अवतीर्ण साक्षात् परम पुरुष अपने अनुज लक्ष्मणके साथ हम अरण्यानी वानरोंको अपनी चरण-वन्दनासे पवित्र करने पधारे !' मैंने दोनों ही पक्षोंका परिचय दिया—'यह ऋक्ष-वानर उपदेव वर्गके अधिपति ऋक्ष रजाके कनिष्ठ कुमार सुग्रीवका तथा उनके अनुगत हम लोगोंका भी सौभाग्य।'

'मित्र ! आप यहाँ इस शिखरपर इस अवस्थामें ?' श्रीरघुनाथने

इधर-उधर देखे बिना ही जिज्ञासा की। मैंने जो परिचय दिया था उसके अनुसार सुग्रीवकी तथा हम सबकी वहाँ जो विपन्न स्थिति थी, वह संगत नहीं लगती थी।

'प्रभु स्वयं प्रमाण हैं कि विपत्ति सबपर ही आती है।' मैंने सुग्रीवकी ओरसे उत्तर दिया—'आपकी वाणी सदा सत्यका ही स्पर्श करती है। हम अपनी विपत्ति भी निवेदन करेंगे; किन्तु आपने कपिपतिको मित्र कहा है। आर्यमात्र अग्निकी साक्षीमें जिसका पाणि-ग्रहण करते हैं, उसका पालन करते हैं जीवन भर सम्पूर्ण शक्तिसे। कपिपति पूर्णतः आश्वस्त हो जाते; यदि आप अग्निको साक्षी करके इनको मित्र स्वीकार कर लेते।'

'यदि कपिपति को यह स्वीकार हो, आप अग्नि प्रज्वलित करो।' श्रीरामने अनुमति दे दी—'रामके लिए तो मित्र कहने और अग्नि-साक्षीमें स्वीकार करनेमें कोई अन्तर नहीं है।'

मैंने अग्नि प्रज्वलित की; क्योंकि मैं जानता था कि इसका अन्तर सुग्रीवके लिए बहुत अधिक है। उनकी सहज दुर्बलता मुझसे अज्ञात नहीं थी। वे इस मित्रताको महत्वपूर्ण मानें, उसपर दृढ़ रहें, इसके लिए मेरा प्रयत्न था।

'माता कैकेयीने वरदान माँगा था। उसके अनुसार पिताने मुझे चतुर्दश वर्ष वनमें मुनिवेशमें रहनेकी आज्ञा दी। मेरी भार्या श्रीजनक-नन्दिनी और ये मेरे अनुज लक्ष्मण मेरे प्रेमके कारण साथ आये।' सुग्रीवको संकोचहीन बनानेके लिए श्रीरामने पहिले स्वयं अपनी कथाका वर्णन किया—'वनमें हमने तेरह वर्ष सुखपूर्वक व्यतीत कर दिये। चौदहवें वर्षमें जनस्थानसे राक्षसने हमारी भार्याका अपहरण कर लिया। एक बार पता लग जाय कि वह जीवित है और कहाँ है तो हम यमराजको भी समरमें जीतकर उसे परित्राण देंगे।'

'हम एक दिन यहाँ शिखरपर बैठे थे। गगन मार्गसे दारुण दशग्रीव किसी स्त्रीका अपहरण करके ले जा रहा था।' सुग्रीवने बतलाया—'वह कुररीके समान क्रन्दन कर रही थीं। अपने उत्तरीयमें शीघ्रतापूर्वक बाँधकर उन्होंने अपने कुछ आभूषण गिरा दिये। उन्होंने अपना नाम सीता बतलाया था।'

श्रीरघुनाथ सुनते ही व्याकुल हो गये। उनके मांगनेपर वे आभरण वस्त्रमें बँधे लाये गये। मेरे कमल लोचनस्वामी उनको हृदयसे लगाकर अश्रुओंसे देर तक आर्द्र करते रहे।

मैंने उस दिन जाना कि क्यों भारतके मानव हम उपदेवताओंसे महान हैं। वनमें—विपत्तिके ऐसे दुर्दिनमें एक साथ रहने वाले कुमार लक्ष्मणने अग्रज द्वारा आभूषणोंको पहिचाननेको कहनेपर कह दिया—'मैंने अपनी उन माताके मुखकी ओर कभी देखा ही नहीं। मैं नहीं जानता कि उनके कर्ण-कुण्डल, कङ्कण अथवा केयूर कैसे थे। मैं उनकी प्रतिदिन पाद-वन्दना करता था, अतः मैं निश्चय पूर्वक जानता हूँ कि ये नूपुर उन वन्द-नीयाके ही पादाभरण हैं।

'देव! यद्यपि पता नहीं है कि दशग्रीवने उनको कहाँ रखा है, मायावी राक्षस कहीं भी रख सकता है; किन्तु मैं उनकी शोधके लिए अपने अनुगतोंको शीघ्र भेजूँगा।' सुग्रीवने आश्वासन दिया—'आप शोक-त्याग करें। हम देवी मैथिलीका पता अवश्य लगा लेंगे।'

'लेकिन मित्र! आप इस प्रकार यहाँ क्यों रहते हैं?' श्रीरघुनाथने फिर पूछा।

सुग्रीवने बालि द्वारा मायावीका पीछा करनेसे लेकर अब तकका पूरा विवरण बतलाकर कहा—'अब तो मैं गृहहीन, अर्थहीन, अनाश्रित हूँ। मेरी भार्या तक उसने छीन ली है। केवल ये चार-पाँच मेरे सच्चे हितैषी मेरे साथ हैं। यहाँ भी मुझे अपने उस शत्रुभूत भाईसे सदा सशङ्क रहना पड़ता है। आप दोनोंको इधर देखकर मैं भयभीत हो उठा था।'

'अब तुम निर्भय हो जाओ!' श्रीरघुनाथका स्वर गम्भीर हो गया—'रामका आश्रय लेनेपर भी किसीको भय दे सके, ऐसी शक्ति त्रिभुवनमें नहीं है। आगे भी नहीं हो सकेगी।'

'बालि अत्यन्त बलशाली है।' सुग्रीवको तो बालिका भय भूलता ही नहीं था। उन्होंने दुन्दुभिदैत्यकी कथा सुनाकर उसके शरीरका पर्वताकार कङ्काल दिखलाया। श्रीराम खड़े हुए और उन परम सुकुमारने अपने दक्षिण पादांगुष्ठसे वह अस्थि-पर्वत ऐसा निक्षिप्त किया—जैसे वह कोई शुष्क

गोमय पिण्डमात्र हो। पूरे भोजन भर दूर वह कङ्काल गिरा और टूट कर बिखर गया।

'बालिने जब दुन्दुभिको फेंका, उसके शरीरमें रक्त-मांसका बहुत भार था। अब तो यह शुष्क कङ्काल रह गया था।' सुग्रीवका सन्देह ठीक था। उन्होंने कहा—'ये सम्मुख सात ताल वृक्ष हैं। सुना है कि एक ऋषि पक्वतालफल लाये थे। उनपर एक सर्प आ बैठा। यह देखकर ऋषिने शाप दे दिया। वे ताल सर्पके शरीरको फोड़कर वृक्ष बन गये। बालि इन वृक्षोंको हिलाकर इनके फल गिरा लेता था। एक ऋषिने उसके इस कर्मसे झुंझलाकर कह दिया—'जो एक वाणसे इन वृक्षोंको गिरा देगा, वह तेरा वध करेगा।'

सुग्रीवकी बात समाप्त होते-न होते तो श्रीरघुनाथ उठ खड़े हुए थे। उनका कोदण्ड ज्या सज्ज हुआ और बाण छूट गया। निर्दिष्ट ताल वृक्ष जो अर्ध गोलाकार मण्डलमें थे, एक साथ भूमिपर गिरे। वाणको पुनः त्रोणमें लौटते देखकर सुग्रीव चकित रह गये। उन्होंने मुझसे पीछे कहा—'दोनों भाइयोंके त्रोणोंमें केवल पाँच-पाँच वाण देखकर लगा था कि ये किसीसे भी युद्ध कैसे करेंगे ; किन्तु जिसका वाण लक्ष्य-वेध करके लौट आता हो, वह वाणोंका भार क्यों वहन करे।'

सुग्रीवको श्रीरामने बालिसे द्वन्द्व-युद्धके लिए भेजा। भले एक बार आहत, हताश सुग्रीव भयकातर भाग आये ; किन्तु अपने कण्ठमें पड़ी पुष्पमाल्य पहिनाकर जब श्री रघुनाथने उन्हें पुनः भेजा—वानरेन्द्र बालिको प्रमाद नहीं करना था। बालिको एक ही वाणसे धराशायी करके जब श्रीराम लौटे, अनुजसे उन्होंने कहा था—'लक्ष्मण! अयोध्याका अधिपति चक्रवर्ती है, यह बल-दर्पित बालि भूल ही गया था। वह समझता था कि राम युद्ध करेगा उससे। उसने नहीं समझा कि वह अभियुक्त है। उसने अपनी वानर जातिकी मर्यादाका भी अतिक्रमण करके अनुजकी पत्नीको अन्तःपुरमें अवरुद्ध किया है। सुग्रीवके कण्ठमें मेरे द्वारा अर्पित पुष्पमाल्य केवल सूचना थी कि उसके विरुद्ध अभियोग उपस्थित है मेरे सम्मुख और वह दण्डनीय है। यह सत्य जब मेरे वचनोंके द्वारा उसकी समझमें आया, वह गलितगर्व दीन हो गया। कहीं उसने पहिले अपना प्रमाद समझ लिया होता!'

प्रभु नगरमें जा नहीं सकते थे। कुमार लक्ष्मणने नगरमें आकर सुग्रीवको वानर-ऋक्षोंके अधिपति पदपर अभिषिक्त किया। श्रीरघुनाथके श्रीचरणोंमें वानरेन्द्र बालिने मरते-मरते अपने एकमात्र पुत्र अङ्गदको अर्पित किया था। अग्रजका आदेश था लक्ष्मणलालको जो उन्होंने उसी समय पूर्ण कर दिया। अङ्गद वानर-राज्यके युवराज पदपर उसी मुहूर्तमें अभिषिक्त हो गये।

सुग्रीवका निर्वासन समाप्त हो गया। उनकी विपत्ति व्यतीत-कथा बन गयी। वे किष्किन्धाके अधिपति हो गये। श्रीरघुनाथकी कृपासे उनका जीवन-कण्टक ही नहीं कटा, पद-प्रतिष्ठा-पत्नी प्रभृति परिपूर्ण भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त हुआ।

पावस-प्रारम्भ हो गया था। वर्षाके इस कालमें परिव्राजकके लिए भी पर्यटन वर्जित है। अनुजके साथ श्रीराम ऋष्यमूकपर गुहामें निवास करने लगे। उन विश्वम्भरकी व्यवस्था कोई वानर करता? उन्होंने यह भी स्वीकार नहीं किया कि हम उन्हें कन्द-मूल पहुँचा दिया करें। ऋष्यमूकपर आम्र, जम्बूफल, कदलीके वृक्ष पर्याप्त थे। कन्द भी बहुत थे। अन्ततः सुग्रीवके साथ हम सबका इतने काल उन्हीं पर तो निर्वाह हुआ था। उनको ले आनेकी—सञ्चित कर देनेकी सेवा भी हमें नहीं मिली। यह कार्य छोटे कुमार करते रहे।

—:×:—

१४–उद्बोधन

सहज दुर्बल है जीव ! जीवमें दुर्बलता, दोष, प्रमाद न हो तो उसका जीवत्व क्या ? अपने अज्ञानसे ही तो वह अपनेही में अवस्थित परमात्मासे पृथक् है। सुग्रीवको दोष नहीं दिया जा सकता। वे बहुत दिनोंसे कष्ट उठा रहे थे। अभाव, आकुलता, आशङ्कामें वर्षों व्यतीत किये थे उन्होंने। सहसा राज्यपद, सम्पत्ति, सुख-भोग प्राप्त हुए तो जैसे अकाल-क्षुधा पीड़ित यह नहीं देख पाता कि उसका उदर प्राप्त अन्नका कितना अल्प सह सकता है, वह आहारपर टूट पड़ता है, भले यह आहार ही उसके मरणका हेतु बनता हो—सुग्रीव भी सुख-भोगमें ऐसे डूबे कि अपने समस्त कर्तव्योंको विस्मरण कर बैठे।

वानर-राज्य व्यवस्थित था। बालिके प्रचण्ड पौरुषने सर्वत्र सुव्यवस्था स्थापित कर रखी थी। बालिके न रहनेपर भी बालिके योग्य पुत्र अङ्गद युवराज थे। पिताके समयसे ही प्रजाका पालन-रक्षण उनका दायित्व बन गया था। अतः सुग्रीवको शासनकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं थी।

मेरी अवस्था अत्यन्त अटपटी थी। मेरे आराध्य समीप ही ऋष्यमूक-पर निवास कर रहे थे। मेरा हृदय उनके पादपद्मसे पलभर भी पृथक् होनेको प्रस्तुत नहीं था; किन्तु मैं केवल उनके श्रीचरणोंमें प्रणतिके निमित्त पहुँच पाता था। सुग्रीवने अभिषिक्त होते ही 'आदेश दे दिया मुझे— 'पवन-पुत्र, आप युवराजको प्रशासनमें सहायता करते रहो।'

पावस-प्रारम्भ होगया था। प्रतीक्षाके अतिरिक्त हमकुछ कर भी नहीं सकते थे—अपने परमाराध्यकी कोई सेवा नहीं। लेकिन प्रभु श्रीमैथिलीके वस्त्राभूषण मिलनेपर उन्हें वक्षसे लगाकर जैसे व्याकुल हुए थे, वह मूर्ति मेरे मानससे हटती नहीं थी। श्रीमैथिली–मेरी अब तक अनदेखी माँ और वे कहीं राक्षसकी वन्दिनी थीं। कौन कुपुत्र होगा कि माताका अपहरण होजानेपर शान्तिसे सो सके। मैंने पावसके दो मास पल-पल युगों-कल्पोंके समान काटे–कैसे काटे, यह कह पाना सम्भव नहीं है।

आयुर्वेद पावस और वर्षा दो ऋतुएँ मानता है—ठीक मानता है ; क्योंकि ऋतुएँ द्विमासिक होती हैं और वर्षाकाल तो चातुर्मास्य कहा जाता है। परिव्राजकोंमें भी अनेक अपनी यात्रा केवल प्रारम्भके दो मासही स्थगित रखते हैं। भाद्रपदकी समाप्तिके साथ वर्षाका बल प्रायः शिथिल होजाता है। यह ठीक है कि सुग्रीवने श्रीरघुनाथको वर्षाके व्यतीत होजानेपर श्रीवैदेहीके अन्वेषणका वचन दिया था ; किन्तु उस अन्वेषणकी प्रस्तुति भी वर्षाके पश्चात हो—बहुत विलम्ब हो जायगा।

मैं प्रतीक्षा करता रहा कि सुग्रीव स्वयं सावधान होंगे। भगवान हव्यवाहकी साक्षीमें मैत्री करके उन्होंने जो वचन दिया है और जिसके अग्रिम पुरस्कार स्वरूप यह वानराधित्य प्राप्त कर चुके हैं, उन वचनों का—उसके लिए आवश्यक कर्तव्यका स्मरण करेंगे; क्योंकि अब उसके लिए सक्रिय होनेका समय आगया था ; किन्तु सुग्रीव तो सर्वथा अपने वचनोंको विस्मृत हो चुके थे। मैंने लगभग एक मास प्रतीक्षा की ; किन्तु मायामुग्ध, प्रपञ्चमें सुख मानकर प्रमादग्रस्त बना प्राणी कभी स्वयं सचेत हुआ है कि सुग्रीव हो जाते?

'देव ! हम सबके लिए महाभय उपस्थित होने वाला है।' मैंने एक दिन अवसर देखकर सुग्रीवसे एकान्तमें कहा। उनके अन्तःपुरमें मेरा अबाध प्रवेश न होता, मुझे यह अवसर भी प्राप्त नहीं होता ; क्योंकि वे अन्तःपुरसे बाहर तो आते ही नहीं थे।

'क्या ? कौन आक्रमण करने वाला है ?' सुग्रीव सहसा अत्यन्त उद्विग्न हो उठे—'बालिसे मैत्री करली थी दशग्रीवने । वह अपने मित्रका प्रतिशोध लेनेको उत्सुक है ?'

'वह उत्सुक भी होता तो चिन्ताकी उतनी बात नहीं थी।' मैंने कहा—'लङ्का दूर है। हमको प्रस्तुत होनेके लिए कुछ समय प्राप्त होजाता ; किन्तु भय तो किष्किन्धाके सर्वथा समीप है।'

'सर्वथा समीप ? कौन आगया ?' सुग्रीव उठ खड़े हुए। वे कायर नहीं थे ; किन्तु मेरे वचनोंने उन्हें कम्पित कर दिया था। वे जानते थे कि जिसे मैं भय बतला रहा हूँ, वह सामान्य भय हो ही नहीं सकता।

'आप व्याकुल बनकर कुछ कर नहीं सकते। पहिले मेरी बात पूरी सुनलें !' मैंने जब गम्भीरता पूर्वक कहा तो वे बैठ गये। उस समय भी उनके शरीरमें अवसाद, भय, उत्सुकता स्पष्ट थी। मैंने उन्हें समझाया—'आप जानते हैं कि किसीको कुछ पानेकी अत्यन्त उत्कण्ठा हो और हम उसे वचन दे दें उसके प्राप्यकी प्राप्तिमें सहायक होनेका, उससे पारिश्रमिक प्राप्त कर लें और समयपर उसकी सहायता न करें, वह क्या करेगा यदि समर्थ हो ?'

'हनुमान ! पहेली मत सुनाओ।' सुग्रीवने व्याकुल स्वरमें कहा—'मैं जानता हूँ कि वह समर्थ ऐसी स्थितिमें उस कृतघ्नको जीवित नहीं छोड़ेगा। किष्किन्धामें किसने यह अपराध किया है ?'

'स्वयं वर्तमान वानरेन्द्रने !' मैंने स्थिर स्वरमें कहा—'यह राज्य जिसका प्रसाद है; वे चक्रवर्ती श्री दाशरथि किष्किन्धाके पार्श्वमें ही हैं। वे कितने व्याकुल हैं अपनी भार्याका पता पानेके लिए, उनकी व्यथा—आकुलता कैसी है, भुक्तभोगी वानरपति समझ सकते हैं। उन्हें वचन दिया गया है और उसका पुरस्कार ही है कि आप इस समय वानरेन्द्र हैं। श्रीरामके एक वाणने बालिको सदाके लिए भू-शय्या देदी थी। उनके त्रोणमें वह वाण है और वह अकेला ही वाण उनके समीप नहीं है। उनके अनुजकी तेजस्विता अपरिमेय है। वर्षाकाल व्यतीत होनेपर भी श्रीवैदेहीके अन्वेषणको हम अप्रस्तुत मिलें, वे क्रोध नहीं करेंगे ? क्रुद्ध श्रीरामके शरोंका कोई प्रतिकार हममें-से किसीके समीप है ?'

'पवनकुमार ! तुम जैसे सुहृदको पाकर ही सुग्रीव अब तक जीवित है। बालि कबका यमलोक भेज चुका होता मुझे यदि तुम सहायक सहचर सदा सावधान न होते। मुझे कभी यह भ्रम नहीं हुआ कि उसने मुझे क्षमा कर दिया है। केवल तुम्हारे भयसे उसने ऋष्यमूकपर किसीको मुझे मारने नहीं भेजा।' सुग्रीवने मुझे उठकर वक्षसे लगाया। समीप बैठानेका यत्न किया। मैं दूसरे आसनपर बैठ गया, तब बोले—'तुम्हीं इस विपत्तिसे भी मुझे बचा सकते हो। श्रीरामके एक शरकी अग्निमें किष्किन्धा शलभकी भाँति भस्म होजायगी। उनके रुष्ट होनेका कारण है। वे क्रोध करें तो कोई उन्हें दोष नहीं देगा। मैं प्रमत्त होगया। अब तक मैंने कुछ किया नहीं श्रीमैथिलीका पता लगानेके लिए। तुम्हीं सदासे सुग्रीवके दोषोंको

भी सद्‍गुण बनाते आये हो। अब इस बार भी सहायक बनो! सुधार लो मेरी भूलको और वानर-कुलको बचालो!'

'मैं तो सेवक हूँ।' मैंने अञ्जलि बाँधकर कहा—'आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।'

'अविलम्ब प्रस्थान करो।' अब सुग्रीव सजग होचुके थे—'वन, कन्दरादि जहाँ भी हमारे वश-वर्ती वानर-ऋक्ष नायक हैं वहाँ उनसे मेरा सन्देश कहो। वे अपने स्थानपर न हों तो जहाँ मिलें, वहाँ उन्हें जाकर मिलो। तुम वायुनन्दन हो। तुम्हारा वेग अपने पितासे भी प्रबल है! सबको सुग्रीवका आदेश सुनाओ।'

'सब वानर-ऋक्ष नायकोंको अपने समस्त पुरुषवर्गको लेकर एक पक्षके भीतर किष्किन्धा पहुँच जाना चाहिए।' सुग्रीवने आदेश सुनाया। हम उपदेवताओंमें वृद्ध भी सशक्त रहते हैं। सद्योजात शिशु भी तरुणोंके समान बल एवं आकार प्राप्त कर लेते हैं। रोगी कोई होता नहीं। अतः पुरुषमात्रको उपस्थित होना था। केवल नारियाँ अपने स्थानोंपर रहेंगी और उनकी आहारादि की व्यवस्था वे स्वयं कर लेंगी। उन्हें वनोंसे फल, कन्द लानेका अभ्यास है। राजाज्ञा सुनादी गयी पूरी—'इस अवधिमें जो यहाँ नहीं पहुँच जायगा—दण्डनीय होगा। उसे अङ्ग-भङ्गका दण्ड ही नहीं—प्राणदण्ड भी प्राप्त होसकता है।'

सुग्रीवने सावधानी रखी। इस प्रकार सबको क्यों बुलाया जारहा है, इसकी कोई सूचना मुझे किसीको नहीं देनी थी। मुझे सेवक अथवा सहायकोंकी आवश्यकता नहीं थी और न हम वानरोंको आहार साथ रखनेका अभ्यास होता।

सुग्रीवको अभिवादन करके मैंने प्रस्थान किया। मैं स्वयं इस कार्यके लिए उत्सुक था। श्रीरघुनाथकी अनुकम्पा हो तो संयोग सदा सानुकूल रहते हैं। एक भी वानर अथवा ऋक्ष-नायकका मुझे अन्वेषण नहीं करना पड़ा। सब मुझे अपने-अपने स्थानोंपर ही मिलते गये। मैं सन्देश सुनाकर तत्काल चल देता था। इस प्रकार प्रायः पूरे जम्बूद्वीपके वन-पर्वत निवासी ऋक्ष-नायकोंको मैंने दो पक्षमें सुग्रीवका सन्देश सुना दिया। मैं जब लौटने लगा तो मार्गमें अनेक यूथप मुझे मिले और वे मेरे साथ ही आये।

--:×:--

१५—अन्वेषणका आरम्भ

मैंने सुग्रीवको जो आतङ्कित किया था, वह आशङ्का निर्मूल नहीं थी। जैसे ही मैं वानर-ऋक्षोंको राजाज्ञा सुनाकर लौटा, किष्किन्धामें प्रवेश करते ही मुझे समाचार मिला—'अयोध्याके छोटे कुमार कुछ ही काल पूर्व अत्यन्त क्रुद्ध यहाँ आये। उन्होंने धनुषपर वाण चढ़ा लिया था। अरुण लोचन उनका वह रूप—किसीका साहस उनके समीप जानेका नहीं हो रहा था। वे क्रोधारुण-मुख कह रहे थे—'कदर्य कपि! राज्य पाकर इतना प्रमत्त हो गया कि श्रीरघुनाथसे वञ्चना करनेका साहस करता है! मैं इस कपि-पुरीको अभी भस्म कर दूँगा। संसार देखेगा कि रघुवंशी वचन देकर पालन करना जानते हैं तो वचन-देकर वञ्चित करने वालेको दण्ड देनेकी शक्ति भी उनमें है।'

'हममें-से किसीको भ्रम नहीं था कि श्रीलक्ष्मण यह पुरी ही नहीं, सम्पूर्ण भूतल भी भस्म करना चाहेंगे तो उन्हें दूसरा शर त्रोणसे निकालनेकी आवश्यकता नहीं होगी।' समाचार देने वाले सुग्रीवके एक परिकर ही थे। सुग्रीवके संकेतपर वे नगर-द्वारसे बाहर मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं साथ आने वाले वानर यूथको पीछे छोड़कर समाचार देने आगे आ गया था।

'फिर?' मैंने उत्सुकता पूर्वक पूछा।

'वानरपतिको समाचार मिला तो उनमें भी क्रुद्ध कुमारके सम्मुख जानेका साहस नहीं हुआ। उन्होंने देवी ताराको और युवराज अङ्गदको भेज दिया।' उसने बतलाया—'मुझे भी उनके पीछे ही जानेका आदेश मिला।'

'आपके भुवन-वन्दनीय परम पुरुषोत्तमने जिसके स्वामीको प्राणदण्ड देकर भी जिसे अनुकम्पा-पावन किया, उसके वधसे असहाया अबला तारा आपके पाद-पद्मोंमें प्रणाम करती है।' वानर महाराज्ञीने प्रणाम करते-करते कहा—'जिसे मरते-मरते पिताने श्रीरघुनाथके चरणोंमें डाल दिया था और जिस पितृहीन बालकको अग्रजके आदेशसे स्वयं आपने अभय देकर यहाँके युवराजपदपर प्रतिष्ठित किया था, वह अङ्गद प्रणिपात कर रहा है।'

'वत्स अङ्गद !' क्षणार्धमें कुमारने वाण उतारकर त्रोणमें रख लिया। धनुषसे ज्या उतर गयी। उनका वह आरक्त मुख स्नेह-शीतल हो गया— 'तुम आये ? प्रसन्न हो तुम ?'

'प्रभु सानुकूल हैं तो बालककी प्रसन्नता परिपूर्ण है।' कुमारने अङ्गदको हृदयसे लगा लिया था। वहाँसे पृथक् होकर वानर-युवराजने विनम्रता-पूर्वक कहा—'आपके अभय कर मस्तकपर पड़े, अङ्गद उसी दिन अशङ्क और पूर्णकाम हो गया।'

'क्षमा करना ! मैं आवेशमें विस्मृत हो गया था कि किष्किन्धापुरी और यहाँकी प्रजा हमारे युवराज अङ्गदकी भी है।' कुमार लक्ष्मणके स्नेह भरे स्वरने पुरी तथा प्रजाको अभय दे दिया—'किन्तु श्रीरघुनाथ अनन्त काल तक तो प्रतीक्षा नहीं कर सकते। पता नहीं, मेरी वे वन्दनीया जगदम्बा कहाँ, किस अवस्थामें हैं !'

'देव ! वानरपति प्रमत्त नहीं हैं। उन्होंने प्रमाद नहीं किया है !' देवीताराने प्रार्थना की—'उनमें साहस नहीं कि आपको रुष्ट सुनकर भी सम्मुख आ सकें। आप हम वानरोंकी गुहामें पधारें, वहाँ अब तक जो प्रयत्न वानरपतिने किया है, स्वयं श्रीचरणोंमें निवेदन करनेको उत्सुक हैं।'

'अभी ही कुमार लक्ष्मणको लेकर देवी तारा और वानर-युवराज अपने सदन गये हैं।' समाचार देने वालेने कहा।

'पीछे जो कपि यूथ आ रहा है, उसे वानरपतिके गुहा-सदनके सम्मुख उपस्थित होनेको कह देना।' मैंने उसे समझाया कि वह यहीं रहे ; क्योंकि वानरयूथ एक साथ ही नहीं आ जावेंगे। आज सभीके आगमनका दिन है, वे थोड़े-थोड़े काल पश्चात् आते रह सकते हैं।

मैंने जैसे ही पहुँचकर श्रीलक्ष्मणलाल एवं सुग्रीवको अभिवादन किया, लक्ष्मणजीने सस्नेह मेरी ओर देखा—'पवनपुत्र ! मेरी दृष्टि नगर-प्रवेशके क्षणसे ही तुम्हारा अन्वेषण कर रही थी। तुम तो लगता है कि किसी प्रवाससे अभी लौटे हो। इधर लगभग एक पक्षसे प्रभुके पदोंकी वन्दना करने भी तुम आये नहीं ?'

'देव ! हमारे वानरेन्द्र श्रीरघुनाथके भक्त हैं। इन्हें श्रीराम-कार्यकी चिन्ता कदाचित आपसे अधिक है !' मैंने देख लिया था कि श्रीलक्ष्मणलालका

यथोचित पूजन हो चुका था। मैं बाहर होने वाला कोलाहल सुन रहा था। इसका अर्थ था कि आमन्त्रित वानरयूथ आने लगे हैं। मेरे वचन सुनकर सुग्रीवने मेरी ओर इस प्रकार देखा कि उनकी दृष्टिमें कृतज्ञता उमड़ रही थी। मेरे संकेतको समझकर उन्होंने अपनी पत्नी रुमाके साथ श्रीलक्ष्मणलालके चरणोंमें मस्तक रखा तो उन्हें श्रीलक्ष्मणने उठाकर हृदयसे लगा लिया। मैंने उपयुक्त अवसर देखकर निवेदन किया—'कोटि-कोटि वानर यूथ बुलाये गये हैं। उनके यूथ-पति भी बाहर एकत्र हो सकें इतना स्थान नहीं है। आप दोनों बाहर पधारें और जो आ गये हैं, उन्हें लेकर हम प्रभुके समीप चलें। आने वाले सीधे वहीं आवें, यह आदेश वानरेन्द्र दे देंगे यहाँ।'

एक क्षणका भी विलम्ब मुझे सह्य नहीं था। मेरी त्वरा श्रीलक्ष्मण-लालको प्रसन्न कर गयी। उन्होंने सुग्रीवसे कहा—'हम चलें ! हनुमान ठीक कहते हैं।'

उस सदनसे—यदि हम वानरोंकी गुफाओंको सदन कहा जा सके, श्रीलक्ष्मणलाल सुग्रीवके साथ ही निकले। मुझे अङ्गदके साथ अनुगमन करना था। अङ्गदने चलते-चलते धीरेसे कहा—'आपकी शक्ति एवं तत्परताके समान ही आपका चातुर्य अद्भुत है। आपके करोंकी छाया जिसके शीशपर है—अभय, सफलता, श्री और सुख उसके स्वत्व हैं।'

हम बाहर आये तो उपस्थित वानर यूथपतियोंने एक साथ झुककर अभिवादन किया। केवल यूथपति आगे वहाँ तक आ सके थे और वे भी परस्पर सटकर खड़े थे। वे भूमिमें मस्तक रख सकें, इतना स्थान नहीं था वहाँ। उस अपार वानरयूथको देखकर श्रीलक्ष्मण प्रसन्न हो गये। उन्होंने सुग्रीवकी ओर और मेरी ओर भी देखा।

'देव ! दशग्रीव त्रिभुवनजयी न सही, सर्वत्र उसके सेवक हैं।' मैंने कहा—'पता नहीं उसने जगदम्बाको कहाँ छिपाया होगा। सम्पूर्ण पृथ्वीमें पहिले ढूँढ़ना है। किष्किन्धाके हम थोड़े लोग प्रस्थान भी कर चुके होते तो कितना कुछ कर पाते ? हमारे वानरेन्द्रने इसीलिए जम्बूद्वीपके अपने समस्त अधीनस्थोंको एकत्र होनेका आदेश दिया। अब कहीं कोई वानर या ऋक्ष पुरुष नहीं रह जायगा। सब आज सायंकालसे पूर्व प्रभुके श्रीचरणोंमें

उपस्थित हो रहे हैं। ये कोटि-कोटि आपके अनुचर आदेश पाकर आज ही भगवती भूमिजाका अन्वेषण करने प्रस्थान करेंगे। धरतीका चप्पा-चप्पा देख लेनेमें भी हमें बहुत समय नहीं लगेगा।'

'प्रभुके समीप ही चलें!' श्रीलक्ष्मणने इतना ही कहा। वानरोंके इस अकल्पनीय संख्याबलको देखकर श्रीरघुनाथ आश्वस्त होंगे अन्वेषणके सम्बन्धमें, यह सभी सोच रहे थे।

हम ऋष्यमूकपर पहुँचे तो श्रीरामने अपने पदोंमें प्रणिपातको गिरते सुग्रीवको उठाकर हृदयसे लगा लिया। सुग्रीवके बहुत संकुचित होनेपर भी उन्हें चरणोंके समीप बैठने या खड़े रहनेका अवसर नहीं मिला। श्रीरामने उन्हें अपने साथ ही शिला-तलपर वाम भागमें बैठा लिया। श्रीलक्ष्मण कुछ पीछे अवस्थित हुए।

सुग्रीवके संकेतके अनुसार मैं अङ्गदके साथ आगतोंका स्वागत करने, उन्हें व्यवस्थित करने और उनमें-से प्रमुख यूथपोंको श्रीरामके चरणों तक पहुँचानेकी व्यवस्था करने उठ गया।

'ये आगत वानर-ऋक्ष सब आपके आज्ञापालक हैं।' सुग्रीवने श्रीरघुनाथसे कहा। अब हम प्रधान वानर-यूथपतियोंको वानरेन्द्र तथा श्रीरामको अभिवादनका अवसर दे रहे थे। सुग्रीव श्रीरामको उनका परिचय दे रहे थे। ऋक्षराज जाम्बवान, परम कुशल वानर-विश्वकर्मा नल-नील, शूरश्रेष्ठ गवय-गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ, मैन्द, गज, पनस, बलीमुख, दधिमुख, सुषेण, तार, मेरे पिता केसरी—लेकिन हम कितनोंको भेज पाते? किस यूथपको वञ्चित करते श्रीरघुनाथके चरण-दर्शनसे? यही क्रम चलता तो सप्ताह नहीं, महीने लगते केवल यूथपोंको प्रणाम करनेमें।

दृष्टि जहाँ तक पहुँच सकती थी उससे भी पार पता नहीं कहाँ तक वानर-ऋक्षोंका समूह था। अनेक रंग—काले, पीले, श्वेत, कपिश, अरुणाभ और सब सुपुष्ट, सब दीर्घाकार, सबल—अन्ततः सब उपदेव वर्गके थे। कोई क्षीणकाय, खर्वतनु, दुर्बल, रोगी, शिथिल नहीं था। सबकी भीड़ कसमसा रही थी।

'तात! हमने तो प्रभुको प्रणिपात कर लिया। उन स्नेहमयने हमारा सत्कार किया। हमसे हमारे परिवारकी कुशल पूछी!' अकस्मात् एक

यूथपतिने, जिसे मैं प्रभुके समीप जानेको सूचित करने गया, गद्‌गद् स्वरमें कहा—'प्रभु तो मुझे—मुझ तुच्छ कपिको जानते हैं। वे परिचित हैं और मुझपर उनका सर्वाधिक स्नेह है। तुम और किसीको अवसर दो तात !'

श्रीरघुनाथ सर्वेश्वरेश्वर हैं। समस्त प्राणी उनके अपने हैं। कोई उनसे अपरिचित नहीं। किसीपर उनका कम स्नेह नहीं। किसीकी वे उपेक्षा नहीं करते। सबको अपनेपर उनका सर्वाधिक वात्सल्य दीखता है। यह सत्य मेरे और अङ्गदके सामने भी स्पष्ट हो गया। हम दोनों जिस किसी यूथपतिके पास गये उसे शिखरपर प्रभुके समीप जानेको कहने, उसीने यही उत्तर दिया जो मैंने एकका वर्णन किया है।

'प्रभुकी पद-वन्दनाका अवसर जिन्हें प्राप्त न हुआ हो, ऐसे कोई यूथपति ? मैंने शिखरपर पहुँचकर पुकार की। जब किसीका उत्तर नहीं आया, मैंने पुनः पुकारा—'कोई सामान्य कपि, कोई सामान्य ऋक्ष श्रीरघुनाथके समीप पहुँचना चाहता हो तो आगे आसकता है !'

'सानुज श्रीरघुनाथ सबके समीप स्वयं जाकर सबसे मिल आये हैं !' युवराज अङ्गदने पीछेसे आकर मेरे कन्धोंपर कर रखा—'मैंने जिससे भी पूछा, सबने यही कहा है। श्रीरघुनाथ सर्वेश्वर हैं, सर्व समर्थ हैं,यह माताकी और आपकी बार-बारकी कही बात अब मैं समझ रहा हूँ।'

मैंने अङ्गदकी ओर देखा—'कोई शेष नहीं है तो अब हम उन श्रीचरणोंपर मस्तक रखनेका अवसर पा सकते हैं।'

हम दोनोंने प्रायः एक साथ ही प्रभुके पदोंपर सिर रखा। हमारे आराध्यने उठाकर दोनोंको ही हृदयसे लगाया। हम दोनोंको सौभाग्य मिला कि उनके एक-एक चरण अङ्कमें लेकर बैठ सकें।

'अब आप इन आगतोंको आदेश करो।' सुग्रीवने प्रार्थना की—'ये सब कन्द-मूल अथवा शाक-पत्रपर भी निर्वाह कर सकते हैं। तरु-शाखा या शिलातल इनके लिए विश्रामको पर्याप्त है। अतः इनके लिए कोई आहार-आवासकी व्यवस्था आवश्यक नहीं है।'

'आप सबके गुण, शक्ति, सामर्थ्यसे परिचित हो।' श्रीरघुनाथने सुग्रीवसे कहा—'आपने प्रायः भू-मण्डलको अपने भ्रमणमें देख भी लिया है। अतः आप ही इनके दल बनाकर अन्वेषण-दिशाका निर्देश करो।'

बालिके भयसे भीत सुग्रीव जब भागेथे,भू-मण्डलमें भटकते फिरे थे । उनका वह भ्रमण आज उपयोगी सिद्ध हुआ । उन्होंने पूरे वानर-ऋक्ष नायकोंको चार विभागोंमें विभक्त किया । अपने अनुगतों, प्रजा-परिवारको सबको साथ लेजाना था । किस दलको किस दिशामें जाना है, किस मार्गसे जाना है,कौन-कौनसे विशिष्ठ स्थान मिलेंगे, किन स्थलोंसे,स्थितियोंसे अथवा व्यक्तियोंसे सावधान रहना है, किन कठिनाइयोंका सामना कहाँ-कहाँ होसकता है और उनसे कैसे बचा जा सकता है, कहाँ किनसे सहायता मिल सकती है, यह सब सुग्रीवने प्रत्येक दलको विस्तारपूर्वक समझाया ।

एक मासका भ्रमण इतनी योग्यता प्रदान करता है, जितना ज्ञान पढ़कर दस वर्षमें कठिनाईसे पाया जा सकता है । यह तथ्य हम सब जानते थे ; किन्तु वानरेन्द्र सुग्रीवका ज्ञान इतना विस्तीर्ण है वर्तमान भूमण्डलके सम्बन्धमें, अनुमान तक नहीं था । प्रायः सभी चकित उनकी ओर देख रहे थे, जब वे विभिन्न दलोंको उनके गन्तव्यके सम्बन्धमें सूचनाएँ दे रहे थे ।

'गहनवन, सघनकुञ्जें, दुर्गम शिखर, जलाशय आप सब देखेंगे ही ।' सुग्रीवने सबको सम्बोधित किया—'ग्राम, नगर, व्रज देखने हैं । राक्षस मायावी होते हैं । कोई भी वेश धारण कर सकते हैं, अतः ऋषिमुनियोंके आश्रम और देवस्थानोंकी उपेक्षा नहीं करनी है देखनेमें । विप्रोंसे, मुनियोंसे, वनचरोंसे और नगरोंमें जो कलाजीवी हैं, जो लोग सार्वजनिक सम्पर्कमें आते हैं, जिन पुरुषों या स्त्रियोंको किन्हीं गुणोंके कारण सबके भवनोंमें प्रवेश प्राप्त होजाता है, उनसे पता लगाना है ।'

'एक साथ ही पूरे दलको नहीं चलना चाहिए ।' सुग्रीवने सावधान किया—'किन्तु एकाकी भी किसीको नहीं रहना चाहिए । कमसे कम पाँच व्यक्ति अवश्य साथ रहें । यह वानरकुलके लिए प्रतिष्ठाका, परीक्षाका और हमारी सत्ताके रहने-न रहनेका भी प्रश्न है । अतः सबको निर्दिष्ट अन्तिम स्थान तक जाकर एक महीनेके भीतर अवश्य यहाँ लौट आना है । जो अवधि व्यतीत होने तक नहीं लौटेगा, उसे प्राणदण्ड प्राप्त होगा । यदि श्रीभूमितनयाका पता इसी महीने नहीं लग जाता, हम वानरोंको धरापर भार बनकर बने रहनेका कोई अधिकार नहीं है । ऐसा हुआ तो सुग्रीव सबका अपने हाथों वध करके आत्महत्या कर लेगा । वानर-वंश समाप्त हो जायगा यदि आप असफल होते हैं ।

इस भयानक चेतावनीके साथ वानरपतिने अपना वक्तव्य पूरा किया। मैंने आज सुग्रीवका अनुगत होनेमें गौरव अनुभव किया। वानरेन्द्रके उपयुक्त गरिमा एवं दृढ़ निश्चय उनमें व्यक्त हुआ। श्रीलक्ष्मण चकित देख रहे थे उनकी ओर। वानरयूथपति प्रभुके चरणोंमें प्रणाम करके उसी समय अपनी यात्रापर जाने लगे। एक क्षण नष्ट करनेका भी समय किसीके समीप नहीं था। एक मास—यह एक मासकी अवधि तो वानरकुलकी सत्ताके लिए निर्णायक अवधि बन चुकी थी।

———

१६—अन्वेषण-यात्रा

सबसे अन्तमें विदा उस दलको मिली जिसे दक्षिण जाना था। दशग्रीवकी लङ्का* हमारी किष्किन्धासे दक्षिण–किञ्चित् पश्चिम थी। दशग्रीव दक्षिण ही श्रीवैदेहीको लेजाते देखा गया था और दक्षिण जाने वाले दलको राक्षसोंसे आक्रान्त प्रदेशमें ही अन्वेषण करना था हमारे दलमें प्रमुख थे युवराज अङ्गद, वयोवृद्ध ऋक्षराज जाम्बवन्त, नल-नील, सुषेण, शरभ, द्विविद-मैन्द और मैं।

हमारे दलने श्रीरघुनाथके चरणोंमें प्रणाम किया। सुग्रीवको अभिवादन करके चलने लगा तो वानरपतिने मुझसे कहा—'पवनपुत्र ! तुम पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश तथा जलमें भी जासकते हो। सर्वत्र तुम्हारी गति अनवरुद्ध है। देवलोकोंमें तथा पाताल तक भी तुम प्रवेश करनेमें समर्थ हो। असुर, नाग, गन्धर्व, देवतादि सबके लोकोंका, सागर, वन, पर्वतके समस्त प्रदेशोंका तुम्हें पूरा ज्ञान है। तुम स्फूर्तिस्वरूप हो। वेगमें गरुड़ भी तुम्हारी समता नहीं कर सकते। नीतिशास्त्रमें तुम परम निपुण हो। बल,

---

*आज जिसे श्रीलङ्का नाम दिया गया है, वह पुराण-प्रतिपादित सिंहलद्वीप है। 'जायसी' ने भी इसे सिंहल ही माना है। रावणकी लङ्का वहाँ होनी चाहिए जहाँ इस समय मालद्वीप समूहके दक्षिण लक्षद्वीप समूह हैं।

बुद्धि, पराक्रममें विश्वमें तुम्हारी समता नहीं है। देश-कालका अनुसरण करनेकी कलाके तुम मर्मज्ञ हो। भगवती भूमिजाका पता पानेका उपाय तुम स्वयं सोचो। तुम्हारे लिए अमुक दिशामें ही जानेका बन्धन नहीं है। तुमको जिधर जाना उचित लगे, जाओ। जो करना ठीक लगे, करो ; किन्तु स्मरण रखो कि यह रामकार्य है और तुम्हीं एकमात्र सुग्रीवकी आशा हो !'

सुग्रीव जानते थे कि ऋषिके शापके कारण मेरा अपना बल-विक्रम विस्मृत रहता है। उसे बतलाकर उद्‌बुद्ध करना होता है। मैंने पुनः वानरेन्द्रको प्रणाम किया तो मेरे प्रभु श्रीरघुनाथने मुझे संकेत किया समीप आनेका। अपने करकी मुद्रिका देते हुए कहा—'निश्चय ही यह कार्य तुम्हारे द्वारा ही सिद्ध होना है। मेरे नामाक्षरोंसे अङ्कित यह अँगुलीय अपने पास रखो। अपने परिचयके लिए इसे एकान्तमें सीताको देना। उन्हें रामका सन्देश कहना। तुम्हीं इस कार्यमें समर्थ हो। तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो !'

मेरे आराध्यने वह सन्देश सुनाया जो मुझे जगदम्बा श्रीजानकीको सुनाना था। मैंने मस्तक झुकाकर सादर मुद्रिका ग्रहण की। मेरा रोम-रोम आनन्द विभोर था—'आप इस जनको सुयश देना चाहते हैं स्वामी। वही समर्थ है, सफलता उसकी ही सङ्गिनी है, जिसके आप सानुकूल हैं। आपने इस छुद्र कपिपर कृपा की है तो निश्चय यह सफलकाम होगा।'

मैंने पुनः उन सकल सुर-वन्दित पादारविन्दोंपर मस्तक रखा। मेरे मस्तकपर वे अभय कर आये और मैंने समझ लिया कि हनुमान तेरा मार्ग निरापद होगया।

मुद्रिका मैंने अपने मस्तकके केशोंमें ऐसे ग्रथित करली कि वह छिपी रहे और मेरे कूदने-उछलनेपर भी कहीं गिरे नहीं। मेरे मुखमें-मेरी जिह्वापर तो निरन्तर राम नाम रहता ही था।

हम किष्किन्धासे जैसे ही बाहर आये, युवराज अङ्गदने सबसे कहा—'हममें वयमें, बुद्धिमें और पदमें भी श्रीजाम्बवन्तजी श्रेष्ठ हैं। अतः हमारे दलनायक ये ऋक्षराज ही रहेंगे। हम सब बिना प्रतिवादके इनका आदेश स्वीकार करेंगे। इनके अनुशासनकी अवज्ञा करने वाला दलसे पलायन ही न कर जाय तो दण्डनीय माना जायगा।'

जाम्बवानने दलका नायकत्व स्वीकार करके पहिला आदेश दिया—'भगवती भूमिजा कहीं भी हों, उनका हरण दशग्रीवने किया है, अतः उन श्रीजनक-नन्दिनीकी प्राप्तिके लिए प्रभुको दुर्दम राक्षससे सङ्घर्ष करना पड़ेगा। शत्रुकी शक्ति मुख्य सङ्घर्षसे पूर्व जितनी सम्भव हो, दलित करदी जानी चाहिए। अतः अपने साथके वानर-ऋक्ष यह कर्त्तव्य मानलें कि अब वन-पर्वतोंमें जहाँ कहीं दानव, दैत्य, राक्षस मिलेंगे, मार दिये जाते हैं। यदि कोई एकाकी ऐसा न कर सके तो समीपके अन्य सहचरोंसे सहायता ले सकता है; किन्तु ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए कि कहीं बड़ा सङ्घर्ष प्रारम्भ होजाय। जहाँ ऐसी सम्भावना हो, वहाँ स्वयं कुछ न करके, मुझे, युवराजको अथवा हनुमानको सूचित करना चाहिए।'

'यह पूरा दाक्षिणात्य वन प्रदेश राक्षसोंका क्रीड़ा-कानन बन गया है।' जाम्बवन्तने दूसरा आदेश दिया—'अतः वानर-ऋक्ष दससे कमका दल बनाये बिना किसी ओर न जायँ और हम सबसे इतने दूर भी न जायँ कि उनकी पुकार हम तक पहुँच न सके।'

इस प्रकार लगभग एक योजनकी सीमा बन गयी। हमारे वानर-ऋक्षोंका उच्चस्वर हम योजन तक सुननेमें सहज समर्थ थे। 'रात्रिका अन्धकार प्रगाढ़ हो, इससे पूर्व ही सब एकत्र होजाया करें।' यह आदेश भी दिया—'किसी भी ऋषि-मुनि अथवा तपस्वीका किसी भी प्रकार अपमान न हो, उनके आश्रम वृक्षोंपर न उछल-कूद की जाय और न आश्रमोंकी सीमामें आश्रमके प्रमुखकी अनुमतिके बिना फल, कन्दादि लिये जायँ, भले वे स्वयं वृन्तच्युत ही हों। श्रीमैथिलीका पता पूछनेके लिए भी किसी उपासना अथवा ध्यानमें लगे साधककी आराधनामें बाधा न दी जाय।'

हमारे दलनायक ऋक्षराज जाम्बवन्तके इन आदेशोंका ही परिणाम था कि जब किष्किन्धासे श्रीरघुनाथने लङ्कापर आक्रमणके लिए वानर-ऋक्षोंकी महासैन्य लेकर प्रस्थान किया, समुद्रतट पहुँचनेसे पूर्व कोई राक्षस कदाचित ही मार्गमें मिला।

हमारे सब यूथप साथ ही चल रहे थे। वानर-ऋक्षोंका समूह दस दसके छोटे दलोंमें विभक्त होगया था और मुख्य दलसे दोनों ओर एक-एक योजन तक फैल गया था। पहिले दिन ही हमें अपनी योजनामें थोड़ा परिवर्तन करना पड़ा। जाम्बवन्तजीने सायंकाल अपने आदेशमें संशोधन

किया—'हम चाहते हैं कि पूर्व समुद्रसे पश्चिम समुद्र तकका पूरा भू-भाग हम लोग देखते चलें। क्योंकि यह भू-भाग क्रमशः सँकरा होता जाता है, हमारा दल स्वतः सिमटता जायगा। हमारे वानर-ऋक्ष पाँच-पाँचके दलमें बिखर सकते हैं और वे परस्पर इतनी दूर रह सकते हैं कि दोनों मध्यका स्थान देखते चल सकें। लेकिन किसी भी दशामें दो दलोंके मध्य इतनी दूरी नहीं होनी चाहिए कि एक दूसरेकी पुकार सुनायी न पड़ सकती हो। सायंकाल एकत्र होनेका क्रम ऐसे ही चलेगा।'

हमारे दलके लिए—हमारे किसी सदस्यके लिए ऐसा अवसर नहीं आया कि वह सहायताके लिए दूसरोंको पुकारे। राक्षस मिले—प्रायः एकाकी ही मिले और जिसे मिले, उसीने उसे समाप्त कर दिया। ऋषि-मुनियोंको श्रीमैथिलीका कुछ पता नहीं था। वैसे भी दक्षिणके उस अञ्चलमें असुरोंने केवल महर्षि अगस्त्यके आश्रममें तथा भगवान परशुरामके समीप महेन्द्राद्रि-पर ही ऋषि-मुनि छोड़े थे। शेषको तो उन राक्षसोंने भक्षणकर लिया था, जिन्होंने इधर वनोंमें अपना निवास बना लिया था। ऐसे ऋषि-मुनियोंके संहारक सुर-शत्रु वर्गके किसीको हमारे वानरोंने मारकर कोई अपराध नहीं किया था।

बहुत कम वनवासियोंके झोंपड़े हमें प्राप्त हुए। वे बेचारे राक्षसोंसे स्वयं अत्यन्त आतङ्कित थे। उनको दशग्रीवके अथवा श्रीवैदेहीके सम्बन्धमें कुछ पता नहीं था।

हमें गुफाएँ, गहन वन, पर्वत सभी देखने थे। हमारे आगे बढ़नेकी गति अन्वेषणके क्षेत्र-विस्तारके कारण मन्द थी। हम सब वनमें पर्याप्त फल अथवा कन्द प्राप्त कर लेते थे। रात्रिमें कहीं सुरक्षित विस्तीर्ण स्थलपर विश्राम करते थे। यह क्रम चल रहा था कि अचानक एक दिन इसमें बाधा पड़ी। हमें वनका ऐसा भाग मिला जहाँके वृक्षोंके पत्र अर्धशुष्क दीखते थे। लता तथा तृणोंका नाम नहीं था। वृक्ष जो थे वे कण्टकतरु थे या ऐसे थे कि उनके पत्ते आहारके अयोग्य थे। कोई फल जो खाने योग्य हो, कहीं नहीं था। कंद, मूलका चिह्न नहीं। कहीं जल नहीं दीखता था। न कोई सरिता, न वापी और न सरोवर। गड्ढे अवश्य मिले; किन्तु उनका तल-प्रदेश सूखकर दरारोंसे भरा था।

शरद ऋतुके प्रारम्भमें सूर्यका ताप असह्य होता है। उस दिन आकाशमें मेघखण्ड भी नहीं थे। शारदीय उज्वल मेघोंसे रहित निर्मल

आकाशके कारण आतप अधिक प्रखर हो गया था। दिनके प्रथम प्रहरमें ही हम सबको पिपासाका अनुभव होने लगा। हम सब पानी आगे कहीं मिलेगा, इस आशामें बढ़ते गये। बढ़ती गयी हमारी पिपासा। कहीं जलका—गढ्ढे में भरे मलिन जलका भी दर्शन नहीं हुआ।

वानर-ऋक्ष बार-बार मुख्य दलके समीप लौटते थे। हमारे समीप भी कोई उपाय नहीं था। हमने सबको दूर तक फैलकर देखनेको कहा; किन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। मध्याह्न व्यतीत होने तक सबके मुख शुष्क होगये। जिह्वामें काँटे उठ आये। सबके लिए अब चलना कठिन होने लगा। चलनेके अतिरिक्त उपाय नहीं था और चलना क्रमशः अशक्य होता जा रहा था। अब किसीमें वृक्षपर चढ़ने, दौड़ने, कूदनेका उत्साह नहीं रह गया था।

'यदि शीघ्र पानी नहीं मिलता, सबका मरण निश्चित जान पड़ता है।' मैं व्याकुल होकर अपने दयामय आराध्यका मनमें स्मरण करने लगा। तभी एक पार्श्वमें कुछ दूर एक विशाल वृक्षपर मेरी दृष्टि गयी। मनमें आया कि उसपर चढ़कर चारों ओर देखना चाहिए कि कहीं जलाशय दीखता है या नहीं।

मैं सबसे पृथक होकर उस वृक्षकी ओर चला तो किसीमें मुझसे कुछ कहने-पूछनेका उत्साह नहीं था। सब प्याससे व्याकुल होरहे थे। मैं उस वृक्षपर चढ़ता ही गया। उसकी उच्चतम शाखापर पहुँचनेके लिए मैंने अपने शरीरका भार पर्याप्त कम कर लिया था। उस शाखापर खड़े होकर चारों ओर देखनेपर भी जलाशय कहीं दिखलायी नहीं पड़ा; किन्तु कुछ दूरीपर वृक्षोंकी एक सघनताने मेरी दृष्टिको अपनी ओर खींचा। वहाँके वृक्षोंके पत्र दूसरे वृक्षोंकी अपेक्षा अधिक हरे थे।

मैं उन वृक्षोंकी ओर देख ही रहा था कि मुझे चक्रवाक, सारस, हंस, बगुलेके समान कुछ जलपक्षी दीख पड़े। इन पक्षियोंमें-से कुछ वृक्षोंके उस झुरमुटमें जाकर दृष्टिसे ओझल हो जाते थे और कुछ वहाँसे ऊपर उठकर उड़ते दूर भी जारहे थे।

मैं वृक्षसे उतर आया। जाम्बवन्तजी से मैंने कहा—'मैंने थोड़ी दूरीपर जलपक्षियोंको एक सघन वृक्षावलीमें प्रवेश करते देखा है।'

'जलपक्षी हैं तो जल कहीं समीप ही होना चाहिए।' जाम्बवन्तके साथ अनेकोंने कहा। सब मेरे द्वारा सूचित उस वृक्षके समीप आये। अनेकोंने वृक्षपर चढ़कर देखा और तब हम सब उस वृक्षावलीके समीप पहुँचे।

वृक्षोंके मध्यमें पृथ्वीमें एक विवर था। उसी भू-छिद्रमें जलपक्षी तथा दूसरे पक्षी भी प्रवेश करते थे। हमें यह देखकर संतोष हुआ कि भू-छिद्रसे निकलने वाले जलपक्षियोंमें अनेकोंके पक्ष भीगे हुए हैं।

'निश्चय यह विवर किसी जलाशय तक जानेका मार्ग हैं।' हमें जाम्बवन्तजीने आदेश दिया—'सब लोग अपने आकार ऐसे बना लें कि विवरमें सरलतासे प्रवेश किया जा सके। यहाँ राक्षसी माया नहीं होगी अथवा किसी तपः सिद्धका आश्रम नहीं होगा, कहा नहीं जा सकता। अतः भीतर अनुमतिके बिना कोई जलका, और हों, तो फलादिका भी, स्पर्श नहीं करेगा।'

अपने दलनायकके आदेशके अनुसार मैं सबसे आगे हुआ। ऋक्षराजने युवराज अङ्गदको सबसे पीछे रहकर सबका रक्षक बने चलनेको कहा। स्वयं वे मेरे पीछे होगये। हमारे प्रवेशसे पक्षियोंकी गतिमें बाधा पड़ी। अनेक मेरे मुख अथवा सिरसे टकराये; किन्तु वह अन्धकार ढका भू-विवर शीघ्र पार हो गया। हम शीघ्र गति से चले थे। मैंने अपना एक कर विवर-भित्तिसे लगा रखा था। मार्गमें कोई ऐसा स्थान नहीं आया, जहाँ किसीके टकराने, गिरनेका भय हो।

विवरसे निकलते ही मैं चकित होगया। निर्मल जलसे पूर्ण विस्तृत सरोवर था और उसमें अनेक रङ्गोंके कमल खिले थे। वही जलपक्षियोंका आकर्षण केन्द्र था। उस सरोवरके चारों ओर सुपक्व-सुरङ्ग फलभारसे लदे वृक्षोंकी ऐसी वनावली थी कि लगा, हम किसी देवोद्यानमें पहुँच गये हैं।

एक ही सुन्दर छोटा भवन था। उसे कुटीर केवल इसलिए नहीं कह सकता; क्योंकि वह तृण-निर्मित नहीं था। उस भवनके सम्मुख भव्य पुष्पोद्यानके एक सघन कुञ्जमें शिलातलपर मृगचर्मके ऊपर एक शुभ्रवस्त्रा तेजोमयी तपस्विनी आसीन थीं।

हमारे मुख शुष्क हो रहे थे। बोलना कठिन हो रहा था। हमारा आकार ही हमारे वर्गका परिचय देनेको पर्याप्त था। हमने उनके समीप

जाकर अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया तो उन्होंने हमारी ओर देखकर स्वयं कहा—'आप सब तृषार्त दीखते हैं। क्षुधातुर भी होंगे। अतः सरोवरमें स्नान करें, जल ग्रहण करें और यथेच्छ फल खाकर क्षुधा शान्त करलें, तब कुछ कहना चाहें तो मेरे समीप आ सकते हैं।'

हमको मानो प्राणदान मिला। जाम्बवन्तजीने सबको सचेत किया—'सब स्वभावगत सहज चपलता त्यागकर स्नान तथा फलाहार करेंगे! सरोवरमें न पुष्प तोड़े जायँगे और न संतरण करना है। वृक्षोंसे आहार मात्रके लिए फल लेने हैं। डालियाँ, पत्र तथा अनावश्यक फल न टूटें, इसका ध्यान रखना है।'

हम सभीने पहिले जलसे कण्ठ शीतल किया। थोड़ा जल पीकर स्नान किया सबने और तब जलके द्वारा पिपासाको भली प्रकार शान्त किया। वृक्षोंके फल सुरंग थे, स्वादिष्ट थे और आहार करनेपर यह भी ज्ञात हो गया कि उनमें श्रान्ति दूर करके स्फूर्ति एवं बलके वर्धनकी भी अद्‌भुत शक्ति है।

हम वानर-ऋक्षोंने जीवनमें प्रथम बार यह सावधानी अपनायी कि फलोंके बीज-गुठलियों और छिलके एकत्र डाले। कुछ वानर उन्हें बिना किसीके आदेशके भू-विवरसे बाहर फेंक आये। अन्यथा हम सब तो छिलके, गुठली आदि वहीं डालते जाने तथा वृक्षोंको हिलाने, शाखाओंको तोड़नेके अभ्यासी हैं।

'आप सबने इतना संकोच—इतनी सावधानी अकारण की।' हमने जब तृप्त होनेके पश्चात् उन तपोमूर्तिको प्रणाम किया, वे हँसीं—'मुझे आशा है कि आप सब श्रीराम-दूत हैं और ऐसा है तो मुझे अब यहाँ कहाँ रहना है कि यहाँके तरुओंकी रक्षा और स्थानकी स्वच्छताकी आप सब चिन्ता करें।'

'देवि! आपका अनुमान सत्य है।' जाम्बवन्तजीने कहा—'हम आपका परिचय जानना चाहते हैं। हमारे आगमनसे क्या यह स्थान इतना अपवित्र होगया कि आप इसका त्याग करना चाहती हैं? हमारा अपराध.......।'

'ऐसा कुछ नहीं है।' उन महनीयाने कहा—'आपका आगमन तो मेरा सौभाग्य है। मेरा नाम स्वयंप्रभा है। मेरी सखी हेमाके लिए उनके पिता विश्वकर्माके नृत्यसे तुष्ट सदाशिवने उसे यह स्थान दिया। यह देव-दानव-

मानव सबके लिए दुर्गम है। मेरी सखी ब्रह्मलोक जाने लगी तो मुझे यह स्थान दे गयी। मैं एकान्तमें भगवद्भजन करना चाहती थी। देवर्षिने मुझपर दया करके भगवन्नामका उपदेश किया, तभी यह सूचित कर दिया था—श्रीपरमप्रभु श्रीराम जब धरापर आवतीर्ण होंगे, उनके दूत इस स्थानमें आवेंगे। उनसे पूछकर तुम सर्वेश्वरके दर्शन करने जा सकोगी—आप सब अब अनुग्रह करके यह बतला दें कि मेरे आराध्य कहाँ हैं ? मेरे प्राण उनके पादपद्मोंकी प्रत्यक्ष प्राप्तिके लिए इतने आकुल हैं, जितनी पिपासाने आप सबको जलके लिए व्याकुल बना दिया था।'

'सानुज श्रीरघुनाथ वानर-राजधानी किष्किन्धाके समीप ऋष्यमूकपर हैं ; किन्तु दशग्रीवने उनकी भार्या भगवती भूमिजाका अपहरण कर लिया है।' जाम्बवन्तजीने कहा—'प्रभुके आदेशसे हम सब उन श्रीमैथिलीका अन्वेषण करने निकले हैं। यदि आपको कुछ पता हो—आप हमारी कोई सहायता कर सकती हों तो अनुग्रह करें।'

तपस्विनी स्वयंप्रभाने दो क्षण नेत्र बन्द किये। उन्होंने फिर कहा—'मैं आप सबको श्रीजनकनन्दिनीका पता नहीं बतला सकती। वे कहीं ऐसे स्थानपर हैं कि मायावी राक्षसकी मायाने उसे आवृत कर रखा है। ध्यानके द्वारा उसका प्रत्यक्ष नहीं होता है ; किन्तु आप सब नेत्र बन्द करलें। मैं आप सबको इस भूगर्भस्थ स्थानसे वहाँ पहुँचा देती हूँ, जहाँ पहुँचकर श्रीजानकीका पता आपको प्राप्त होनेकी सम्भावना है। आप सब निराश मत हों।'

हम सबने नेत्र बन्द कर लिये। कुछ देर प्रतीक्षा करते रहे। किसी चपल कपिने पहिले नेत्र खोले और चिल्लाया—'हम यहाँ कहाँ आगये ?'

हम सबने उसकी पुकारपर नेत्र खोले। हमको किसी प्रकार अपने स्थानान्तरणका आभास नहीं लगा था; किन्तु हम जहाँ थे वहाँ सम्मुख अनन्त समुद्र तरङ्गायमान था और आस-पास पर्वत-श्रेणियाँ थीं। हरित, पुष्पित तरुओंसे ढकी पर्वत-श्रेणियाँ दूर तक फैली हुई थीं।

यह तो ऋष्यमूक लौटनेपर पता लगा कि तपस्विनी स्वयंप्रभा वहाँसे ऋष्यमूक पधारी थीं ! प्रभुके श्रीचरणोंका दर्शन करके परम कृतार्थताका अनुभव किया उन्होंने। उनका स्वभाव—उनका जीवन साधनामय हो चुका था। श्रीरघुनाथके आदेशसे वे वैकुण्ठ पधारीं।

———

१७—सम्पातीसे साक्षात्

हम सबने समुद्रके उस तटीय प्रदेशको भली प्रकार ढूँढ़ा। सदाकी भाँति सायंकाल एकत्र हुए। जैसे ही चन्द्रोदय हुआ, युवराज अङ्गदने शशिकी ओर देखा। जाम्बवानसे बोले—'आप इस चन्द्रको देखकर कह सकते हैं कि हमें किष्किन्धासे निकले कितने दिन हो गये ?'

'स्पष्ट है कि एक मास पूर्ण होनेमें चार-पाँच दिन ही शेष रह गये हैं।' जाम्बवानने तिथिका अनुमान ठीक ही लगाया था। हम अब तक अपने भ्रमणमें इतने व्यस्त रहे थे—दिनमें भागते-दौड़ते इतने श्रान्त हो जाते थे कि रात्रिमें कहीं एकत्र बैठते ही सो जाते थे। प्रातः अरुणोदयसे पूर्व सब अन्वेषण-यात्रापर निकल पड़ते थे। इसलिए हमारी यात्राको कितने दिन हो गये, इधर किसीका कभी ध्यान ही नहीं गया था।

आज स्वयंप्रभाके भूगर्भस्थ आश्रमके अमृतफलोंका आहार करके श्रान्ति सर्वथा दूर हो गयी थी। समुद्रतट तक उन तपस्विनीने हमें अपनी शक्तिसे पहुँचा दिया था। शरीर स्वस्थ थे, श्रान्ति नहीं थी। अन्वेषणके लिए अब आगे विस्तृत वन-पर्वत नहीं थे। अब तो सम्मुख तरङ्गायमान अपार उदधि था। इसलिए आज हमारे युवराजका ध्यान समयकी ओर गया और उसका जो उत्तर जाम्बवानने दिया—सब चौंक गये।

रात्रिमें तो कुछ होना नहीं था। वैसे मैं भी रात्रिमें चिन्तित ही रहा। प्रातःकाल उठते ही अङ्गदने जाम्बवन्तसे कहा—'आप मुझे आहार-त्याग करके प्राण-त्यागकी अनुमति दें। सुग्रीवने मुझे तभी मार दिया होता, जब मेरे पिता परलोक पधारे थे। लेकिन दयासिन्धु श्रीरघुनाथने मेरी रक्षा करली। मैं सुग्रीवकी सन्ततिको राज्य मिले, इसमें बाधक बन गया हूँ। अब उन्हें मेरे वधका निमित्त मिल गया तो दया दिखलावेंगे ? केवल एक महीनेकी अवधि मिली थी हमें और उसमें चार-पाँच दिन शेष हैं। अब तक भी भगवती भूमिजाका कोई समाचार मिला नहीं है। इन थोड़े-से दिनोंमें अब क्या आशा हो सकती है। सुग्रीवके हाथों मरनेसे यहाँ अज्ञात स्वयं देह-त्याग उत्तम है। मैंने रात्रिभर विचार करके यह निर्णय किया है।'

'बात तुम्हारी ठीक है।' जाम्बवन्तने बहुत गम्भीर होकर कहा—'किष्किन्धा लौटकर जीवनकी आशा नहीं की जा सकती। अब जिनको लौटना हो वे अपने-अपने स्थान लौट तथा जहाँ भी उन्हें अपने तथा अपने परिवारकी सुरक्षा दीखे, वहाँ चले जायँ। मैं भी तुम्हारे साथ ही यहाँ अनशन करूँगा।'

'मुझे भी लौटना नहीं है।' मैंने एक क्षणमें निश्चय कर लिया—'आप और युवराज जो करेंगे, हनुमान उसका अनुसरण करेगा !'

मैंने जब यह कहा, हृदय कह रहा था कि 'यह कुछ होना नहीं है। श्रीरघुनाथ सर्वसमर्थ हैं। वे सर्वज्ञ अपने आश्रितोंकी अवस्थासे अनभिज्ञ हो नहीं सकते। वे अवश्य कोई न कोई मार्ग प्रशस्त करेंगे।'

'पवनकुमार ! मृत्यु तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकती।' जाम्बवानने कहा—'मैं जानता हूँ कि मैं स्वयं कल्पजीवी हूँ। हममें अनेक ऐसे हैं कि अनाहार भी करें तो उनका शरीरपात होनेमें युग व्यतीत होंगे ; किन्तु हम अपने युवराजको एकाकी नहीं छोड़ सकते। हम बिना श्रीमैथिलीका पता लगाये लौट भी नहीं सकते। हमारी शक्ति, हमारी बुद्धि अब असफल हो गयी। अतः जो युवराजका निश्चय, वही हमारा भी ; किन्तु जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके परम नियन्ता हैं, हम उनके सेवक हैं। वे समर्थ दयाधाम क्या करेंगे, कौन कह सकता है।'

'हम सब उस भूगर्भस्थ गुहोंमें ही क्यों न लौट चलें ! वहाँ निर्मल जलसे भरा सरोवर है। अमृतोपम फलोंसे लदे वृक्ष हैं। सब सुख-सुविधा तो वहाँ है। हम सब वहाँ साथ रहेंगे।' एक वानरने यह सुझाव रखा।

'तुम वहाँ लौट सकते हो। तुम्हारे साथ जो जाना चाहें, जा सकते हैं।' मैंने सावधान किया—'किन्तु हमने वह स्थान ढूँढ़ लिया था तो वानरेन्द्र उसे पा लेनेमें असमर्थ रहेंगे ? श्रीरामके बाणोंसे त्रिलोकीमें कोई लक्ष्य अभेद्य नहीं है। यह क्षणिक आवेश है। सामान्य वानर-ऋक्ष अपने स्त्री-बच्चोंसे पृथक् नहीं रह सकते। यह आप सब मत भूलें कि श्रीराम सामान्य मनुष्य नहीं हैं। वे परमपुरुष हैं और श्रीलक्ष्मण साक्षात् शेष हैं। ये दोनों भाई त्रिभुव-रक्षा समर्थ हैं। हमारा तो यह परम सौभाग्य है कि हम उनकी लीलाके निमित्त बने हैं।'

'मैं तब तक दलनायक था, जब तक अन्वेषण चल रहा था।' जाम्बवन्तने सबको सम्बोधित किया—'अब आप सब स्वतन्त्र हैं। जिनको जहाँ सुरक्षा दीखती हो, चले जायँ। मैंने और पवनकुमारने तो युवराजके साथ मरण पर्यन्त अनाहार-व्रत लेकर बैठनेका निर्णय किया है।'

'हम भी यही करेंगे। हम भी अनशन करके देहत्याग करेंगे।' उस भूगर्भमें जाने और रहनेकी बात व्यर्थ प्रतीत हो चुकी थी सबको, अतः सभीने निर्णय कर लिया। सबने यहाँ-वहाँसे कुश उखाड़े और पूर्वाग्र कुशास्तरण करके सब आमरण-अनशनव्रत लेकर बैठ गये।

जब जीवकी शक्ति समाप्त हो जाती है, प्राणीका पौरुष एवं साधना श्रान्त होकर शिथिल हो जाती है, जब जगदात्माके कार्यमें—शान्तिकी शोधमें लगा साधक निराश होकर गिर पड़ता है—जगदीश्वरकी कृपाके अवतरणका यही पुण्यकाल होता है। कृपासिन्धुके अभयकर सक्रिय हो उठते हैं। निविड़ अन्धकार नैराश्यके अन्धकारमें ही नित्य चिन्मय ज्योति-रश्मिका आविर्भाव होता है।

हमारी संख्या अल्प नहीं थी। शत-सहस्र वानर-ऋक्ष थे हमारे साथ। बड़ा कोलाहल हुआ था अन्तिम क्षण—'हम भी यहीं देहत्याग करेंगे!' हम भी आमरण अनशन करेंगे!' इस कोलाहलसे आर्कषित होकर एक पर्वतकी गुफासे महाकाय गृद्ध निकला। बड़ा भयानक था उसका आकार। आश्चर्य था कि हम सब उस गुफाको देख नहीं सके थे; जिससे वह निकला था।

'अहा! आज विधाताने मेरी सुधि ली। कितना दीर्घकाल—कितने दिन बीत गये मुझे निराहार रहते!' वह महासत्व जैसे बड़े प्रसन्न स्वरमें बोल रहा हो; किन्तु उसका स्वर भयङ्कर गर्जनाके समान था—'आज भाग्य अनुकूल हुआ है। बहुत वानर-ऋक्ष हैं ये सब। अब जैसे-जैसे ये उपवास करके मरते जायँगे, मैं इनका भक्षण करता रहूँगा। ये थोड़े उपवास-शिथिल हो जायँ तो भी मैं इनका भक्षण प्रारम्भ कर सकता हूँ। मेरे लिए बहुत दिनों तक भोजनकी व्यवस्था हो गयी।'

वानर उस महाकाय गीधको देखकर भयभीत हो गये। वह अपने दृढ़ पैरोंसे चलता समीप आ रहा था। सम्भवतः अपने आहारको कुछ

निकटसे देख लेनेको उत्सुक था। सामान्य वानरोंमें-से बहुतसे गीधको अपनी ओर आते देखकर भयसे भागने लगे।

'हाय रे भाग्य ! न हमसे श्रीरामका कार्य बना और न वानरेन्द्र सुग्रीवकी सेवा हुई। अब हमारा शरीर गीध नोंच-नोंचकर खायगा !' अङ्गद बहुत दुःखी थे। वे अत्यन्त व्यथित स्वरमें स्वतः बोल रहे थे—'गीध होकर भी धन्य था जटायु। उस महाभागने राम-कार्यमें प्राण-त्याग करके योगि-दुर्लभ गति प्राप्त की। श्रीरामने स्वकरसे अन्त्येष्टिकी उसकी और हमारे भाग्यमें यह गीध द्वारा नोचा जाना............।'

'तुम सब कौन हो ? मेरे भाई जटायुको तुम कैसे जानते हो ?' अङ्गदकी बात पूरी होनेसे पहिले ही वह गीध उच्च स्वरमें बोलने लगा—'डरो मत। मुझे मेरे भाई जटायुकी पूरी बात सुनाओ।'

अङ्गद उस गीधके समीप गये। ऐसे गये जैसे डरते-हिचकते जा रहे हों। उन्होंने दशग्रीव द्वारा श्रीमैथिलीका हरण सुनाकर बतलाया कि किस प्रकार श्रीजनक-नन्दिनीकी रक्षाके प्रयत्नमें जटायु रावणके द्वारा आहत किये गये। कैसे उन्होंने श्रीरामके अङ्कमें ही देह-त्याग किया और श्रीरघुनाथने उनको पिता मानकर उनकी अन्त्येष्टि की।

'मेरा नाम सम्पाती है। जटायु मेरा सगा भाई था।' उस गीधने बतलाया कि वे दोनों पक्षिराज गरुड़की गृद्धीसे उत्पन्न पुत्र हैं। सूर्यके समीप पहुँचनेके प्रयत्नमें सम्पातीके पक्ष भस्म हो गये थे। जटायु मार्गसे ही लौट आये थे। भूमिपर जब सम्पाती गिरे, महामुनि चन्द्रमाने थोड़ी सुश्रूषा कर दी—'जब सीताका पता उनकी शोधमें निकले वानरोंको बता दोगे, तुम्हारे पक्ष उग आवेंगे।'

'आप मुझे उठाकर सागर तट तक पहुँचा दें। मैं अपने भाईको जलाञ्जलि देना चाहता हूँ। यह कार्य सम्पन्न करके मैं आप सबको श्रीजनक-नन्दिनीका पता बतला दूँगा।' सम्पातीने यह कहा।

मैंने उस पक्षहीन विशाल पक्षी को उठाया। मुझे उसपर दया आयी। वह बिना पक्षके पर्वतसे समुद्र तटतक उतरनेमें असमर्थ था। वहाँ भी मुझे उसे उठाये रहना पड़ा; क्योंकि नीचे रख देने पर सागरकी लहर उसे

दूर बेलापर फेंक दे सकती थी। जब वह अपने परमपावन भाईको चोंचसे जलाञ्जलि दे चुका, मैं उसे उठाकर फिर वहाँ ले आया, जहाँ सब कपिगण हम दोनोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

सम्पातीने एक समाचार दिया—'मेरा पुत्र सुपार्श्व आहार देकर मेरा पोषण करता था। एक दिन वह बिना कुछ लिए आया तो मैंने उससे इसका कारण पूछा।'

सुपार्श्वने कहा—'मैं महेन्द्र पर्वतके ऊपर आहारकी टोहमें उड़ रहा था। तभी एक कृष्णवर्ण भयानक पुरुष एक परम सुन्दरी दिव्यनारीका अपहरण करके गगन पथसे दक्षिण भागता मुझे दीखा। वह नारी क्रन्दन कर रही थी। मैंने उस पुरुषको मार देना चाहा; किन्तु वह गिड़गिड़ाने लगा। उसके अनुनय करनेपर मैंने उसे छोड़ दिया। पीछे पता लगा कि वह लङ्काका अधिपति रावण था। एक मुनिने बतलाया कि वह अयोध्या नरेश महाराज दशरथके बड़े राजकुमार श्रीरामकी भार्या जनक-नन्दिनी सीताको अपहृत करके ले गया।'

'पुत्रके कार्यसे मैं बहुत खिन्न हुआ; मैंने उसकी बहुत भर्त्सना की तबसे वह लज्जित होकर चला गया। मेरे समीप फिर नहीं आया।' सम्पातीने कहा—'लेकिन आप सब चिन्ता न करें। मैं देख रहा हूँ कि यहाँसे सौ योजन दूर समुद्रके मध्य त्रिकूटके मध्य शिखरपर जो स्वर्णपुरी लङ्का है, उसके एक उपवनमें सीता राक्षसियोंसे घिरी एक वृक्षके नीचे बैठी हैं। लक्षणोंसे वे बहुत व्याकुल जान पड़ती हैं। आपमें-से जो सौ योजन समुद्र कूद सकता हो वह लङ्का पहुँचकर सीताका दर्शन कर सकता है।'

हमने देखा कि यह कहते-कहते उस गीधके पक्षोंके जले स्थानपर कोमल पङ्ख प्रकट होने लगे। शीघ्र ही उसके वे पङ्ख बढ़ गये। उसका पूरा शरीर जो पङ्खोंके भस्म हो जानेसे कुरूप, काला और भयानक हो गया था, पङ्खोंसे ढक गया। अब वह एक स्वस्थ भारी गीध दीखने लगा। वह पहिलेसे बहुत बड़ा था और अब तो उसका आकार और बड़ा लगने लगा था।

सम्पातीने अपने पङ्ख फैलाये। दो-चार बार उन्हें हिलाया और आकाशमें उड़ गया। हम सब उसका वर्णन तन्मय होकर सुन रहे थे।

उसके जब पङ्ख उगने लगे, सबको आश्चर्य हुआ। सब चकित उसे देखते रहे। यहाँ तक कि जब वह गीध आकाशमें उड़ा, हम उसे देख रहे थे। वह बहुत ऊपर जाकर गगनमें अदृश्य हो गया तब भी हम ऊपर देखते रहे।

'अब वह पुनः यहाँ उतरेगा, इसकी कोई सम्भावना नहीं जान पड़ती।' मैंने ही कुछ देरमें ऊपर देखना बन्द करके सबसे कहा—'सम्भवतः वह अपने पुत्रको ढूँढने चला गया। अब वह पुत्रके साथ रहेगा। गीध समूहोंमें रहनेके अभ्यासी होते हैं।'

'तुम ठीक कहते हो !' जाम्बवन्तने भी गगनसे दृष्टि हटायी—'अब उसकी प्रतीक्षाका कुछ अर्थ नहीं। हमको अपने कर्त्तव्यका निर्णय करना चाहिए।'

सब सावधान होकर एकत्र हो गये।

—:×:—

१८—समुद्र-लङ्घनकी समस्या

'भगवती भूमि-तनया लङ्कामें हैं।' यह सुनकर सम्पातीके गगनमें अदृश्य होनेके पश्चात वानर हर्षित होकर उछलने-कूदने लगे।

'हमारा कर्त्तव्य सम्पातीकी बातें सुनकर समाप्त नहीं हो जाता।' जाम्बवन्तने सावधान किया—'वानरेन्द्र सुग्रीव और श्रीरघुनाथ भी हमसे पूछेंगे कि हमने श्रीवैदेही को देखा है ? वे किस स्थितिमें हैं ? क्या करती हैं ? क्या सोचती हैं ?'

'लङ्का गये बिना उनका दर्शन कैसे सम्भव है ? लङ्का तो इस समुद्रमें सौ योजन दूर है।' वानरोंकी उछल-कूद समाप्त होगयी। वे हतोत्साह बैठ गये।

'हममें-से कोई समुद्र-पार जा सकता है ?' युवराज अङ्गदने पूछा।

वानरश्रेष्ठ गज बोला—'मैं दस योजन लम्बी छलाँग लगा सकता हूँ; किन्तु लङ्का तो सौ योजन दूर है।'

'मैं बीस योजन उछल सकता हूँ।' गवाक्षने कहा।

'मेरे छलांगकी अधिकतम दूरी तीस योजन है।' शरभने अपनी शक्ति सूचित की।

ऋषभ—'चालीस योजन तककी बात होती तो मैं कूद जा सकता था।'

गन्धमादन—'मैं पचास योजन कूद लेता हूँ।'

'साठ योजन कूदना मेरे लिए सरल है।' मैन्द बोला।

द्विविद—'सत्तर योजन कूदनेमें मुझे कठिनाई नहीं होती।'

सुषेण—'इन सबसे अधिक अस्सी योजन तो मैं उछल लेता हूँ; किन्तु इससे तो कोई काम नहीं बनता।'

'जब भगवान वामनने विराट रूप धारण किया था तो मैंने गगनमें दौड़ते हुए उनकी सात प्रदक्षिणा की थीं; किन्तु तब मैं युवा था। अब वृद्ध हो गया। शरीरमें वह शक्ति रही नहीं।' ऋक्षराज जाम्बवन्तने शिथिल स्वरमें कहा—'इतनेपर भी मैं छलाँग लूँ तो नब्बे योजन निश्चित जा सकता हूँ।'

'जहाँ तक कूद जानेकी बात है, मैं यह सौ योजन समुद्र सरलता पूर्वक कूद जा सकता हूँ।' युवराज अङ्गद बोले—'किन्तु लङ्का कोई सुनसान स्थान नहीं है कि केवल वहाँ पहुँचनेसे श्रीमैथिलीसे मिलकर लौट आना सम्भव हो। दारुण राक्षसेश्वर रावणकी वह राजधानी है। वहाँ उसके इन्द्रजीत जैसे महारथी पुत्र हैं। राक्षस-राजधानी अरक्षित नहीं होगी। वहाँ जानेपर राक्षसोंसे संघर्ष सम्भव है। अकेला दशग्रीव पिताके समय हमारे यहाँ आया था तो पिताने उसे कक्षमें दबा रखा था। पिताके द्वारा हुए अपमानको वह भूला नहीं होगा। मैं कह नहीं सकता कि मैं लङ्का जाकर लौट सकूँगा अथवा नहीं।'

'तात! तुम लौटनेमें समर्थ हो तो भी हम समस्त वानरकुलके युवराजको शत्रुओंके मध्य एकाकी भेजनेकी भूल कैसे कर सकते हैं?' जाम्बवन्तने स्पष्ट कर दिया कि अङ्गद जाना भी चाहें तो उन्हें दलनायक अनुमति नहीं देंगे।

'तब तो लङ्का जानेकी बात व्यर्थ है। यह कार्य किसी प्रकार सम्भव नहीं दीखता।' अङ्गद खिन्न स्वरमें बोले—ऐसी अवस्थामें मेरा प्रायोपवेशका निश्चय ही उचित था। यहाँ उपोषित रहकर प्राणत्याग ही श्रेयस्कर है।'

'यह निश्चय तो तब आवश्यक होता जब सचमुच हममें कोई लङ्का जानेमें समर्थ न होता। हममें एक तो इस समस्त महोदधिको पार करनेमें समर्थ है।' जाम्बवन्तकी इस वाणीसे केवल अङ्गद ही नहीं, सभी चौंके। स्वयं मैं भी चौंका; किन्तु तभी उन ऋक्षराजने मेरी ओर मुख किया— 'पवनपुत्र! तुम मौन क्यों बैठे हो? यात्रा प्रारम्भ करते समय सुग्रीवने तुमसे कुछ कहा था? तुम अन्तरिक्ष, आकाश, स्वर्ग, जल और पातालमें जानेमें भी समर्थ हो। तुम्हारा वेग अकल्पित है। तुम्हारी गति सर्वत्र अनवरुद्ध है। यह तो केवल सौ योजन उछल जानेकी बात है और लङ्काके राक्षस, दशग्रीव तथा मेघनाद भी तुम्हारे लिए किसी गणनामें हैं? महावीर! सम्पूर्ण असुरकुल भी मिलकर शक्तिमें तुम्हारी समता नहीं कर सकते। त्रिभुवनमें ऐसा भी कोई कार्य सम्भव है जो तुम करना चाहो और शक्य न बने? तुम्हारा तो अवतार ही श्रीरामका कार्य-सम्पादन करनेके लिए हुआ है। एकादशम-रुद्र! उठो और अपने इस अवतारको सार्थक करो! तुम्हीं रामका कार्य करनेमें समर्थ हो!'

सचमुच मैं विस्मृत होगया था कि सुग्रीवने कुछ कहा था। मुझे ऋषियोंके शापके कारण विस्मृत हो गया था कि समुद्र-लङ्घनकी मुझमें शक्ति है। जाम्बवन्तकी वाणीने मुझे अपनी शक्ति, वेग, पौरुषका स्मरण कराया। यह भी स्मरण हुआ कि प्रस्थान करते समय प्रभुने मुझे आशीर्वाद दिया है। उन सर्वसमर्थने कहा है कि मैं उनका यह कार्य कर सकूँगा।

'हनुमान! तू तुच्छ कपि है; किन्तु वे सर्वेश्वरेश्वर एक तृणको भी संकेत करदें तो वह त्रिभुवनजयी हो जाय और तू उनके वचनोंको—उनके आश्वासनको ही विस्मृत हो गया?' मुझे यह सोचकर लज्जा आयी। ग्लानि हुई—'उन परात्पर-पुरुषने कहा है कि तू यह कार्य कर सकेगा, फिर तू मौन क्यों बैठा है? तुझे क्या हिचक है? सर्वेश्वरेश्वरका आश्वासन तेरे साथ है, दशग्रीव सदल कुछ होता है तेरे सम्मुख?'

मैं आवेशमें आकर उठ खड़ा हुआ। जब मैं आवेशमें आता हूँ, मेरा अपना आकार प्रकट हो जाता है। कोई भी आवेशमें आनेपर अपने सहज

आकार और स्वभावको छिपाये नहीं रखपाता। मैंने अभ्यास कर लिया है कि सदा संकुचित, लघु आकारमें बना रहूँ। निद्रामें भी मेरा यह संकल्प सक्रिय रहता है ; किन्तु आवेश आनेपर बना नहीं रह सकता। अयोध्यामें वह आकार प्रकट करनेकी धृष्टता मैं कभी नहीं कर सकता। लङ्कामें क्षणभरको वह प्रकट हुआ, जब जगदम्बा जानकीने उसे देखना चाहा। अन्यथा तो वह युद्धभूमिमें ही प्रकट रहा था।

सतयुगमें उत्पन्न हुए साक्षात् सृष्टिकर्ताके पुत्र महापर्वताकार जाम्ववन्त भी कठिनाईसे कर उठाकर मेरे कन्धोंका स्पर्श करनेमें सफल हो सकते थे। केवल दशग्रीवका अनुज कुम्भकर्ण ऊँचाईमें मेरे बरावर निकलता—निश्चय केवल ऊँचाईमें। मैं आवेशमें होता हूँ तब अपना रुद्र रूप मेरे ध्यानमें होता है और रुद्र प्रलयङ्कर हैं। सृष्टिमें किसीके पास उनके प्रतिकारकी शक्ति सम्भव नहीं।

कपियोंमें भी किसीने मेरा वह स्वरूप देखा नहीं था। वे मेरे घुटनों तक भी नहीं थे। सब आतङ्कित होरहे थे। मुख ऊपर उठाये मेरी ओर देख रहे थे। लङ्कासे लौटनेपर अङ्गदने मुझसे कहा था—'पवनकुमार ! मुझसे अनजानमें तुम्हारी बहुत अवज्ञा हुई होगी, मुझे क्षमा करना ! मैं उसी क्षण समझ सका कि सुग्रीवको मारनेके लिए किसीको भेजनेमें पिता क्यों तुम्हारा स्मरण करके स्तम्भित हो जाते थे। तुम्हारा वह तेजोमय दूसरे सुमेरुके सदृश उच्च, अत्यन्त भयङ्कर विकराल रूप ! मैं जो सदासे तुम्हें समान समझनेकी अज्ञता कर रहा था, सख्यके कारण अवज्ञा भी कर लेता था, क्षमा करना मुझे ! मैं उस समय आतङ्कके कारण कुछ कहनेमें समर्थ नहीं था। तुम जब सामान्य आकार धारण करके समुद्र-कूदे, मैं तब भी सोचता था कि जाम्बवन्तने चाहे जो कहा हो, दशग्रीवके कुलकी अब कुशल नहीं है। तुम केवल लङ्का-दहन करके लौट आये, यह भी रावणका सौभाग्य ही है।'

मैंने तब अङ्गदको आलिङ्गनमें लेकर आश्वस्त किया था ; किन्तु जाम्बवन्तके वचन सुनकर मैं उस समय सागर तटपर तो आवेशमें आगया था। मेरा रुद्र रूप जाग उठा था। मैंने जाम्बवन्तसे गर्जना करते पूछा—

'ऋक्षराज ! मैं पृथ्वीसे लेकर पाताल-पर्यन्त राक्षस, दानव, दैत्य सब असुरोंको अभी मार देता हूँ। पुलस्त्यका उपद्रवी कुल और उसके समर्थक

दनु एवं दितिकी सन्तति परम्परा अब सदाके लिए समाप्त हो जाय ! इनके समर्थनका जो भी साहस करेगा, उसे भी मैं मार दूँगा । मैं सब ग्रह-नक्षत्रोंको कूद जा सकता हूँ । समुद्र पीकर शुष्क कर दे सकता हूँ । पृथ्वीको विदीर्ण कर दे सकता हूँ । पर्वतोंको चूर्ण-चूर्ण कर दे सकता हूँ ।'

'नहीं ! नहीं !' जाम्बवन्त आतुरतापूर्वक बोले—'दैत्य तो भगवान वामनके आश्रित हैं । दैत्येन्द्र वलिको वामनकी सुरक्षा प्राप्त है और दानवेन्द्र मय सदाशिवके प्रिय सेवक हैं । दैत्य-दानव वर्गपर इस समय आक्रोश उचित नहीं है । निश्चय आप सब करनेमें समर्थ हो । लेकिन ऐसा कुछ मत करो कि लोकोंमें प्रलय उपस्थित हो ।'

'तब मैं दशग्रीवको उसके सब सहचरोंके साथ मार देता हूँ । लङ्काको उखाड़कर समुद्रमें डुबाता आऊँ अथवा उसे उठा लाऊँ भगवती भूमिजा सहित ? प्रभु ऋष्यमूकपर ही लङ्कामें प्रवेश करके श्रीमैथिली से मिलेंगे । भगवती भूमिजाको ले आऊँ लङ्काको समुद्रमें डुबाकर ? दशग्रीवके कण्ठमें रज्जु बांधकर उसे पकड़ लाऊँ और उसे श्रीरघुनाथके पादपद्मोंमें पटक दूँ ? अथवा केवल श्रीजानकीको ले आऊँ ?'

'पवनपुत्र ! यदि आप मुझसे पूछते हैं और मुझपर आपकी प्रीति है तो प्रथम अपने इस आवेशका प्रशमन करें !' जाम्बवन्तने विनयपूर्वक कहा—'प्रभु स्वयं हम सबको साथ लेकर लङ्का पहुँचें और दशग्रीवका दलन करें, इसमें उनका लोकपावन सुयश विस्तीर्ण होगा । हम सब उनके सेवक हैं । हमारा कर्तव्य उनके सुयश-विस्तारका पथ प्रशस्त करना है । स्वयं पौरुष करके उनके यशोविस्तारका मार्ग अवरुद्ध कर देना हमारे लिए उचित नहीं है ।'

'आप नीतिज्ञ हैं । आपके वचन आदरके योग्य हैं !' मेरा क्रोध शान्त हो गया । जाम्बवन्तने अथवा अन्य किसीने भी सन्देह नहीं किया कि मैं जो कह रहा हूँ—करनेमें समर्थ हूँ । मैंने सहज स्वरमें पूछा—'तात ! आप आदेश करो कि मुझे लङ्का जाकर क्या करना चाहिए ?'

'लङ्का जाकर श्रीमैथिलीके दर्शन करना है । उनकी क्या अवस्था है, यह देखना है और लौटकर प्रभुसे यह सब निवेदन कर देना है । इसके

अनन्तर स्वयं प्रभु लङ्का पधारेंगे और दशग्रीवका दर्प दलित करके भगवती भूमिजाका उद्धार करेंगे । यही उनके शौर्यके अनुरूप होगा ।' जाम्बवन्तने कहा—'आत्मरक्षाका अधिकार सबको होता है, अतः अपनेपर आघात करने वालोंसे आप निबट लेना । आप जैसे नीति-निपुण, परम बुद्धिमानसे यह कहना आवश्यक नहीं है कि प्रभुको लङ्कापर आक्रमण करना है, अतः शत्रुके दुर्गके सम्बन्धकी तथा शत्रुकी शक्तिका भी यदि अनुमान किया जा सकता हो तो दूतको इसे अपना कर्तव्य मानना चाहिए ।'

'केवल माता श्रीमैथिलीका दर्शन करना है और शत्रुके दुर्गको—उसके रहस्योंको जाननेके साथ दशग्रीवकी शक्तिका अनुमान कर लेना है । उसे ध्वस्त नहीं करना है ।' यह जाम्बवन्तके आदेशका मर्म समझनेके साथ मेरा आवेश समाप्त होगया । लेकिन मैंने अपने आकारको संकुचित करना आवश्यक नहीं माना । जितना बड़ा आकार होगा—छलाँग उतनी बड़ी होगी । मुझे लङ्का पहुँचनेकी शीघ्रता थी ।

—×—

१८—समुद्र-लङ्घन

सौ योजन लम्बी छलाँग लगानेके लिए एक सुदृढ़ आधार चाहिए था । कठिनाई यह थी मैं जिस शिखरपर चढ़कर उछलना चाहता था, वह मेरे पद रखते ही धसकने—भूमिमें प्रवेश करने लगता था । अन्ततः मैंने अपने पर्वताकार शरीरका भार कुछ सङ्कल्प पूर्वक कम किया । इतनेपर भी जब मैं कूदकर महेन्द्राचलके शिखरपर पहुँचा, वह पृथ्वीमें प्रवेश करने लगा । उसका पूरा विस्तार कम्पित हो उठा । वृक्षोंके साथ उसके शिखर टूट-टूटकर गिरने लगे । मैंने समझ लिया कि यह पर्वत थोड़ी देर भी मेरा भार सहन नहीं कर सकेगा । अतः पूरा पर्वत पृथ्वीके भीतर चला जाय, इससे पूर्व ही मैं गगनमें कूद गया ।

मैं जब कूदा, वेगके कारण बहुतसे वृक्ष मूल सहित उखड़कर मेरे पीछे दूर तक जाकर समुद्रमें गिरे । बहुत-से तरुओंकी शाखाएँ टूटकर उड़ती चली गयीं । कुछ शिलाएँ भी उखड़कर उड़ीं । लौटनेपर कपियोंने

दिखलाया था कि कितनी दूर तक सागर उखड़े वृक्षों, टूटी डालियों तथा उनके पत्र, पुष्प एवं फलोंसे आच्छादित हो उठा था। पर्वतपर रहने वाले बहुत-से प्राणी—पशु ही नहीं, पक्षी भी उस धक्केसे सागर-जलमें जा गिरे थे। उनका एक बड़ा भाग मारा गया। थोड़े ही तैरकर या उड़कर बच सके। समुद्रकी तरङ्गोंने तटपर उन वृक्षों, शाखाओं तथा पुष्प-फलोंका अम्बार एकत्र कर दिया है, यह मैंने लौटकर देखा था।

उछलते समय उखड़े-टूटे वृक्षों एवं शाखाओंके पुष्पों, पत्रों, फलोंकी भी मेरे ऊपर वर्षा हो गयी थी। मानो इस प्रस्थानके समय प्रकृतिने मेरा स्वागत किया। गगनमें पहुँचते ही मैंने सिर पीछे करके उच्च स्वरमें सागर-तटके पर्वत शिखरपर खड़े उत्सुक होकर अपनी ही ओर देखते जाम्बवान, अङ्गद प्रभृति वानर-ऋक्षोंसे कहा—'यह समुद्र—इसकी यह सौ योजन दूरी अत्यन्त तुच्छ है। मैं शीघ्र लौटूँगा। आप सब मेरे लौटने तक यहीं मेरी प्रतीक्षा करें।'

मैंने मुख लक्ष्यकी ओर दक्षिण किया। दोनों भुजाएँ ऊपर उठा दीं। इससे गगन-गतिमें सुविधा होती है। अपनी समझसे मैं कुछ पल गया होऊँगा—अवश्य कुछ योजन निकल गया होऊँगा कि सागरकी ओरसे पुकार आयी—'स्वर्णाचलोपम, बालसूर्य समप्रभ ! सुदीर्घभुज पवनपुत्र !'

मैंने इस सम्बोधनसे आकृष्ट होकर आगे उदधिकी ओर देखा। सागरके जलसे पर्याप्त ऊपर स्वर्ण एवं मणिमय शिखरोंसे युक्त एक पर्वत उठ आया है। उसपर कोई तरु, कोई लता, कोई तृण नहीं है। समस्त पर्वत आर्द्र है,जैसे किसी उत्ताल तरङ्गने उसे स्नान कराया हो। सूर्यकी किरणोंसे वह समस्त शिखर आलोकमय बनगया था। मैंने पहिचान लिया कि उसके शिखरपर पर्वतके अधिदेवता खड़े हैं। हम उपदेवताओंको किसी देवताको पहिचानने में भ्रम नहीं होता। मनुष्याकृतिमें होनेपर भी उनका मणि-आभरणोंसे भूषित देह पार्थिव नहीं था। लगता था कि प्रकाशके घनीभावसे वह आकार निर्मित हो। वे ही मुझे पुकार रहे थे।

'महोदधिके अधिदेवता कहते हैं कि महाराज सगरके पुत्रोंने उनका अभिवर्धन करके उन्हें उपकृत किया है। इसीसे उनका नाम सागर है। महाराज सगरके वंशमें श्रीरामने अवतार लिया है, जिनका काम करने तुम जारहे हो।' आगे शिखरपर खड़े वे देवता कह रहे थे—'सागरका कहना उचित है कि तुम्हारे पिता पवनने यहाँ मुझे पहुँचाया न होता तो शक्रका

वज्र दूसरे पर्वतोंके समान मेरे पक्ष भी छिन्न कर देता। सागरने मुझे शरण दी, मैं अपने आश्रयदाताके आदेशसे ऊपर उठा हूँ और स्वयं भी तुम्हारे पितासे उपकृत हूँ। तैरते तथा उड़तेके लिए, मार्गमें श्रान्तको एक क्षणका विश्राम अत्यन्त महत्वका होता है। अतः सौम्य ! तुम्हारा सत्कार करके, तुम्हें विश्राम देकर मैं पवनदेवका पूजन करना चाहता हूँ। तुम मुझ मैनाकके शिखरपर उतरो ! जब तक तुम मेरे ऊपर रहोगे, यह शिखर निष्कम्प स्थिर रहेगा !'

'सागर श्रीरामके पूर्वज सगरपुत्रों द्वारा अभिवर्धित, उनके उपकृत हैं और उन्होंने मैनाकको प्रेरित किया है। स्वयं मैनाक मेरे पिता पवनके द्वारा सुरक्षित किये गये हैं !' मुझे लगा कि मैनाक मेरे द्वारा सम्मान पाने योग्य हैं। मुझे इनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। भगवती रमाके पिता सिन्धुकी अवज्ञा—उनके स्नेहका तिरस्कार उचित नहीं था। मैंने अपना वेग कम किया और नीचे उतरा।

'आपके स्नेह एवं अनुग्रहसे यह जन उपकृत हुआ !' नीचे आकर मैंने अपना दक्षिणकर बढ़ाकर मैनाकके उस शिखरका स्पर्श किया, जिसपर वे अपने आधिदैवत रूपसे खड़े थे। यह एक प्रकारसे उनका चरण स्पर्श होगया। मैंने विनम्र स्वरमें कहा—'आप मेरे सम्मान्य हैं। देवता होनेके कारण आप जानते हैं कि हम उपदेवताओंका शरीर भी स्थूल श्रमसे तब तक श्रान्त नहीं होता, जब तक निराशा हमारे हृदयको श्रान्त न कर दे। श्रीरामका कार्य सम्पूर्ण किये बिना मेरा अन्तःकरण शान्त नहीं होगा और चित्त शान्त न हो,शरीर विश्राम नहीं पा सकता—उपदेवका शरीर तो नहीं ही पा सकता।'

मैंने शिखरसे हाथ हटा लिया था। तत्काल मैनाक अपने देवरूपसे अदृश्य होगये। साथ ही उनका ऊपर उठा शिखर भी सागरगर्भमें ऐसे चला गया, जैसे वहाँ कभी दीखा ही नहीं हो।

'भागो मत ! तुम प्रजापति कश्यपकी अर्धाङ्गिनी नागमाता सुरसासे इस प्रकार बचकर भाग नहीं सकते !' मैं मैनाकके शिखरसे हाथ हटाकर ऊपर उठा ही था कि ऐसा लगा—सम्मुखका सम्पूर्ण गगन घोर कृष्ण-घटासे आच्छादित होगया है। देवी सुरसाका सर्पाकार शरीर दूर तक गगनमें फैला था।

'भगवति ! यह आञ्जनेय वानर हनुमान प्रणाम करता है !' मैं उन नागमाताका तिरस्कार कर नहीं सकता था।

'तुम जानते हो कि नागिनें नमस्कारसे प्रसन्न नहीं होतीं।' सुरसाने फूत्कारके साथ अट्टहास किया। जैसे सहस्र-सहस्र महासर्प ठनकने लगे हों—'मैं क्षुधातुरा हूँ ! दैवने मुझे तुम्हारे जैसा उपयुक्त आहार दिया है।'

'मुझे आपके मुखमें प्रवेश करनेमें कोई आपत्ति नहीं है।' मैंने प्रार्थना की—'शरीरका मुझे मोह नहीं। अधिक जीवित रहनेका लोभ नहीं। आप देवता हैं, आपके लिए केवल कुछ क्षण होंगे; किन्तु मेरा जन्म सार्थक हो जायगा। मैं लङ्का जाकर भगवती भूमिजाका दर्शन कर लूँ, उनका समाचार लौटकर अपने आराध्यको देकर स्वयं आकर आपके मुखमें प्रवेश करूँगा। आप इतना अनुग्रह मुझपर करें ! मेरा विश्वास करें ! मैं वचन देता हूँ।'

'तुम नागमातासे अनुग्रहकी अपेक्षा करते हो ? सुरसाने फिर अट्टहास किया—'बात विश्वास करनेकी नहीं है, बात क्षुधाकी है। तुम मेरे आहार हो। मैं क्षुधातुरा हूँ। तुम्हें इतना बोलनेका अवकाश मिला, यही बहुत हुआ। अब क्षणार्ध भी मैं तुम्हें नहीं दे सकती।'

'तब उपाय भी क्या ? आपको जैसा उचित लगे, करें।' मैं दूसरा कुछ क्या कह सकता था। शक्ति थी मुझमें ; किन्तु सुरसाका—नागमाताका, प्रजापति महर्षि कश्यपकी पत्नीका किसी प्रकार तिरस्कार करता मैं, तो मेरे आराध्य मर्यादा-पुरुषोत्तम मुझे क्षमा करते ?

'मेरे स्वामीकी इच्छा पूर्ण हो। यदि वे सर्वेश चाहते हों कि यह कपि यहाँ उनके कार्यको जाते मार्गमें अज्ञात रूपसे नागमाताका आहार बने तो ऐसा ही हो।' मैंने श्रीरघुनाथके चरणारविन्दका स्मरण करके सुरसासे कहा—'देवि ! आप अविलम्ब मुझे निगल लें !'

सुरसाने मुझे निगलनेके लिए अपना मुख खोला। उनके मुख-विवरका विस्तार एक योजनका मुझे लगा तो मैंने अपना आकार दो योजन बना लिया।

'हूँ!' सुरसाने फुङ्कार छोड़ा। उसने अपना मुख-विस्तार दो योजन कर लिया। सर्प अपने मुख-विस्तार जितनी बड़ी वस्तु सहज ही उदर तक पहुँचा लेता है; किन्तु आकार-विस्तार तो मेरी इच्छापर निर्भर था। मैं

चार योजनका होगया। अब यह क्रम बन गया कि सुरसा मेरे आकारके अनुरूप अपना मुखका विस्तार बढ़ाती गयी और मैं उस विस्तारसे द्विगुणित आकार धारण करता गया।

इस क्रममें जब सुरसाने सौ योजन अपने मुख-विवरका विस्तार किया, मैं अत्यन्त छुद्र–लगभग मूषकके समान बन गया और सुरसाके मुखमें प्रविष्ट होगया। इतने विस्तीर्ण खुले मुखमें मैं प्रविष्ट हुआ—सुरसाको मेरा स्पर्श भी ज्ञात नहीं हुआ होगा। मुख बन्द करना तो दूर, वह नागमाता जब तक कुछ समझ सके, तब तक तो मैं उसके मुखसे कूदकर बाहर आगया।

'देवि ! यह कपि अब आपके मुखसे गिरा ग्रास—आपका उच्छिष्ट है।' मैंने अञ्जलि बाँधकर प्रणाम करते हुए प्रार्थना की—'अब इसके लिए क्या आज्ञा है ?

'हनुमान ! तुम लङ्का जा रहे हो। लङ्का सुरासुरजयी दशग्रीवकी राजधानी है। श्रीरामपर देवताओंका स्नेह है।' सुरसाने अब सौम्यस्वरूप धारण करके बतलाया—'देवताओंने मुझसे कहा कि मैं तुम राम-दूतकी परीक्षा कर देखूँ। लङ्का जाकर सकुशल लौटने जितनी शक्ति तथा बुद्धि तुममें है या नहीं, यह जानना था। अब मैं जाकर सुरोंको निश्चिन्त कर सकती हूँ। तुम्हारी शक्ति और प्रतिभाकी सीमा नहीं है। तुम श्रीरामके कार्यको सम्पन्न करनेमें सहज समर्थ हो। तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो ; तुम जाओ ! सफलता तुम्हारा स्वागत करे ! तुम्हारे मार्ग-विघ्न विनष्ट हों!'

मैंने पुनः नागमाताको प्रणाम किया। वे प्रसन्न स्वर्गकी ओर पधारीं। आदरणीयोंके प्रति व्यक्त किया गया सम्मान भले सङ्कट ही प्रतीत होता हो, सदा सहायक सिद्ध होता है, इस सत्यपर मेरी आस्था दृढ़ हो गयी। मुझे सुरसाके आशीर्वादका सुफल शीघ्र प्राप्त हुआ।

अचानक लगा कि मेरी गति अवरुद्ध होगयी है। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। सम्पूर्ण शक्ति लगाकर भी अपनेको किञ्चित् भी आगे बढ़ानेमें असमर्थ पारहा था।

'कोई देवता पुनः परीक्षार्थ आ पहुँचे ?' सुरसा अभी गयी थी, अतः आशङ्का हुई ; किन्तु गगनमें कहीं कोई नहीं था। मैंने सब ओर देख लिया। कोई देवशक्ति अवरोधक नहीं जान पड़ी।

'कोई ऋषि या मुनि जलमें तप कर रहे हैं ? अथवा कोई ऐसा नारायणका, महेश्वरका या अन्य किसीका श्रीविग्रह जलमें है, जिसका गगनसे भी अतिक्रमण नहीं किया जा सकता ?' मेरी केवल गति ही रुद्ध नहीं हुई थी, लगता था कि कोई अदृश्य प्रबल शक्ति मुझे नीचे खींच रही है।

'किसीकी मन्त्र-शक्ति ? कोई अन्य आकर्षण-शक्ति ?' मैंने बहुत ध्यानसे सागरके जलमें देखा। उदधिकी उत्ताल तरंगे वहाँ नहीं थीं। जल शान्त था। इसलिए मैं समुद्र-जलके नीचे देखनेमें समर्थ होगया। वहाँ जलमें एक भयङ्कर राक्षसी थी। उसने जलमें पड़ती मेरी छाया दोनों करोंसे पकड़ रखी थी। दाँत भींचकर पूरी शक्ति लगाकर वह मेरी छायाको नीचेकी ओर खींचना चाहती थी।

मुझे बहुत क्रोध आया—'यह जलचरी जलजन्तुओंसे सन्तुष्ट नहीं होती ? गगनमें उड़ते निरीह पक्षियोंकी छाया पकड़कर इसी प्रकार उनका आखेट करती होगी।'

मैंने अपनेको रोके रखनेका प्रयत्न त्याग दिया। राक्षसी मुझे छाया पकड़कर खींच ही रही थी, स्वयं भी मैं कूद पड़ा। इससे मेरा वेग द्विगुणित होगया। मैं राक्षसीके मस्तकपर सीधा गिरा। इतने वेगसे मेरे पद उसके सिरपर गिरे कि उसका सिर पिस गया। समुद्रका जल राक्षसीके रक्तसे लाल हो उठा। अवश्य उसके शवको मांसाहारी मत्स्योंने शीघ्र समाप्त कर दिया होगा। मुझे यह देखनेकी न उत्सुकता थी, न अवकाश। नीचेकी ओर खींचने वाला अवरोध समाप्त होते ही मैं आकाशमें आ गया।

देवताओंके अनेकों विमान गगनमें आ पहुँचे। सुरोंने मेरी प्रशंसा करके कहा—'पवनात्मज ! अब आपका मार्ग आगे निरापद है। राहुकी माता यह सिंहिका हम सुरोंके लिए भी अजेय थी। दशग्रीवने इसे यहाँ रहनेका आदेश दिया था। देवता और गन्धर्वोंके विमान भी इसके कारण इस ओरसे लङ्का नहीं जा सकते थे। इसे मारकर आपने हमारा भय मिटा दिया। आपमें धैर्य, प्रतिभा, बुद्धि और कौशल—चारों गुण पूर्ण हैं।'

देवताओंका यह स्तवन नागमाता सुरसाके संकेतका भाष्य था। मैंने समझ लिया कि लङ्कामें केवल शक्तिसे—बलसे काम नहीं चलेगा।

प्रतिभा, बुद्धि, कौशल भी आवश्यक होगा ; किन्तु मेरे पास तो सबसे बड़ी शक्ति थी अपने समर्थ स्वामीकी । उनका अनुग्रह साथ है—मुझे कुछ क्यों सोचना पड़ेगा ।

मार्गमें—यात्राके प्रारम्भमें ही मुझे बाधाके रूपमें प्राप्त हुई थी सुरसा । यह सात्विक देव-शक्ति—साधकोंके शब्दोंमें कहूँ तो विष्णु-ग्रन्थि, सत्वगुणकी बाधा । मैंने प्रणाम करके कौशलसे उसका आशीर्वाद प्राप्त कर लिया था । साधक सत्वगुणको अनुकूल बनाकर ही अतिक्रम कर सकता है ।

मध्यमें समुद्रमें स्थित यह सिंहिका मिली । साधक कहेंगे कि यह सांसारिक रसों-स्वादों-भोगोंके प्रलोभनमें डालकर मूर्छित कर देने वाली तमोगुणकी बाधा है; किन्तु यह रुद्र-ग्रन्थि मुझ रुद्रका क्या कर लेती ? मेरा तो स्वरूप ही प्रबल वैराग्य है । अतः मेरे मार्गमें आकर नष्ट होगयी ।

मैं नहीं जानता था तब कि एक अधिदेवी और आगे मिलनी है । अन्ततः ब्रह्म-ग्रन्थि—सत्कर्मका आग्रह एवं कर्माहङ्कार तो साधकका बाधक बनता ही है । श्रीरघुनाथका आश्रय हो, अनुग्रह हो तो केवल एक मुष्टिका—एक धक्का उसे भी सानुकूल कर देता है । यह तो आगे होना था । मैं समुद्र कूदकर त्रिकूटके एक शिखरपर पहुँच गया ।

——

२०—अन्वेषणसे पूर्व

समुद्र पार करके त्रिकूटके जिस शिखरपर मैं पहुँचा था, उसका नाम सुबेल था, यह मुझे मिलनेपर विभीषणने बतलाया था । मैं तो सागर-तटसे कूदकर शिखरपर पहुँच गया था । मेरे प्रभु जब हम सबके साथ इस पुरीपर आक्रमण करेंगे, नगर-परिखासे बाहर उनके सैन्य-शिविरके उपयुक्त कौन-सा स्थान होगा, यह मुझे अभी देख लेना था ।

त्रिकूट नाम ही इसलिए है कि उसके तीन शिखर हैं। मध्यके सपाट विस्तृत शिखर पर लङ्कापुरी थी। पुरीके दक्षिणका शिखर मुझे अपने आराध्यके शिविरके लिए उपयुक्त नहीं लगा; क्योंकि उस तक पहुँचनेके लिए लङ्काकी परिखाके समीप होकर जाना पड़ेगा। हम कपियोंके समान प्रभु गगन-पथसे जा नहीं सकते थे। शिखरोंके मध्यकी घाटी विचार करने योग्य नहीं थी; क्योंकि राक्षस ऊँचाई परसे घाटीमें रहने वालेपर शिला-वृष्टि करनेका सुयोग पाजाते। इसलिए सुबेल शिखर ही उपयुक्त स्थल हो सकता था। यह लङ्काके उत्तर था। समुद्र पार करके आनेपर सामने ही मिलता था। इतना ऊँचा था कि इसके ऊपरसे सम्पूर्ण लङ्कापुरी देखी जा सकती थी। इसलिए सुबेल निरापद है या नहीं, यह देख लेना आवश्यक था।

सुबेलसे भी ऊँचा था लङ्काके दक्षिणमें स्थित त्रिकूटका तीसरा शिखर। वह इतना ऊँचा था कि लङ्काके मध्यमें होनेपर भी सुबेलके ऊपरसे उस शिखरका, ऊपरी भाग देखा जा सकता था। जब मैं उसे देखने गया—सुबेलको देख लेनेके पश्चात् ही गया, मैंने देखा कि वह शिखर सैन्य-शिविरके उपयुक्त नहीं है। वह सीधा ऊँचा है। उसका शिरोभाग संकीर्ण है। वहाँ दशग्रीवने अपनी मल्लभूमि बना रखी है। मल्लभूमि पर्याप्त विस्तृत है; किन्तु उसकी परिखासे बाहर किसीके खड़े होनेका भी स्थान नहीं है। परिखासे बाहर पर्वतके निचले भाग तक सीधी ढलान है चारों ओर। तीन ओरसे इस ढलानपर नीचे महोदधिकी उत्ताल तरंगें टक्कर मारती हैं। लङ्काकी ओरका भाग संकीर्ण है और इसी भागसे ऊपर तक पहुँचनेके लिए सोपान निर्मित हैं। वे सोपान हम कपियोंके लिए तो दुर्गम नहीं हैं; किन्तु राक्षसोंके लिए निर्मित हैं। उनपर चढ़ना मानवके लिए बहुत कठिन है। मल्लशालामें रक्षक नियुक्त हैं, यह मैंने सुबेलके ऊपरसे ही देख लिया था। अतः पर्वतके निचले भागपरसे ही एक परिक्रमा करके लौट आया था।

लङ्काके दक्षिणका यह शिखर तो मैंने पीछे देखा, पहिले देखा सुबेल-शिखर। उसको देखना ही आवश्यक था। जैसे ही मैं शिखरपर पहुँचा, एक भयङ्कर आकार मुझपर झपट पड़ा। स्वयं काल हो सम्मुख उपस्थित हों—उनकी विकरालताका वर्णन कैसे सम्भव है।

'मृत्युदेव ! आप ?' मैं उन अत्यन्त कृष्णवर्ण, विकट दशन, कठोर भृकुटिको देखते ही पहिचान गया। वे भी झपटनेके पश्चात् सम्मुख आकर ठिठक कर खड़े होगये थे। उन्होंने मस्तक झुका लिया था, जैसे मुझपर झपटनेकी धृष्टता करके लज्जित हों।

'पवनपुत्र ! धर्मराजने तुम्हें अपने दण्डसे और मुझसे अभयका वरदान दिया है। मेरी धृष्टता क्षमा करना !' खिन्न स्वरमें उन्होंने अपनी कटिकी ओर संकेत किया—'मैं यहाँ दशग्रीवका बन्दी हूँ। इस रुद्र-मन्त्रसे अभिमन्त्रित शृङ्खलामें उसने मुझे बाँध रखा है। इस शिखरपर पहुँचने वालेको मार देनेका मुझे आदेश है। मैं इस शृङ्खलाको खोलने या तोड़ देनेमें असमर्थ हूँ। दीर्घकालसे मेरी अनुपस्थितिमें मेरा कार्य भी धर्मराजको ही करना पड़ता है।'

मुझे दशग्रीवकी दूरदर्शिताकी प्रशंसा करनी पड़ी अपने मनमें। भारतसे—भूमिसे कहना चाहिए लङ्का तकके समुद्रके मध्यमें उसने उस छाया-ग्राहिणीको नियुक्त कर रखा था और इधर ही समुद्र-तटके समीपके शिखरपर कालको बन्दी बनाकर बैठा दिया। मृत्युञ्जयके मन्त्रसे अभिमन्त्रित शृङ्खला कालके लिए नित्य बन्धन थी।

'आप अब मुक्त हैं !' मैंने शृङ्खला खोलनेके लिए स्पर्श की तो वह स्वतः गिर गयी। मुझ रुद्रका स्पर्श प्राप्त करके वह किसीके भी बन्धनका हेतु हो नहीं सकती थी।

'महावीर ! मैं आपका उपकृत हुआ।' वहाँसे विदा होते समय काल-देवने कहा—'मैं वचन देता हूँ कि जो निष्ठापूर्वक आपका स्मरण करेंगे, उनको मुझसे भय नहीं होगा। निशाचरोंके साथ संग्राममें आप जिधर दृष्टि उठावेंगे, आपके प्रतिपक्षकी आयु समाप्त करने मैं उधर दौड़ता रहूँगा।'

मृत्युदेव मुक्त होकर वहाँसे चुपचाप संयमिनी चले गये। दशग्रीवक अनुमान भी नहीं हो सकता था कि उसकी पुरीके पार्श्वका सुबेल-शिखर मैंने अरक्षित बना दिया है।

'महावीर आञ्जनेय ! आप मुझपर अनुग्रह नहीं करेंगे ?' जब मैं एक गुहाके समीपसे निकलने लगा, गुहाके भीतरसे किसीने मुझे पुकारा। मैं

दिनके द्वितीय प्रहरान्तमें ही समुद्र पार पहुँच गया था। भगवती भूमिजाका दर्शन करनेसे पूर्व राक्षस मुझे देख लेते तो मेरा कार्य कठिन हो जाता। इसलिए मैंने रात्रिके अन्धकारमें नगर-प्रवेशका निश्चय किया था। इस समय दिनमें मेरे पास पर्याप्त समय था। इसका उपयोग मैं राक्षसपुरीके बहिर्भाग तथा बाह्यशिखरोंको देख लेनेमें कर लेना चाहता था। सुबेलके शिखरको प्राणिहीन पाकर मुझे अब आश्चर्य नहीं था। जहाँ साक्षात् काल बन्दी हो, उधर आनेको भूल कोई प्राणी कैसे कर सकता था। केवल अपरिचित प्राणी कभी भटक आते होंगे और कालका ग्रास बनते होंगे। लङ्काका कोई राक्षस ऐसी भूल कभी कर नहीं सकता था। राक्षस इधर कभी नहीं आते थे, अतः इस शिखरपर किसीके द्वारा मेरे देखे जानेका कोई भय नहीं था। मैं शिखरका प्रत्येक भाग देख लेना चाहता था।

गुफामें-से आती पुकारने मुझे चौंकाया—'इसमें भी कोई बन्दी है ?' मैं उस गुफामें प्रविष्ट हुआ। वहाँकी दशा बहुत करुण थी। भगवान भास्करके छायासे उत्पन्न भुवन-भयङ्कर-पुत्र शनिदेवके दोनों चरण गुफाके ऊपरी भागमें लगे सुदृढ़ कड़ेमें शृङ्खला द्वारा बाँधे गये थे। वे उलटे लटका दिये गये थे।

उन कृष्णवर्ण ग्रहश्रेष्ठको पहिचान लेनेमें कोई बाधा नहीं हुई। मैंने पहिले उनके चरणोंको बाँधने वाली शृङ्खला तोड़ दी और उनको सहारा देकर सीधे खड़ा कर दिया। वे मस्तक झुकाकर दृष्टि नीची किये जब खड़े हो गये, मैंने पूछा—'दशग्रीवने आपको भी बन्दी बनाया ?'

'रावण प्रकाण्ड ज्योतिर्विद है। वह जानता है कि शनिकी दृष्टि विष-दृष्टि है और उसका कोई प्रतिकार नहीं है।' शनिदेवने कहा—'प्रत्येक प्राणीपर तीस वर्षपर मेरी साढ़ेसाती आती है। एक साढ़ेसाती समाप्त होनेके केवल ढाई वर्ष पश्चात् फिर ढाई वर्षके लिए मैं प्रतिकूल हो जाता हूँ। उसके साढ़े सात वर्षके अनन्तर फिर मेरी प्रतिकूलताके ढाई वर्ष और उनके बीतनेपर पुनः साढ़े साती प्रारम्भ होनेमें केवल साढ़े सात वर्षका अन्तर पड़ता है। मैं प्राणीके अनुकूल केवल दो बार ढाई-ढाई वर्ष रहता हूँ—जब उसकी राशिसे षष्ठम या एकादश स्थानमें होऊँ। तीसरी बार मेरी साढ़े साती आनेपर अधिकांशके लिए मारक होती है, यदि मैं उसकी कुण्डलीमें अनुकूल न होऊँ और मुझे दशाबल प्राप्त हो। दशग्रीवको भय था, सुर समर्थक होनेके कारण मैं उसको, उसके परिकरोंको, उसके नगरको

कभी भी अपनी दृष्टिके द्वारा दग्धकर सकता हूँ। जब मैं उसके अनुकूल स्थितिमें था, अवसरका लाभ उठाकर मुझे उसने यहाँ ऐसे लटका दिया कि मैं किसीकी ओर दृष्टिपात नहीं कर सकता था।'

'आप अब अपने स्थान जानेको स्वतन्त्र हैं!' मैंने कह तो दिया; किन्तु मुझे शनिको मुक्त करके प्रसन्नता नहीं हुई थी। जो सभी प्राणियोंके लिए उत्पीड़क हैं, उनको उन्मुक्त कर देना कोई अच्छा कार्य नहीं कहा जायगा।

'हनुमान! अनुमति दो कि मैं यहाँ थोड़े समय रुका रहूँ। तुम जब लङ्कासे जाने लगो, एक सीमा सङ्कल्पके द्वारा निर्धारित कर देना। उस सीमाको मैं बचा दूँगा। शेष सम्पूर्ण लङ्काको मेरी दृष्टि एक बार देखना चाहती है।' शनिने कहा—'दशग्रीव भी देखेगा कि शनिकी दृष्टि क्या कर सकती है।'

'मेरे प्रभु लङ्कापर आक्रमण करेंगे तो इसी शिखरपर उनका शिविर बनेगा।' मैंने शनिसे कहा—'मैं नहीं चाहता कि उनके आनेपर आप यहाँ उपस्थित रहें।'

'मैं तुम्हारे यहाँसे विदा होनेके कुछ क्षण पश्चात् ही चला जाऊँगा।' शनिने वचन दिया—'किन्तु हनुमान! तुम जानते हो कि निर्दोष नीलमणि समीप रखनेसे व्यक्ति मेरे दुष्प्रभावसे सुरक्षित हो जाता है। श्रीराम स्वयं इन्द्रनीलमणि सुन्दर हैं, उनके लिए मुझसे आशङ्का? उनकी—उनके स्मरणकी बात बहुत बड़ी है। उनके स्मरणसे तो मायाका महापाश छिन्न हो जाता है। शनिकी पीड़ा—शनिके उत्पात तो तुम्हारे स्मरणसे शान्त हो जाया करेंगे। तुम्हारी शरण लेने वालेको शनिकी प्रतिकूलता पीड़ा नहीं पहुँचायेगी!'

शनिदेव यहाँ गुहामें कुछ समय बने रहें, इसमें मुझे कोई बाधा नहीं प्रतीत हुई। मैं दूसरा शिखर देख आया। जब भगवान भास्कर पश्चिममें पहुँच गये सुबेल-शिखरकी स्थिति ऐसी हो गयी कि मैं उसके उच्चतम भागपर खड़ा होकर लङ्काको बिना इस भयके देख सकता था कि वहाँसे कोई मुझे देख लेगा।

सुबेल मेरे आराध्यके शिविरके उपयुक्त था। उसका शिखर समतल था। बहुत विस्तृत था। पर्वतपर पर्याप्त विस्तीर्ण शिलाएँ थीं। सम्पूर्ण

पर्वत सघन वनसे आच्छादित था। वैसे भी समुद्री द्वीपोंमें सब महीनोंमें हरे रहने वाले वृक्ष होते हैं। पर्याप्त बड़ा कदली-वन था, सभी ऋतुओंमें पकने वाले आम्र-तरु थे। दूसरे भी ऐसे फलोंके वृक्ष थे जो हमारे आहार बन सकें। कन्द तथा खाद्य मूल जातीय पौधोंसे पर्वत आच्छादित था। मधुर जलके अनेक निर्झर थे। जैसे मेरे आराध्यके शिविरके लिए ही इस पर्वतकी रचना सृष्टिकर्ताने की थी।

शिविरके सम्बन्धमें निश्चिन्त होकर मैं लङ्काको देखने लगा। वह स्वर्ण सौधोंसे परिपूर्ण राक्षस-राजधानी बहुत सुन्दर थी। दुर्गम उच्च परिखासे घिरे उस नगरमें चारों ओर चार द्वार थे। उनमें सुदृढ़ कपाट लगे थे। द्वारोंपर तथा नगरमें भी स्थान-स्थानपर सावधान सशस्त्र प्रहरी खड़े थे।

नगरके भीतर प्रशस्त राजपथ थे, विस्तृत गलियाँ थीं। आपण नहीं था नगरमें। राक्षसोंको कुछ क्रय नहीं करना पड़ता, उनकी सब आवश्यकता शासक पूर्ण कर देता है, यह मैं समझ गया। नगरमें देवमन्दिर नहीं दीखते थे। नगरमें केवल एक मन्दिर जान पड़ा एक ओर। पीछे पता लगा कि वह निकुम्भिला-मन्दिर है—राक्षसराजका पूजा-गृह तथा अभिचार-यज्ञोंकी यज्ञशाला।

नगरमें कई उद्यान थे। नगरके पार्श्वमें परिखाके भीतर तो उपवन थे ही, राक्षसोंके सदनोंके साथ भी प्रायः वाटिकाएँ थीं। सभी सदनोंके साथ पशुशालाएँ थीं; किन्तु उनमें लगता था कि महिष ही अधिक हैं। समुद्रके इस द्वीपमें गजशालाका उपयोग नहीं था। अश्वशाला एक ही थी। अवश्य ही वह राजकीय रथोंके अश्वोंकी होगी।

उत्तुङ्ग स्वर्ण-सौध, उनपर जगमग करते स्वर्ण कलश—लगता था कि प्रत्येक गृह मन्दिर हो। राक्षस जब शरीरको ही सेव्य मानते हैं तो उनके लिए उनके गृह मन्दिर ही थे। लङ्कामें मुझे कोई शोभाहीन, सम्पत्तिहीन गृह दृष्टि नहीं पड़ा।

राक्षस सायंकाल गृहोंसे निकल पड़े थे। वे गर्जना करते थे। अकारण एक दूसरेसे झगड़ते जान पड़ते थे। उनकी चलनेकी गति कहती है कि उन्होंने भरपूर सुरापान किया है। कज्जल कृष्णवर्ण, प्रायः अरुणाभ श्मश्रुकेश,

वज्रकाय, प्रचण्डवपु कोई दुर्बल, शीर्ण शरीर, शिथिल नहीं दीखता था। राक्षस भी उपदेव जाति है, अतः वहाँ वृद्ध, शिशु, रुग्ण होने सम्भव नहीं थे।

स्थान-स्थानपर मल्लशालाएँ थीं। उनमें राक्षसोंने मल्लयुद्ध प्रारम्भ कर दिया था। इसका अर्थ था कि वे शरीरको सबल रखनेके सम्बन्धमें सावधान थे; किन्तु मल्लशालाओंके समीप बहुत वीभत्स दृश्य भी था। राक्षस जीवित महिषोंको ऐसे चबा रहे थे जैसे कोई मूली खा रहा हो। डकराते महिष, बहती रक्तधारा और साथ ही पूरे कलश सुराके मुखसे लगाकर गटकते वे असुर—मैं उस दृश्यको देखकर जुगुप्सासे व्याकुल होने लगा। मैंने लङ्काको देखना बन्द कर दिया।

दिननाथ अस्ताचल पहुंचे। थोड़ी देरमें अन्धकारने दिशाओंको आच्छादित कर दिया। लङ्का भवन-भित्तियों तथा कलशोंपर लगी मणियोंके प्रकाशसे जगमगाने लगी। जानता था कि निकषात्मज रात्रिचर होते हैं। रात्रिके तृतीय प्रहरके अन्तमें जब सात्विकजनोंके जागृत होनेका समय होता है, उन्हें निद्रा आती है; किन्तु मेरे नगर-प्रवेशका उपयुक्त काल भी यही था। निशाचर—भोगी निशाचर आपान-गृहोंमें, नृत्यशालाओंमें तथा अन्य विनोद-विलास स्थानोंमें एकत्र होकर तन्मय हो जाने वाले थे।

मैंने बहुत छोटे विलाव जितना बड़ा रूप बनाया। प्रभुकी मुद्रिका मैंने मुखमें रख ली और नगरके उत्तर द्वारसे प्रवेश करने लगा। उस द्वारसे द्वारपाल कहीं चले गये हैं, मेरा यह सोचना भ्रम सिद्ध हुआ। अचानक एक दिव्यदेहा, भयानकाकृति नारी प्रकट हुई। उसने मार्ग रोक लिया और डाँटा—'कौन है जो मेरी अवज्ञा करके नगर-प्रवेशका प्रयत्न कर रहा है? जानता नहीं कि लङ्कामें चोरीसे प्रवेशका प्रयत्न करने वाले ही मेरे आहार हैं?'

मेरे पास समय नहीं था। यहाँ द्वारपर इस दुर्दान्त राक्षसीसे उलझकर मैं दूसरे राक्षसोंकी दृष्टिमें नहीं आना चाहता था। मैंने एक घूँसा धर दिया उसके मस्तकपर। सोचा मैंने यह था कि इतनेसे उसकी कपालक्रिया हो जायगी। उसका शव उठाकर मैं समुद्रमें फेंक दूँगा। प्रातःसे पूर्व उसकी अनुपस्थिति प्रगट भी हो गयी तो मैं तब तक नगरमें सरलता-पूर्वक ढूँढनेपर प्राप्त नहीं हो सकता।

वह राक्षसी होती तो मेरा अनुमान निश्चित सत्य था ; किन्तु वह तो लङ्काकी अधिदेवता लङ्किनी निकली । मेरे घूँसेके आघातसे वह रक्त-वमन करती धरापर गिर पड़ी । थोड़ी देर छटपटायी ; किन्तु शीघ्र सम्हलकर मेरे सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी—'श्रीराम-दूत ! मुझे मारो मत ।'

'तुम मुझे जानती हो ?' उसके कातर स्वरपर ध्यान देनेका समय नहीं था । मैंने आश्चर्यपूर्वक पूछा ।

'मैं इस पुरीकी अधिदेवता हूँ ।' उसने परिचय दिया—'जब कोई नगर बनता है, उसका अधिदेवता उसमें आ जाता है । लङ्काका जब निर्माण विश्वकर्माने पूरा किया, मैं ब्रह्मलोकसे आने लगी इस पुरीका आधिदैवत पद सम्हालने, तभी भगवान ब्रह्माने कहा—'लङ्किनी ! जब किसी कपिके प्रहारसे तुम व्याकुल हो जाओ तो समझ लेना कि तुम्हारी पुरीके राक्षस मरणासन्न हैं । उनकी सुरक्षाकी चिन्ता एवं प्रयत्न त्याग देना ।' अमर देवता भी अविनाशी परमपुरुषके प्रतिकूल हों तो उनका अमरत्व नष्ट हो जाता है । यह सत्य स्मरण रखना ।'

'देवि ! मुझे मार्ग दो !' मैंने स्पष्ट कह दिया—'मेरे पास समय नहीं है । आप अवरोध बनेंगी अथवा किसीको भी यहाँ सूचित करना चाहेंगी तो मैं कठोर बननेको बाध्य हूँ । आपको मारा नहीं जा सकता ; किन्तु शिला बाँधकर समुद्र गर्भमें कुछ समयके लिए डुबा दिया जाना असम्भव नहीं है ।'

'आपको यह कष्ट दूँ, इतनी अज्ञ नहीं हूँ ।' उस देवीने सविनय कहा—'आप नगर-प्रवेश करो ! अपने स्वामीका कार्य अवश्य आप पूर्ण करोगे । आपमें विशाल पराक्रम एवं बुद्धि विद्यमान है । मैं तो आप श्रीराम-दूतके इस क्षणिक सान्निध्य तथा स्पर्शसे धन्य हो गयी । राक्षस राजधानीकी अधिदेवता होनेका मेरा कल्मष आपके दर्शनसे दूर हो गया । अब मैं राक्षसकी सहायिका नहीं हूँ । जब तक श्रीराम इस पुरीपर अधिकार करके किसी अपने जनको यहाँ प्रतिष्ठित नहीं कर देते, मैं केवल तटस्थ दर्शिका बने रहनेका वचन देती हूँ ।'

अपने दयाधाम असीम पराक्रम प्रभुके प्रभावसे मैंने इस राजस शक्ति—ब्रह्म-ग्रन्थिसे भी परित्राण प्राप्त कर लिया था । अब मेरे नगर-प्रवेशमें कोई बाधा नहीं थी ।

—×—

२१-अम्बाका अन्वेषण

नगरमें प्रवेश करके मैंने प्रधान-प्रधान राक्षसोंके गृह देखने प्रारम्भ किये। नगरमें अश्वशालाएँ थीं, पशुशालाएँ थीं, अस्त्रागार, मन्त्रणा—गृह, सैनिकोंका शिविर था। सभी राक्षस प्रायः योधा थे; किन्तु तब भी दशग्रीवने नित्य-शस्त्र-सन्नद्ध योधाओंकी छावनी पृथक् रखी थी। कई सहस्र राक्षस इसमें सब समय आदेश मिलते ही कहीं भी युद्धके लिए प्रस्तुत रहते थे।

मैंने एक बहुत विशाल गृहमें प्रवेश किया। वह नगरके एक ओर लगभग नगरकी एक पूरी दिशामें विस्तीर्ण था। मुझे उस भवनके विस्तार तथा ऊँचाईने आकृष्ट किया। उसका महाद्वार जितना ऊँचा था, भीतर भी वैसे ही द्वार थे। मुझे आश्चर्य हुआ कि भवन अरक्षितप्राय है। लेकिन मुझे प्रवेशसे पूर्व ही अनुमान हो गया कि वह रावणानुज कुम्भकर्णका गृह है। उस गृहमें कोई उपकरण नहीं थे। केवल तीन महाकक्ष थे, जिनमें-से एकमें छः महीनेकी निद्रा लेने वाला वह महाकाय निद्रित था। दूसरे कक्षमें उससे कुछ ही छोटी उसकी पत्नी सो रही थी। दोनोंके कण्ठ निद्रामें जो घरघराहट उत्पन्न कर रहे थे—ऐसा लगता था जैसे बहुत-से वृषभ एक साथ डकरा रहे हों। विशाल कुम्भ भरे थे सुरासे एक कक्षमें।

महोदर, विरूपाक्ष, विद्युज्जिह्व, विद्युन्माली, वज्रदंष्ट्र, वज्रकाय, शुक-सारण, जम्बुमाली, सुमाली, माल्यवान, रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, धूम्राक्ष और रावणके ज्येष्ठ राजकुमार मेघनादके गृहमें मैं गया। भवनोंके बहिर्द्वार—पर उनमें रहने वाले प्रधान पुरुषोंके नाम रत्नाक्षरोंमें अंकित होनेके कारण रात्रिमें भी वे पढ़े जा सकते थे। मैं एकसे दूसरे भवनमें शीघ्रता-पूर्वक जा रहा था।

लङ्का स्वर्णपुरी थी। प्रायः सभी भवनोंकी भित्तियाँ, द्वार, भूमि स्वर्ण-निर्मित थी। कपाट अवतरिणिकाएँ प्रवालसे बनी थीं और स्तम्भ स्फटिकके थे। सबमें मणि-प्रदीप थे। इतनी सम्पत्ति साधारण गृहमें भी थी कि सुर उसकी स्पृहा करें।

राक्षसोंके गृहोंका अन्तराल देखने योग्य नहीं था ; किन्तु कर्त्तव्य-विवश मुझे उनमें घूमना पड़ रहा था। महर्षि, गर्दभ, उष्ट्र, बकरे, वृषभ राक्षसोंके आहार थे। एकाध भवनोंमें वे अभागे मनुष्य भी थे जिन्हें राक्षस कहींसे पकड़ लाये थे। उनका आर्तनाद राक्षसोंका मनोरञ्जन था। पशुओंको—मनुष्योंको भी वे कच्चा भी चबा लेते थे। लेकिन राक्षस-नायकोंके भवनोंमें पाकशालाएँ थीं। उनमें रन्धनके लिए नाना-प्रकारके पशु-पक्षी मारे जा रहे थे।

मुझे नृत्यशालाओंमें, पानकगृहोंमें, द्यूतशालाओंमें कोई रुचि नहीं थी। रात्रिके प्रथम प्रहरमें राक्षसोंका जमघट ऐसे ही स्थानोंमें था। लेकिन श्रीमैथिलीके वहाँ होनेकी तो कोई सम्भावना नहीं थी। लङ्काके पुरुषोंमें—नर्तकियोंमें भी मेरी कोई रुचि नहीं थी। मैं श्रीमैथिलीका—अपनी अब तक अनदेखी अम्बाका अन्वेषण कर रहा था और इसीलिए मेरी रुचि राक्षसोंके अन्तःपुरोंकी ओर तथा उनके गुप्त कक्षोंकी ओर अधिक थी, जहाँ मैं अम्बाके होनेकी आशा कर सकता था।

मुझे रात्रिके प्रथम प्रहरमें अधिक सुविधा प्राप्त हुई, प्रायः प्रधान-प्रधान राक्षस-नायक विनोद-स्थलोंमें अथवा आपानक-गृहोंमें एकत्र थे। दूसरे भी द्यूत-सदनोंमें अथवा पशु-भक्षणमें, परस्पर चर्चाओंमें लगे थे। उनके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ भी कुछ तो एकत्र होकर परस्पर चर्चामें लगीं थी और कुछ पतियोंके लौटनेके पूर्वके समयका सदुपयोग निद्रा लेकर कर लेना चाहती थीं।

राक्षसोंमें जैसे सब भयानक ही नहीं थे, सुरोंसे भी सुन्दर थे उनमें, वैसे ही राक्षसियोंमें भी सुन्दरियाँ थीं। प्रधान राक्षसोंके अन्तःपुर तो गन्धर्व, नाग, किन्नरादिकी सुन्दरतम सुन्दरियोंसे भरे थे। अवश्य ही प्रायः सभी सदनोंमें सेविकाएँ तथा अन्तःपुरकी रक्षिकाएँ अत्यन्त कराल, प्रलम्ब दृढ़काय, उग्र-स्वभावा रखी गयी थीं।

मैं सुन चुका था कि मेरी जगज्जननी अम्बा त्रैलोक्य मनोहरा हैं, अतः कुरूप, कृष्णावर्णा राक्षसियोंपर दृष्टि डालना मेरे लिए अनावश्यक था। जैसे मल्लशालाएँ देखने मैं नहीं गया, द्यूतसदन नहीं गया, वैसे ही इन रक्षिकाओंके निजी कक्षोंकी मैं उपेक्षा नहीं कर सकता था। दशग्रीवने

किसीके यहाँ, उसकी रक्षामें श्रीजानकीको नहीं रखा है, यह मैं कैसे जान सकता था। सम्पातीने श्रीजानकीको राक्षसियोंसे घिरी वाटिकामें देखा था; किन्तु तब दिन था—वाटिकामें विचरणका समय। अब रात्रिमें वे कहाँ रखी गयी होंगी, जाननेका उपाय नहीं था। मैं राक्षस-गृहोंमें—उनके सेवक-सेविकाओंके गृहोंमें भी अन्वेषण कर रहा था।

रात्रिके द्वितीय प्रहरमें कुछ देरसे ही आमोदशालाएँ सूनी होने लगीं। राक्षस अपने गृहोंको लौटने लगे; किन्तु मेरे लिए भयका कोई कारण नहीं था। प्रायः वे सब रजनीचर सुरा पीकर उन्मत्त हो रहे थे। अनेक अवसरोंपर मैं उन लड़खड़ाते लोगोंके पैरोंके समीपसे निकला। किसीने ध्यान नहीं दिया कि उनके समीपसे जाने वाला बिलावके आकारका छुद्र पशु कौन है। इतना छोटा कपि भी होगा, यह वे सोच ही नहीं सकते थे। मैं भी उनके सम्मुखसे तभी निकलता था जब वहाँ अन्धकार हो।

राक्षसोंके भोजनका वर्णन न करना ही अच्छा है। मैं भी बहुत अधिक अशन करने वालोंमें हूँ; किन्तु राक्षसोंमें जो विद्वान शिष्ट भी माने जाते थे, वे भी जिस प्रकार भोजन करते थे, वह मनमें जुगुप्सा उत्पन्न करने वाला था। मुखमें जितना समा सके उससे अधिक ही भर लेनेको उठाना, वक्षपर गिराना, शरीरपर एवं आसपास बिखेरते कच-किच शब्द करते मुख चलाना और प्रायः आहारको निगलना उनका स्वभाव था। उनका भोजन स्वादके लिए–जिह्वा तृप्तिके लिए था। असंख्य व्यञ्जनोंका आविष्कार कर लिया था उन्होंने, किन्तु प्रायः सब भोजन मांस प्रधान—पशु-पक्षियोंके विभिन्न अवयव अथवा उनका रस उसमें सम्मिलित था। कच्चे मांस, पशुका अमुक अवयव अथवा जीवित पशु या पक्षी भी भोजनके अङ्ग थे और सुरा तथा रक्त पेय था भोजनके साथ।

राक्षसोंने भोजनके पश्चात् विलास क्रीड़ाएँ प्रारम्भ कीं। प्रायः सबके अनेक-अनेक स्त्रियाँ थीं। दासियाँ और वेश्याएँ थीं और उनके समूहको एक साथ वस्त्रहीन करके वे स्वयं नग्न होकर जो उद्दाम, उच्छृङ्खल व्यवहार करने लगे थे, वैसा महिषादि चतुष्पाद पशुओंमें भी नहीं दीखता।

राक्षसोंके आहार तथा विलास-क्रीड़ाको मैं देखना नहीं चाहता था। इनमें उनकी जो सहयोग देने वालियाँ थीं उनकी ओर मैंने दृष्टि नहीं उठायी; किन्तु अपने अन्वेषणमें मुझे यह सब देखना पड़ा। राक्षसोंके

एकान्त कक्ष—अन्तःपुरोंके सुरक्षित एकान्त कक्ष, जो इन क्रीड़ाओंके समय सूने होगये थे, मैं इसी सुयोगमें झाँक सकता था और उन तक पहुँचनेके लिए अनेक बार मुझे आहार-कक्ष अथवा विलास-स्थानसे निकलना पड़ता था।

मैंने आरम्भमें ही देख लिया था कि दशग्रीवका राजसदन अत्यन्त सुरक्षित है। उसके किसी अंशमें अन्धकार नहीं था। मणि-पंक्तियाँ उसे सर्वत्र आलोकित कर रही थीं। सशस्त्र-अप्रमत्त प्रहरी खड़े थे द्वारोंपर। एक-एक द्वारपर अनेक-अनेक प्रहरी थे। अतः मैं रात्रिके द्वितीय प्रहर तक उस भवनमें प्रवेशका अवसर नहीं पा सका। इस अवसरमें मैंने लङ्काके प्रायः दूसरे सब भवन, उनके सब कक्ष, जो देखे जाने चाहिए थे, देख लिये। अनेक भवनोंके कक्ष विशेष मैंने एकाधिक बार देखे।

लङ्कामें त्रिभुवनकी सुन्दरियाँ राक्षसोंने एकत्र करली थीं। अपहरण—छल तथा बलसे भी अपहरणको वे अपना गौरव मानते थे। दानव, दैत्य ही नहीं, गन्धर्वोंने भी स्वयं अपनी कन्याएँ दशग्रीव तथा उसके पुत्रोंको दी भी थीं। लेकिन मुझे पूरी लङ्कामें रावण-भवनके अतिरिक्त, मैं पूरी लङ्का देख चुका था, उसमें एक भी नारी ऐसी नहीं दीखी जिसको ध्यानसे देखनेके लिए मैं दो क्षण रुकता। किसीको लेकर सन्देह नहीं हुआ कि कहीं यह मेरी अन्वेषण-लक्ष्या अम्बा न हों।

मुझे खिन्नवदना, शीर्णशरीरा, म्लानमुखी, हतोत्साहा कोई नहीं दीखी। ऐसी भी कोई नहीं जिसका मुख सूचित करता कि उसने निकटमें मनस्ताप भोगा है और निराश होकर परिस्थितिके सम्मुख अपनेको समर्पित कर दिया है। राक्षसोंने जिनका अपहरण भी किया था, वे भी सोत्साह उनकी सहयोगिनी बन चुकी थीं। अतः मेरे पद कहीं अटके नहीं।

तृतीय प्रहरके प्रारम्भके पश्चात् मुझे दशग्रीवके द्वारमें प्रवेशका अवसर प्राप्त हुआ। जब राक्षसाधिप अपने विलास-भवनमें पहुँच गया। प्रहरियोंने भी सुराकुम्भ कण्ठमें उतारना आरम्भ किया। उनके समीप भी उनकी पूर्वानुमन्त्रणा निश्चित पण्याएँ विनोद करने आ गयीं। वे केवल विनोद कर सकते थे वहाँ; किन्तु जब वे सुरापान करके हास्य-विनोदमें लगे, मैं द्वारमें प्रविष्ट हो गया।

मैंने सुरासुरजयी लोकरावण रावणका राजसदन देखा—सुरों और असुरोंकी भी जैसे समस्त सम्पत्ति वहाँ एकत्र थी। असंख्य दुर्लभ रत्न, मणि एवं पदार्थ तुच्छके समान पड़े थे जहाँ-तहाँ। मैंने उस सदनके एकान्त कक्ष—गुप्तकक्ष विशेष रूपसे देखे।

मैं जब प्रविष्ट हुआ, वह महासदन निद्रा-शान्त हो चुका था। बहुत अधिक कक्षोंमें दशग्रीवके पुत्र-पौत्र अपनी वधुओं अथवा सेविकाओं, दासियोंसे घिरे निद्रामग्न थे। अनेक कक्षोंमें केवल नारियाँ सो रही थीं। उस दिन दशग्रीवने जिन्हें अपने सान्निध्यका सुयोग नहीं दिया था, वे राजमहिषियाँ अपनी दासियोंके साथ सो रही थीं। शृङ्गारसज्जिता वे ऐसे ही निद्रित थीं जैसे राक्षसेश्वरके आह्वानकी प्रतीक्षा करती हुई ही सो गयी हों।

अन्तमें मैंने दशाननके विशाल कक्षमें प्रवेश किया। उसके अन्तःपुरमें सर्वत्र सशस्त्र भयानक राक्षसियाँ द्वारोंपर नियुक्त थीं; किन्तु इस समय वे आलस्यमग्ना जहाँ-तहाँ बैठ चुकी थीं। निद्रालस पलकें खोलती भी थीं तो मेरी ओर उपेक्षासे ही देखकर नेत्र बन्द कर लेती थीं।

दशग्रीवके शयन-कक्षकी शोभा देखनेका समय नहीं था। उस कक्षमें भूमिके बहुमूल्य आस्तरणपर जहाँ-तहाँ परम सुन्दरी नारियाँ अस्त-व्यस्त पड़ी थीं। अधिकांश तन्त्री, मृदंग अथवा अन्य कोई वाद्य अङ्कमें लिये या उनपर सिर रखे लुढ़क गयी थीं। कुछ सेविकाओंके समीप चामर या ताम्बूलादि पात्र पड़े थे। लगता था कि राक्षसेश्वर संगीत-श्रवण करता सोया है। लेकिन निद्राके अस्त-व्यस्त वस्त्र, मुखोंसे बहती लार—सुरोंको भी सम्मोहित करने वाली सौन्दर्य-मूर्तियाँ इस समय देखने योग्य भी नहीं थीं। सौन्दर्य—केवल चर्मका चाकचिक्य ! इस चर्मके पीछे सब शरीरमें तो यही थूक, मल, मूत्र, रक्त, मांस, मेद—सब कुत्सित, अपावन ही तो है यहाँ। केवल चर्मने अपने निःसार आकर्षणमें प्राणियोंको कितना अन्धा बना रखा है।

'यह कौन ?' मैं लङ्कामें पहिली बार चौंका। दशग्रीवकी रत्नखचित विशाल शय्यापर पयः फेन उज्वल-कोमल आस्तरणपर उस दुर्दान्त महाकायके समीप एक वैसी ही पृथक् शैय्यापर अलौकिक सुन्दरी शयन कर रही थी। जैसे महागजके समीप प्रफुल्ल पद्मिनी तनिक पृथक पड़ी हो। उस सौन्दर्य-

राशिको देखकर मैं एक बार सशङ्क होगयां—'ये मेरी भुवनवन्द्या अम्बा तो नहीं ?'

अम्बाके दर्शन हो गये, यह अनुमान करके मैं हर्ष-विह्वल होगया। अपनी पूँछ पटकने लगा। बार-बार अपनी लांगूल चूमने लगा। समीपके स्तम्भपर उत्साहातिरेकमें उतरने-चढ़ने लगा। कूदने लगा। कुशल यही हुई कि मैंने किलकारी नहीं मारी। दशग्रीव समीप ही प्रसुप्त है, इस बोधने मुझे किलकारी मारनेसे रोका। मैंने उसके अरुण सरोज सुकोमल चारु चरणोंमें मस्तक झुकाया। उस कृशोदरी, कम्बुकण्ठ, कमललोचनाको मैं भली प्रकार देखने लगा। ध्यानसे देखते ही लगा—'यह मयतनया राक्षसेश्वर महाराज्ञी मन्दोदरी होनी चाहिए।'

उस अनिन्द्य सुन्दरीके मुखपर व्यतीत शोककी कोई रेखा नहीं थी। उसका मुखारविन्द शोकसे सर्वथा अपरिचित था। उसने निद्रामें भी राक्षसेश्वरकी ओर इस प्रकार कर फैला रखा था जैसे अनन्त प्रेम प्रदान करती—कर रही हो। सबसे ध्यान देने योग्य तथ्य था कि राक्षसेश्वर महाराज्ञीका सौन्दर्य सौम्य नहीं था। मादक सौन्दर्यकी पराकाष्ठा थी वह। उसके अङ्ग-अङ्गसे रोम-रोमसे ऐसा सौन्दर्य झरता था जो देखने वालेको उन्मत्त-विवश बनाता था। उसका आकर्षण अदम्य था। उसे देखकर श्रद्धा नहीं—कामना जागृत होती थी। मैं शीघ्र वहाँसे हटा।

दशग्रीव-महारानी मन्दोदरीके मादक सौन्दर्यने मुझे सावधान किया—मुझे चौंकाया। मैं ग्लानिसे—विषादसे व्याकुल उस महाप्रासादसे निकला। पश्चातापसे मेरा रोम-रोम जल रहा था—'हनुमान ! तुझे धिक्कार है ? तू ब्रह्मचारी है और यहाँ रात्रिके एकान्तमें राक्षस-रमणियोंको—अर्धनग्न, नग्न रमणियोंको देखता घूम रहा है ? तूने तो इन्हें पूरे ध्यानसे देखा है—देखता-ही घूमता रहा है ! केवल विलासमग्ना, नग्ना नारियोंको ही देखता-घूमता रहा है ! तेरा व्रत--ब्रह्मचर्यव्रत बच गया ? तू अब संसारको, समाजको वञ्चित नहीं करेगा अपनेको ब्रह्मचारी प्रकट करके ?'

'इस व्रत-भङ्गका, इस प्रमादका प्रायश्चित्त तो प्राणान्तसे कम सम्भव नहीं।' दशग्रीवके सदनसे बाहर आकर मैं एकान्त स्थानपर खड़ा हुआ। प्रायश्चित्तके निश्चयने मनको शान्त किया। व्याकुलता जो व्रतभङ्गको

समझकर हुई थी, मिट गयी। मैंने अपना वक्ष-विदीर्ण करनेके लिए अपने करके नखोंको हृदय स्थानपर लगाया।

'राम! राम! राम!' आराध्यका स्मरण—उनका नामोच्चारण मरणसे पूर्व कर लेना था; किन्तु उन अन्तर्यामीने पुनः चौंका दिया। प्रज्ञाके उन परमप्रेरकने जैसे भीतरसे पुकारा—'हनुमान! हतबुद्धि मत बन! तू जानता है कि पाप क्रियामें नहीं होता। पाप होता है भावनामें। विवाहके पश्चात् पतिगृह-विदा होते समय सर्वाभरण-भूषिता युवती कन्या जब पिता या भाईके कण्ठमें भुजाएँ डालकर रोती हुई लिपट जाती है—विकारकी, पापकी कल्पनाको वहाँ कहीं प्रश्रय प्राप्त हो सकता है? तूने जो कुछ किया है या देखा है, उसमें तेरी कोई उत्सुकता थी? कोई विकार आया तेरे मनमें? जैसे चिकित्सक प्रयोजन-विवश रुग्णा नारीको निरावरण देखने और स्पर्श करनेमें भी लगता है, तू प्रयोजन-विवश ही तो यहाँ नारियोंको देख रहा था और वह प्रयोजन तेरा अपना नहीं था। तुझे कहाँ पापने स्पर्श किया?'

'ओह! मेरे अनन्त करुणार्णव आराध्यने मुझे आत्मघातके महापापसे उबार लिया!' मेरे नेत्र निर्झर बन गये। 'मैं कितनी भयङ्कर भूल करने जारहा था। मैं सेवक—मेरा शरीर, मेरे प्राण मेरे स्वामीके और इस समय मैं उनके कार्यपर लगा हूँ। वह कार्य अपूर्ण है और मैं मरने जारहा था? महापराधको तो मैं अब उद्यत हुआ था। क्षमा! मेरे नाथ, क्षमा!'

मैंने अपनेको सम्हाल लिया। मुझे स्मरण आ गया कि मैं इस समय अपने स्वामीके कार्यपर लगा हूँ। मेरे पास न मरणका अवकाश है और न भावनामें नष्ट करनेको क्षण। मैं सावधान हो गया। अपना कर्तव्य मैंने पुनः सम्हाल लिया।

रात्रिका तृतीय प्रहर लगभग व्यतीत होगया था। मैं जानता था कि निशाचरोंकी प्रगाढ़ निद्राका समय तो अब प्रारम्भ हुआ है। वे दिनके प्रथम प्रहर तक निद्रित रहेंगे। लेकिन सूर्योदयके पश्चात् प्रहरी सावधान हो जाएँगे। दिनमें उनकी दृष्टिसे बचकर मेरा घूमना सम्भव नहीं होगा। अतः मैं लङ्काके अवशिष्ट भवनोंको देखनेमें लग गया। सबसे पहिले राक्षसेश्वरके राजसदनमें पुनः प्रवेश करके मैंने उसे भली प्रकार ढूँढ़ा और तब नगरमें निकला।

—×—

२२—अम्बाका दर्शन

मैं लगभग हताश हो चुका था। लङ्काके सभी भवन मैंने देख लिये थे। जब अपना बल, अपनी योग्यता, अपने साधनका भरोसा समाप्त हो जाता है, तभी प्रभुके प्रसादके पावन अवतरणका अवसर आया है। मेरा सब प्रयत्न निष्फल हो चुका था। मैं अपनी समझसे सम्पूर्ण लङ्का देख चुका था। अत्यन्त खिन्न होकर, मस्तक झुकाकर मैं मन्दगतिसे चला जारहा था—कहाँ जा रहा था, मुझे ही पता नहीं था। मेरा अन्तःकरण क्रन्दन कर रहा था—'रघुनाथ—श्रीराम ! आप समर्थ हो ! आपने मुझे भेजा। आपने आशीर्वाद दिया ! आपने मेरी रक्षा की। आपका आशीर्वाद ! आपकी अनुदान मुद्रिका क्या व्यर्थ हो जायगी ? अपने चरणाश्रित इस छुद्र कपिकी सहायता करो ! अन्धकारमें भटकते इसे पथ प्रदान करो परमसमर्थ !'

मैं मुखसे नहीं बोल रहा था, किन्तु मेरा रोम-रोम, मेरे प्राण पुकार रहे थे। मेरे आराध्यने किसी आर्तकी पुकार कभी अनसुनी नहीं की। मैं तो उनके श्रीचरणोंका आश्रित था। चलते-चलते मैंने सिर उठाया तो सम्मुख जो भवन दीखा, उसे देखता ही रह गया। 'लङ्कामें ऐसा भवन ?' मैं कल्पना कैसे कर सकता था कि इस राक्षसपुरीमें कोई वैष्णव भी रहते होंगे और इस प्रकार उन्हें प्रकट रहने देरहा है दशग्रीव।

वह भवन मेघनादके—राक्षसेश्वरके युवराजके भवनसे कम विशाल तथा कम सुसज्ज नहीं था; किन्तु वहाँ मुझे उसकी तीन विशेषताओंने आश्चर्यमें डाला। भवनके सम्मुखके विशाल प्राङ्गणमें एक ओर भव्य मन्दिर था और उसके शिखरपर लगा चक्र सूचित कर रहा था कि वह हरि-मन्दिर है। मैंने उस चक्रको मस्तक झुकाया। भवन-द्वारके दोनों पार्श्वोंमें-से दक्षिणकी ओर शङ्ख और वाम पार्श्वमें चक्र अङ्कित था। भवन-प्राङ्गणमें सुरभित पुष्पवाटिका तो थी ही, एक ओर तुलसीके वीरुध लगे थे और उनकी स्थिति सूचित करती थी कि उनकी सेवा, उनका सिञ्चन ही नहीं होता, उनकी चर्चा भी होती है। उस स्थलमें सायंकाल रखा गया घृत-दीप अभी तक प्रज्वलित था।

'किसका होगा यह भवन ? कितने प्रभावशाली होंगे ये महानुभाव कि दशग्रीव भी इनके इस आचारमें आपत्ति नहीं करता ?' मुझे इस ऊहापोहका अधिक अवसर नहीं मिला। गृह-स्वामी उसी समय निद्रा त्यागकर उठे। उनका स्वर सुनायी पड़ा—'श्रीराम जय राम जय जय राम।

'मेरे आराध्यका स्मरण और यहाँ ?' मैं अत्यधिक चकित हुआ। मैंने निश्चय किया—'इन महानुभावसे परिचय करूँगा। ये मेरे सहायक बनना न भी स्वीकार करेंगे तो मेरे कार्यके बाधक नहीं बनेंगे। कोई सत्पुरुष किसी अपहृत अबलाके उद्धार-प्रयत्नमें बाधक नहीं बन सकता और ये निश्चय सत्पुरुष हैं।'

'परिचय कैसे करूँ ?' मुझे सूझा कि जो हरि-मन्दिर अपने यहाँ बनवाया है, वह विप्रोंके प्रति श्रद्धा भी रखता ही होगा। मैंने ब्राह्मण रूप धारण किया। इस भवनके द्वारपर प्रहरी नहीं थे। मैं भीतर गया। मुख्य भवनके द्वारपर-से मैंने मन्द स्वरमें—इतने मन्द स्वरमें कि गृहपति सुनलें ; किन्तु मेरा स्वर कहीं बाहर कोई न सुन सके, पुकारा—'श्रीराम !'

गृहपति भी चौंके। वे आतुरतापूर्वक शय्यात्यागकर द्वारपर आये। मुझे देखते ही अञ्जलि बाँधकर उन्होंने प्रणाम किया—'देव ! यह पौलस्त्य दशग्रीवानुज विभीषण आपके पादारविन्दोंमें प्रणाम करता है।'

वैसा ही कज्जलकृष्णवर्ण, वैसा ही वज्रदेह जैसा रावणका था और कुम्भकर्णसे किञ्चित् ह्रस्व काया—उससे सटकर खड़े हों तो उसके कन्धे तक आवें, ऐसे लगते थे लेकिन लङ्कामें मैंने पहिली वार ऊर्ध्वपुण्ड-धारी, तुलसी-मालग्रीव पुरुषको देखा।

विभीषण शय्या-त्यागकर सीधे आ गये थे। स्नानसे पूर्व विप्रका स्पर्श न करनेकी मर्यादाका उनका पालन मुझे प्रसन्न करनेको पर्याप्त था। उन्होंने कहा—'आप कौन हैं ? हमारी पुरी तक पहुँचनेके लिए आपको सौ योजन सागर पार करना पड़ा होगा और हम राक्षस कैसे हैं, यह आपसे अज्ञात नहीं होगा। इतनेपर भी आप यहाँ पधारे हैं तो आपमें असाधारण शक्ति एवं कौशल होना चाहिए। आपके आगमनका हेतु महान होना चाहिए। आपने मुझे दर्शन देनेका अनुग्रह किया, मैं किसी सेवाके योग्य हूँ ?

मैं समझ गया कि ये रावणानुज जितने सौम्य हैं, उससे बहुत अधिक बुद्धिमान हैं। उनसे कुछ छिपाना व्यर्थ था। सत्पुरुषकी सहायता निश्छल व्यवहारके बिना प्राप्त होनेकी आशा नहीं की जा सकती। मैंने परिचय और प्रयोजन स्पष्ट सूचित किया—'मैं अयोध्याके अधीश्वर चक्रवर्ती महाराज दशरथके ज्येष्ठ कुमार श्रीरामका दूत, वानरेन्द्र सुग्रीवका सेवक हनुमान हूँ। राक्षसेश्वर रावण दण्डकारण्यसे श्रीरघुनाथकी भार्या भगवती भूमिजाका अपहरण करके ले आये। हमें पता लगा कि लङ्कामें ही कहीं उनको दशग्रीवने रखा है। मैं उन जगदम्बाका दर्शन करना चाहता हूँ। यदि आपको उनका कुछ पता हो और आप मुझे अनुगृहीत करने योग्य मानते हों..........।'

'राक्षसेश्वरके राजसदनसे लगा हुआ लङ्काधिपका अत्यन्त प्रिय अशोकोपवन है। उपवनके मध्यमें कमल एवं कुमुदिनियोंसे पूर्ण सुन्दर सरोवर है। सरोवरके समीप ही भगवान भूतनाथका भव्य मन्दिर है। उस स्थानसे थोड़ी दूरपर सघन शिंशुपा वृक्ष है। वह इतना विशाल है कि आप दूरसे उसे देख लेंगे। उसके नीचे कृशकाय, जटा-वेणी-धारिणी, शोक-मग्ना, पीतवर्णा ज्योति-रेखाके समान देवी मैथिलीके दर्शन आप कहीं दूरसे छिपकर कर सकते हैं; क्योंकि वहाँ सशस्त्र राक्षसियाँ सदा सावधान रहती हैं।' विभीषणने बतलाया—'मैं वहाँ नहीं जा पाता। मेरे अग्रज दशग्रीवके अतिरिक्त दूसरा कोई पुरुष उन तक नहीं जाता। उपवनके रक्षक भी वहाँसे दूर रहते हैं। उपवनमें जानेका मुख्य मार्ग राजसदनसे है; किन्तु बाहरसे भी एक लघु द्वार उसमें जानेका है। उसीसे मेरी पत्नी यदाकदा देवीको आश्वासन देने जाती है। मैंने उसीसे वहाँका वृत्त जाना है।'

'दशग्रीवको शाप है कि किसी नारीकी इच्छाके विरुद्ध बलात्कारका प्रयत्न करेगा तो उसकी मृत्यु हो जायगी।' विभीषणने मुझे सन्तुष्ट करनेके लिए बतलाया—'देवी मैथिलीने यहाँ किसी भी भवनमें जाना अस्वीकार कर दिया। उनका निर्णय उचित था। मेरे अग्रजने विवश होकर उन्हें अपने उस उपवनमें रखा है।'

'आपके प्राङ्गणका मन्दिर, आपका यह वेश—आपकी हरिभक्तिको आपके अग्रज कैसे सहन करते हैं? उनके परिकर आपको उत्पीड़ित नहीं करते?' मैंने पूछ लिया।

'भक्ति कहाँ है मुझमें—एक राक्षसमें कैसी भक्ति !' साश्रुलोचन विभीषणने भरे कण्ठ कहा—'मेरे अग्रज प्रायः विजय यात्राओंपर जाते रहते हैं। यहाँके प्रशासन तथा व्यवस्थाका दायित्व उन्होंने मुझे दे रखा है; क्योंकि हमारे मध्यम भ्राता शयन करते रहते हैं। युवराज मेघनाद युद्ध-यात्राओंमें पिताके साथ रहते हैं। इस दायित्वके कारण, राक्षसेश्वरका अनुज होनेके कारण भी मुझे कोई उत्पीड़ित नहीं करता। स्नेहवश कहिए या प्रशासनके लिए उपयोगी मानकर राक्षसेश्वर मेरे अपने जीवनमें, मेरी अर्चा एवं आचारमें हस्तक्षेप नहीं करते; किन्तु मेरी अवस्था यह है जैसे दन्तावलीके मध्य जिह्वा। तनिक असावधान हुए और आहत होंगे। जिनका सङ्ग, आचार सर्वथा प्रतिकूल है, उनका पालन करनेको बाध्य हूँ। उनके अधर्म, उत्पात, अनाचार—का मूक-दर्शक—मूक-समर्थक रहना पड़ता है मुझे। हनुमान ! सुना है, श्रीराम परात्पर परम पुरुष हैं। अनन्त दयासिन्धु हैं। वे अधमोद्धारण कभी मुझ-से अधम, पापिष्ठ, पतित राक्षसपर भी कृपा करेंगे ?'

'मुझ-से कपिको अपनाया है उन्होंने।' मैंने कहा—'कौनसे सद्गुण धरे हैं एक वानरमें; किन्तु उन कृपा-पारावारको अपनाना ही आता है। वे किसीका त्याग नहीं करते—उस किसीका नहीं जो उनके श्रीचरणोंके सम्मुख आनेको उत्सुक है।'

हम द्वारपर ही खड़े थे। मुझे शीघ्रता थी। विभीषण भी यह समझ रहे थे, अतः उन्होंने भवनमें चलनेका मुझसे अनुरोध नहीं किया। मैंने उनसे अनुमति ली। उनके सम्मुख ही वह विप्ररूप त्यागकर जब नन्हा कपि बना, उन्हें आश्चर्य नहीं हुआ। वे स्वयं और उनके यहाँके सब राक्षस स्वेच्छानुसार रूप-धारणमें समर्थ थे। मुझे विप्ररूपमें देखनेपर भी उन्होंने यह समझनेमें भूल नहींकी थी कि वह मेरा कृत्रिम रूप है। मैंने वानररूपमें उनसे विदा ली।

अशोकोपवनकी परिखापर मैं सरलतासे चढ़ गया। मुझे द्वार ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं थी। उपवनमें भी मैं एक एकान्त स्थानमें नीचे कूद गया। वहाँसे उस शिशुपा वृक्ष तक पहुँचने और उसके ऊपर जाकर सघन पत्रोंमें छिपजाने तक किसीने मुझे नहीं देखा। वहाँ जो राक्षसियाँ थीं वे सब श्रीमैथिलीके ही समीप उन्हें घेरे बैठी थीं। उन्हींको देख रही थीं।

वृक्षपर पहुँचकर भली प्रकार अपनेको छिपा लेनेसे पूर्व मैंने दूसरी किसी ओर ध्यान नहीं दिया ।

राक्षसेश्वरके सदनमें मयतनयाको श्रीमैथिली मानकर मैं अत्यन्त उल्लासमें आगया था ; किन्तु जब वृक्षके पत्तोंमें छिपकर मैंने उसी तरुके नीचे बैठी उन जगदम्बाके दर्शन किये, मेरा रोम-रोम स्वेदार्द्र हो उठा । वे पवित्रताकी, शोककी, वात्सल्यकी साकार मूर्ति—सृष्टिकी समस्त पावना उनके श्रीचरणोंकी छायासे सार्थक होती है । मेरे मनमें एक ही बात आयी—'श्रीरघुनाथने अपने कार्यमें मुझे निमित्त बनाकर कृतार्थ किया !'

अम्बा—मेरी अपनी अम्बा ही उस तरुके नीचे बैठी थीं। इतनी श्रद्धा मुझमें अपनी जननी अञ्जनाके प्रति भी कभी नहीं उमड़ी थी। मुझे उनके भयभीत होने, चौंकनेका भय न होता—भय न होता कि राक्षसियाँ उत्पात करेंगी तो मैं उसी समय उनके श्रीचरणोंमें नन्हे शिशुके समान लोट जाता। दृष्टि पड़ते ही मेरे हृदयने पुकारना प्रारम्भ कर दिया—'हनुमान आज तुझे तेरी वास्तविक अम्बाके दर्शन हुए! धन्य होगया—कृतार्थ हो गया तू।'

—×—

२३—अम्बाका आशीर्वाद

मैं वृक्षके पत्तोंमें छिपा सोच ही रहा था कि कैसे अम्बाकी चरण-वन्दनाका अवसर मिलेगा ? राक्षसियाँ वहाँसे हटें, इसका कोई ऐसा उपाय करना था, जिससे अधिक कोलाहल न हो ; किन्तु मुझे कुछ करना नहीं पड़ा । वाटिकामें वहाँ बैठी राक्षसियाँ सतर्क खड़ी हो गयीं । मैंने देखा कि अम्बा सिकुड़कर बैठ गयीं । वे इतना भयातुरा हो उठीं जैसे मृगीने व्याघ्रको समीप आता देख लिया हो ।

मैंने इधर-उधर देखा । शीघ्र मुझे राजभवनकी ओरसे आता दशग्रीव दिखलायी पड़ा । उसके साथ दूसरा कोई पुरुष नहीं था । केवल स्त्रियाँ थीं । मैंने जिस मयतनयाको उसके समीपकी शय्यापर शयन

करते देखा था, वह साथ ही आरही थी। शयनकक्षमें उस समय जो सुन्दरियाँ, सेविकाएँ सुप्त थीं, प्रायः सब साथ थीं।

दशग्रीव शय्यासे उठकर अवश्य अधूरी निद्रासे उठा आया था। उसके केश अस्त-व्यस्त थे। समीप आनेपर मैंने देखा कि उसके नेत्रोंमें सुरापानकी अरुणिमा थी। उसने मस्तकोंपर मुकुट धारण कर लिये थे। कटिमें खड्ग लगा लिया था; किन्तु शयनके वस्त्रोंमें ही था। उसके साथकी नारियोंने भी केवल मुख धोकर वस्त्रोंको ठीक किया था। वैसे वे शृङ्गार किये ही शयन-कक्षमें भी सुप्ता दीखी थीं।

दशग्रीवके आगे-आगे वे नारियाँ प्रज्वलित मशालें लिये चल रही थीं। केवल मन्दोदरी साथ चल रही थी। पीछे कोई नहीं था। कोई सशस्त्र रक्षिका साथ नहीं थी। अपने अन्तःपुरके ही उपवनमें आनेके लिए राक्षसेश्वरको रक्षिकाओंकी अपेक्षा नहीं थी।

'परम सुन्दरी वैदेही! तुम्हारे स्वयम्वरके समय ही मैं तुमको प्राप्त करने गया था। उसी समय आकाशवाणीने मेरी बहिनके अपहरणकी सूचना न दी होती—दूसरे तुम्हारे पिताकी प्रतिज्ञा उचित नहीं थी। वह धनुष मेरे आराध्यका था। मैं उसका आदर ही कर सकता था। दूसरा उससे शतगुणित भारी धनुष भी होता तो मैं उठा लेता। मैंने तो कैलासको महेश्वरके साथ उठा लिया है, वह तो उनका धनुष ही था।' रावण चाटुकारी करने लगा—'मेरी ओर एक बार देखो! त्रिभुवन विजयी तुमसे प्रार्थना कर रहा है। मैं तभीसे तुमको अपना हृदय दे चुका। तुम स्वीकार करो तो इसी क्षण लङ्काकी महाराज्ञी हो जाओगी। यह दानवेन्द्र-तनया मेरी समस्त रानियोंके साथ तुम्हारी दासियाँ होकर रहनेको प्रस्तुत हैं। अब यह आशा त्याग दो कि कोई मानव समुद्र पार करके तुम तक पहुँच सकेगा। सुर भी लङ्काके सिंहासनको मस्तक झुकाते हैं। कल तुम उस सिंहासनपर मेरे पार्श्वमें विराजमान होकर त्रिभुवन-साम्राज्ञी बनो!'

'कदर्य कीट! केशरीकी वधूको छलपूर्वक तब उठा लाया, जब स्वामी अनुपस्थित थे। उनके छोटे भाईके द्वारा खींची रेखाके उल्लङ्घनका साहस तक तुझमें नहीं था और अब एकाकिनी असहाया अबलाके सम्मुख डींग हाँकता है!' एक तृण अम्बाने वाम करमें लेकर आगे कर दिया था। वे अवनत-

वदना तनिक दूसरी ओर घूमी थीं। तृण—मानो दशग्रीवको तृण दिखाकर सूचित करती हो कि तू इतना ही तुच्छ है। उनकी तेजस्विता अतर्क्य थी। मैं गौरव, आनन्द, उत्साहमें मग्न हो गया—'धन्य अम्बा !'

उन्होंने दशग्रीवकी भर्त्सना की—'रात्रिमें खद्योत बहुत चमकते हैं। दिनकरके उदय होनेपर तूने देखा है कभी उन्हें ? तेरा यह सब चाकचिक्य केवल तब तक है जब तक सूर्यवंशके परमगौरव मेरे प्रभुके सम्मुख नहीं पड़ता तू।'

'तू मरणोद्यता ही है तो मर !' रावणने क्रोधसे दाँत पीसा और खड्ग खींच लिया।

'कुटिल नीच राक्षस ! कान खोलकर सुन ले !' भगवती भूमिजाका स्वर तनिक भी कम्पित अथवा शिथिल नहीं हुआ--'सीताके कण्ठमें या तो तेरी यह कर-वाल पहुँच सकती है अथवा मेरे स्वामीकी नवमेघसुन्दर विशाल भुजा ! तू सागरीय मण्डूक सिंह वधूकी प्राप्तिकी दुराशा मत कर !'

इतनी उपेक्षा—इतना अपमान राक्षसेश्वरका उसकी महारानी और अन्य स्त्रियोंके सम्मुख हुआ ! क्रोधमें उसने पैर पटका। दाँत पीसे और कर-वाल उठाकर झपटनेको हुआ। मैं कूद ही पड़ने वाला था। 'इस अधम राक्षसको मैं एक आघातमें मार दूँगा !' निश्चय कर लिया था मैंने; किन्तु मन्दोदरीने उस समय सिन्दूरकी रक्षा करली। भले उसने समझा हो कि वह श्रीविदेह-नन्दिनीपर कृपा कर रही है।

'स्वामी ! आप समर्थ हैं। असहाय नारीपर हाथ उठाना आपके शौर्यके अनुरूप नहीं है।' मयतनयाने पतिके चरण पकड़ लिये—'किसी दुःखिनीके दुर्वचनोंपर ध्यान नहीं दिया जाता।'

'सीता ! सुनले अब। मैं केवल एक महीने और प्रतीक्षा करूँगा।' रावणने क्रुद्ध स्वरमें कहा—'इस अवधिमें तूने मेरी बात स्वीकार नहीं की तो मैं स्वयं तेरा वध करूँगा। तू कहती है मैं राक्षस हूँ तो हूँ मैं राक्षस। तेरा यही दुराग्रह बना रहा तो अवधि बीतनेपर तेरा मांस मेरे प्रातराशके लिए रन्धन-करके राक्षसियाँ उपस्थित करेंगी। तू मेरे अङ्कमें आनेका निर्णय कर, अन्यथा तेरी काया मेरे उदरमें पहुँचकर रहेगी !'

'तुम सब अब इसपर कृपा करना बन्द करो !' चलते-चलते दशग्रीवने वहाँकी रक्षिकाओंको आदेश दिया—'यह सेवासे, सौम्य प्रयत्नसे नहीं समझ सकती। हम राक्षस किसीको कैसे समझाते हैं यह तुम सब जानती हो। इसके लिए वही सब उचित है।'

दशग्रीव जैसे आया था, लौट पड़ा उसी मार्गसे। उसने पीठ फेरी और वहाँकी राक्षसियोंने अपने भल्ल, त्रिशूल, मुद्गर, उठाये। वे विकटानना, लम्बोदरी, कराल-दंष्ट्रा, दीर्घ-नखा, व्याघ्रिनो-नेत्रा भयङ्करी राक्षसियाँ चारों ओरसे घेरकर अम्बापर मानो एक साथ टूट पड़ीं—'मैं अभी तेरा सिर तोड़कर उसमें-से निकला मस्तिष्क खालूँगी !'

चटखारे लिये उसने—'बड़ा स्वादिष्ट होगा तेरा सिर।'

दूसरीने पंजे फैलाये—'तेरे इन कपोलोंका मांस मैं एक ग्रास बना लेती हूँ।

कोई उनके हृदय तक त्रिशूल बढ़ा लेगयी और किसीने मुख फाड़कर वह अपना दुर्गन्धित, पीले-टेढ़े भयङ्कर दाँतों वाला मुख इस प्रकार अम्बाके मुखके समीप किया मानो उनकी नासिका दाँतोंसे काट ही लेने वाली हो।

अम्बाने नेत्र बन्दकर लिये। मेरे लिए यह देखना अब असह्य होगया। लेकिन जैसे मैं दशग्रीवको मारने नहीं कूद सका था, वैसे ही इस क्षण भी बाधा पड़ी। उन राक्षसियोंमें-से एक सबसे श्रेष्ठा लगती थी। कुछ सौम्याकृति थी। तीन वेणियाँ बना रखी थीं उसने। उसका नाम त्रिजटा ही था, यह पीछे पता लगा, उसने राक्षसियोंको डाँटा—'तुम सबोंको आज ही मरनेकी शीघ्रता है ? मैंने बड़ा भयङ्कर स्वप्न अभी राक्षसेश्वरके आनेसे पूर्व देखा है। तनिक नेत्र बन्द हुए और मैंने जो देखा, वह बहुत अनर्थ सूचित करता है। इस समयका स्वप्न असत्य नहीं होता। मेरे प्रातः-काल देखे स्वप्न कभी असत्य नहीं हुए, यह तुम सब जानती हो। आज या कल ही यह स्वप्न सत्य होनेवाला है। बाप रे ! स्वप्न भी कैसा ? भयानक विनाश !'

'त्रिजटे ! क्या देखा है तूने ?' सबकी सब राक्षसियोंने उसे घेर लिया।

'मैंने देखा कि एक पर्वताकार कपि आया है कहींसे। उसके लांगूलमें अग्नि लगी है। वह नगरमें अग्नि लगा रहा है। पूरी लङ्का धू-धू करके जल रही है।' त्रिजटाने सुनाया—'मैंने देखा कि राक्षसेश्वर मुण्डित मस्तक काले वस्त्र पहिने गर्दभारूढ़ दक्षिण जा रहा है। उससे सब बाहु कट चुके हैं। मैंने विभीषणको श्वेत वस्त्र, श्वेत अङ्गरागयुक्त, श्वेत छत्र धारण किये देखा। उनकी जय-जयकार हो रही है और श्रीरामने सीताको बुलानेके लिए चर भेजा है।'

राक्षसियोंके मुख खुले रह गये। भयसे उनके नेत्र विस्फारित हुए—'त्रिजटे ! तुम हममें बड़ी हो। हमें करना क्या चाहिए, यह बतलाओ !'

त्रिजटाने कहा—'अब हम सबका हित सीताकी सेवा करनेमें है।'

'वैदेही ! हम सब तो दासियाँ हैं। हमको क्षमा करना।' सबने मस्तक रखा अम्बाके सामने भूमिपर—'अब तुम थोड़ा विश्राम करलो। हमारे रहनेसे तुम्हें उद्विग्नता होगी। हम सब अब घर जाती हैं। हमें भी निद्रा आरही है।'

भले वे क्रूरा कुरूपा राक्षसियाँ थीं, उनकी समझदारी प्रशंसा योग्य थी। रात्रिके इस चतुर्थ प्रहरमें उन निशाचरियोंको निद्रा सतावे, यह भी स्वाभाविक था और अम्बाको इस समय अकेली छोड़नेसे अधिक उचित सेवा दूसरी थी नहीं।

'सखि त्रिजटे ! अब यह सहनेमें मैं असमर्थ होगयी हूँ। तुम मुझ असहायाकी थोड़ी सहायता करनेकी कृपा और करो !' परमपुरुषकी नित्य अभिन्ना महाशक्ति जगज्जननी एक क्षुद्र निशाचरीसे इस प्रकार अनुनय करें, यह देखकर किसका हृदय विदीर्ण नहीं होगा। वे कातरकण्ठ कह रही थीं—'थोड़ी अग्नि लादो। कदर्य, राक्षसकी घृणित वासनापूर्ण बातोंको सुननेकी शक्ति मुझमें नहीं है और अपने दयामय आराध्यकी उपेक्षा भी अब सही नहीं जाती। मैंने उनके अनुजको तिरस्कृत किया था। वे भक्तापराध क्षमा नहीं करते—जानती हूँ। यह उनके करोंसे सत्कृत शरीर पापी परुषादका आहार बने, इससे पूर्व मैं इसे पावकको सर्मपित कर दूँगी। मेरे वस्त्रोंमें लगा अग्नि मुझे दग्धकर देनेको पर्याप्त है।'

'राजकुमारी ! हम रात्रिचरोंकी परम्परा है कि रात्रिमें किसीको भी अग्नि नहीं देते।' मैंने देखा कि त्रिजटा भी व्याकुल हो उठी थी।

वह उठकर खड़ी हो गयी—'इसे हम अपने लिए अपशकुन मानते हैं। अतः इस समय आप मुझे क्षमा करें।'

त्रिजटा चुपचाप चली गयी। जाते-जाते उसने अम्बाको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। उसके कुछ दूर जाते ही व्याकुल, एकाकिनी अम्बाने चारों ओर देखा—'हाय, अभागिनी ! तुझे कोई एक अग्नि-चिनगारी देने वाला भी नहीं है ? तेरा शरीर नैकषेयोंका आहार बने, यही तेरी नियति है ? किन्तु तब यह एक मास पीछे क्यों ? एक मास और इस नारकीय पीड़ाको भोगकर, राक्षसाधमकी न सुनने योग्य अपावन चर्चा सुनकर तुझे मरना ही है तो अभी मरणमें क्या हानि है ? अग्निदेव तेरे तनकी आहुति नहीं लेना चाहते, न सही। इतनी दीर्घ वेणी है तेरी। इसे कण्ठमें लपेटकर तरु-शाखासे बाँध तू लटक जासकती है। तेरे निष्प्राण देहको फिर दशग्रीव खा ले या और कोई, तुझे क्या करना है ?'

'मेरे आराध्य ! मेरे अन्तर्यामी ! इस दासीको क्षमा करना।' वे महिमामयी उठ खड़ी हुई। नीचे तक पहुँची एक शाखाको उन्होंने कर उठाकर स्पर्श करके देखा—'देव ! भले यह आपके श्रीचरणोंका दर्शन पाये बिना देहत्याग कर रही है, दिग्देवता साक्षी रहें, यह केवल आपकी है—जन्म-जन्मान्तर तक आपकी ही। इसे आगे अपना लेनेकी दया करना नाथ !'

'इक्ष्वाकुवंशीय अयोध्याके चक्रवर्ती सुरेन्द्र-सखा महाराज दशरथके चार कुमार हुए।' मैं और देखने-सुननेमें असमर्थ होकर बोलने लगा—'नूतन सृष्टि समर्थ महर्षि विश्वामित्र भी जब राक्षसोंके उत्पातको शमन करनेमें समर्थ नहीं हुए,अयोध्या जाकर चक्रवर्ती महाराजसे उनके दो कुमार माँग लाये। उन किशोरकुमारोंने क्रीड़ामें उन राक्षसोंकी आहुति दे दी अपनी शराग्निमें। महर्षि उन्हें लेकर मिथिला चले तो बड़े कुमारने अपनी चरण रजसे पाषाणीभूता अहल्याका उद्धार कर दिया। जनकपुरमें पुरारिका पिनाक उनके पौरुषसे खण्डित हो गया और परशुराम उनको अपना धनुष देकर स्तुति करके विदा होनेको बाध्य हुए। महाराज दशरथ बरात लेकर आये। चारों राजकुमारोंको विवाह करके मिथिलासे अयोध्या लौटे।'

मैंने देख लिया कि अम्बा शान्त उद्ग्रीव स्थिर खड़ी सुनने लगी हैं। उनके कपोलोंपर अजस्र प्रवाहित अश्रुधाराका प्रवाह बन्द हो गया है। उनके नेत्रोंमें आश्चर्य है। मैं कहता गया—'महाराज्ञी कैकयीको केवल कलङ्क मिलना था। सुरोंका षड्यन्त्र सफल हुआ। श्रीराम पिताके वरदानको

सार्थक करने अनुज एवं भार्याके साथ चौदह वर्षके लिए वन पधारे तो चक्रवर्ती महाराज प्राणधारण नहीं कर सके। अब तो अवधिकी प्रतीक्षा करते श्रीभरत अपने अग्रजकी पादुकाओंका पूजन कर रहे हैं।'

मैंने प्रभुके श्रीमुखसे जो सुना था, वही कह रहा था—'श्रीरघुनाथ चित्रकूटसे दण्डकारण्य आये तो सूर्पणखाको राक्षसोंका काल वहाँ लेगया। छोटे कुमारके द्वारा उसके नासिका-कर्ण क्या काटे गये, वह खर-दूषणकी सम्पूर्ण सेनाको श्रीरामकी शराग्निमें भस्म करवाके भी सन्तुष्ट नहीं हुई। उसीकी प्रेरणासे दशग्रीव मायावी मारीचको लेकर जनस्थान पहुँचा। मारीच मायामृग बनकर भी मुक्ति पागया श्रीरामके शरसे मरकर; किन्तु दशग्रीव भी वैदेहीको छलपूर्वक हरण करनेमें समर्थ हो गया। महाप्राण गीधराज जटायु वृद्ध थे, बाधक बनकर वे महाभाग दुष्ट राक्षसके खड्गसे आहत ही हुए। मुझपर अनुग्रह किया करुणाधाम श्रीरामने—उनके आदेशसे भगवती भूमिजाके अन्वेषणमें निकले हम असंख्य चरोंमें-से मेरी यात्रा आज सफल हुई।'

'आप कौन हैं?' अम्बाने सान्द्रकण्ठ कहा—'इस असहाया, आपद्-ग्रस्ताके श्रवणोंमें सुधाधारा सहसा प्लावित करने वाले आप अपने दर्शनसे इसे पवित्र क्यों नहीं करते? सम्मुख पधारें आप।'

मैं धीरे-धीरे शाखाओंपर होता वृक्षपर से उतरा। सहसा कूद पड़नेकी धृष्टता मैं कर नहीं सकता था; किन्तु उतरकर भी मैं भयाकुल हो उठा। अम्बा आर्त होकर प्रायः क्रन्दन कर उठीं—'विद्युत्पुञ्ज पिङ्गल, क्षेमकरी (चील) सदृशाकार वानर बनकर मायावी राक्षस मुझे सताने आया है? तू मुझे भक्षण ही क्यों नहीं कर लेता?'

'अम्ब! मैं सत्यकी, आपके श्रीचरणोंकी और अपने आराध्य श्रीरघुनाथकी शपथ करता हूँ, मैं वानर ही हूँ। मेरा नाम हनुमान है।' मैंने उन अवनतवदना, व्याकुलाके सम्मुख अञ्जलि बाँधकर, मस्तक झुकाकर, लगभग रोते हुए प्रार्थना की—'आप श्रीरघुनाथके इस तुच्छ अनुचरपर अविश्वास मत करो!'

'तुम वानर हो?' अम्बाने सशङ्क मेरी ओर देखा—'तब नरके साथ तुम्हारा परिचय कैसे हुआ? तुम उनके अनुचर कैसे बन गये? मैं तो उनके किसी वानर अनुचरको नहीं जानती।'

'अम्ब ! आपने कदाचित् किष्किन्धाके वानरराज बालिका नाम सुना हो ?' मैंने पूछा। उन परमपूजनीयाने सिर हिलाकर संकेत किया कि यह नाम उनका सुना है। मेरे लिए अब विवरण देना सरल हो गया—'अपने अनुज सुग्रीवको उसने मारकर निकाल दिया था। सुग्रीवके साथ उनका सेवक मैं ऋष्यमूकपर था, जब अनुजके साथ आपके आराध्य आपका अन्वेषण करते पम्पासर पहुँचे थे। सुग्रीवको सशङ्क रहना पड़ता था। उनकी आज्ञासे मैं दोनों भाइयोंका परिचय प्राप्त करने गया। आप जानती ही हैं कि सम्मुख आये प्राणीको शरण देना श्रीरघुनाथका सहज स्वभाव है। मेरे जैसे तुच्छ वानरको भी उन्होंने अपना लिया। मेरी प्रार्थना स्वीकार करके सुग्रीवको मित्र बना लिया। बालिको मारकर सुग्रीवको वानरेन्द्र बनादिया। सुग्रीवने सहस्रशः वानर आपका अन्वेषण करने भेजे हैं। आपको सम्भवतः स्मरण होगा कि जब दुष्ट दशग्रीव आपको लेकर गगन-पथसे भाग रहा था, गिरि-शिखरपर हम वानरोंको बैठे देखकर आपने अपने वस्त्रमें बाँधकर कुछ आभूषण गिराये थे हमारे समीप। प्रभुने अपने नामाक्षरोंसे अङ्कित मुद्रिका मुझे दी है आपको प्रदान करनेके लिए जिससे आप मुझे उनका सेवक मान सकें।'

मैंने मुद्रिका मुखसे अञ्जलिमें ली। उसे प्रक्षालित करनेका अवसर नहीं था। वैसी ही अञ्जलि अम्बाके सम्मुख कर दी। उन्होंने आतुरतापूर्वक उसे उठाया। उसपर रत्नाक्षराङ्कित नाम देखा और उसे हृदयसे लगाकर विह्वल हो गयीं। अम्बाका रोम-रोम पुलकित हो उठा। उनके नेत्रोंसे पुनः धारा-स्राव होने लगा। मैं नीरव खड़ा रहा।

'हनुमान ! तुम निश्चय श्रीरघुनाथके भक्त हो !' थोड़ी देर लगी अम्बाको शान्त होनेमें। वे जब बोलने लगीं—तब भी उनका कण्ठ भरा था—'मेरे समीप मेरे स्वामी अविश्वसनीय पुरुष प्रेषित कर नहीं सकते और उनकी यह मुद्रिका माया-निर्मित नहीं है। मैं इसे भली प्रकार पहिचानती हूँ। कोई कितना भी मायावी हो, उनके नामको मायासे निर्मित करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। तुमने तो मेरे प्राणोंकी रक्षा की है।'

'मात्र छुद्र कपि हूँ मैं अम्ब ! कुछ करनेमें असमर्थ !' मैंने भूमिपर मस्तक रखा—'यहाँ तक पहुँच सका, यह भी उन सर्वसमर्थकी अनुकम्पा !'

'तुम तो अतल उदधिमें डूबती मुझ निरावलम्बाकी तरणि बन गये !' अम्बने सस्नेह देखा मेरी ओर—'किन्तु क्या मेरे प्रभु इस किङ्करीका भी कभी स्मरण करते हैं ? वे इसका उद्धार करने पधारेंगे ? दारुण दशग्रीवने

एक मास मेरी जीवनावधि निश्चितकर दी है। इससे पूर्व प्रभु आ सकें, तभी जानकी उन्हें जीवित मिलेगी।'

'आप इस प्रकार क्यों सोचती हैं ? मेरे स्वामी आपके वियोगमें अहर्निशि व्याकुल रहते हैं। उनकी वेदना मैंने देखी है। आप इसीसे अनुमान करलें कि मुझे उनकी व्यथा आपसे द्विगुण लगती है। मैं चलने लगा तो उन्होंने आपसे कहनेके लिए सन्देश दिया।'

'उन्होंने इस दासीका स्मरण किया ? क्या कहा है उन्होंने ?' अम्बाने आतुरतापूर्वक पूछा।'

मैंने प्रार्थना की—'अम्ब ! प्रभुके ही शब्द दुहरानेके लिए आप मुझे क्षमा करें ! उन्होंने कहा है........।' मैं संकोचके कारण बोल नहीं सका।

'तुम उनके ही शब्द सुना दो !' आग्रह किया अम्बाने और तब मैंने सुना दिया—

'विदेह-नन्दिनी ! रामका शरीर ही केवल यहाँ है। मुझे पता नहीं है, इस शरीरमें श्वास कैसे चलता है। मेरा मन तुम्हारे ही समीप सदा रहता है। और कैसे कहूँ ?'

'मेरे स्वामीने यह कहते हुए कमल-लोचन बन्दकर लिये थे। उनसे अश्रुधारा चल पड़ी थी।' मैंने कहा—'अम्बा ! आप चिन्ता त्याग दें। दशग्रीवने स्वयं अपनी और सम्पूर्ण राक्षस कुलकी आयु-अवधि निश्चित की है। शीघ्र श्रीरघुनाथ हम कपियोंकी महासैन्य लेकर यहाँ आवेंगे और राक्षसोंको मारकर आपको ले जायँगे।'

'कपियोंकी महासेना !' अम्बा इस दारुण दशामें भी हँसी—'सब कपि तुम्हारे ही समान तो होंगे ? राक्षस कदाचित तुमने देखे नही हैं। वे पर्वताकार महाबलवान निसर्ग क्रूर हैं।'

मुझे लगा कि अम्बाको आश्वस्त किया जाना चाहिए। अब यहाँ मेरे छिपे रहनेकी आवश्यकता नहीं थी। भगवती भूमिजाके श्रीचरणोंका दर्शन करके मैं इन्हें प्रभुका सन्देश दे चुका। अब तो राक्षसोंसे सम्भव हो तो रावणसे भी साक्षात् कर लेना था मुझे। मैंने अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया। वही पर्वताकार रूप जो जाम्बवन्तके सम्मुख आवेशमें आनेपर

प्रकट किया था। अञ्जलि बाँधकर मैंने प्रार्थना की—'मैं वन-उपवन, भवन-परकोटे सहित सम्पूर्ण लङ्का ही नहीं, समूचा त्रिकूट उठाकर ले जानेमें समर्थ हूँ। दशग्रीव मेरे सम्मुख अल्पप्राण मसक है। आप आज्ञा दें ! अथवा आप मेरे स्कन्धपर विराजें, मैं अभी आपको रघुनाथके समीप ले चलता हूँ। उन परमपुरुषके अनुग्रहसे इस पवन-पुत्रको रोकनेमें ये राक्षस समर्थ नहीं हैं।'

'निश्चय तुम ऐसा करनेमें समर्थ होगे !' अम्बाने स्वस्थ कण्ठसे कहा—'किन्तु मैं जान-बूझकर पर-पुरुषका स्पर्श नहीं कर सकती। दशग्रीव मुझे उठाकर ले आया तब मैं विवश थी। श्रीरघुनाथका भी इसीमें सुयश है कि वे स्वयं तुम सबके साथ आकर दुर्दान्त राक्षसोंका दलन करके मेरा उद्धार करें !'

मैंने अपना रूप संकुचित कर लिया। उतना छोटा मैं नहीं बना जितना बनकर यहाँ आया था। मेरा शरीर वैसा हो गया जैसा सामान्य रूपसे किष्किन्धामें रहा करता था।

'मैं प्रसन्न हूँ हनुमान ! तुम वरदान माँग लो वत्स !' अम्बाने हर्षित होकर कहा।

'आपने मुझे वत्स कह दिया, मैं पूर्णकाम हो गया। यह हनुमान आपका कपि-पुत्र है। आप इसे स्मरण रखें—बस !' मैंने अब अम्बाके चरण पकड़ लिये।

'सीताने स्वप्नमें भी श्रीरामके अतिरिक्त किसी पुरुषका स्मरण नहीं किया है तो इसकी वाणी सत्य हो !' अम्बाने आशीर्वाद दिया—'तुम अजर, अमर, निर्विकार देह, अनन्त बल, पौरुष, पराक्रम, विद्या-बुद्धिशाली हो जाओ। सब सिद्धियाँ तुम्हें सहज प्राप्त रहें ! सब सद्गुण तुममें नित्य निवास करें ! तुम्हारा स्मरण प्राणीको आपत्तिमें परित्राण दे और उसकी कामना पूर्ण करे। श्रीरघुनाथ सदा तुमपर सानुकूल रहें।'

अम्बा आशीर्वाद दिये चली जा रही थीं और मैं हक्का-बक्का उनका श्रीमुख देख रहा था। वे निखिल लोकेश्वरी, पराशक्ति—उनका स्नेह उमड़ पड़ा—लेकिन ! लेकिन ! और जब अपने आशीर्वादका अन्तिम वाक्य उन्होंने कहा, मेरे प्राण परितृप्त हो गये। मैंने उनके श्रीचरण दोनों करोंसे

पकड़ लिये। उनपर मस्तक रख दिया। मेरे आनन्दाश्रुओंने उन पादपद्मोंको प्रक्षालित कर दिया।

'मेरे बच्चे ! वत्स हनुमान !' अनन्त वात्सल्य महासागर उच्छलित हो उठा स्वरमें। वे मेरे मस्तकपर अपने अरुणकर फिरा रही थीं। हनुमानका जन्म सार्थक हो गया। धन्य हो गया हनुमानका शरीर। कृत-कृत्य हो गया यह कपि। अम्बाका—परम महाशक्ति अम्बाका हनुमान स्नेहभाजन ज्येष्ठ सुत हो गया और सदा रहा। सदाके लिए यह वात्सल्य इसका स्वत्व बन गया।

—:×:—

२४—फलाहार : वाटिका-विध्वंस

'अम्ब ! कल प्रातःसे मेरा उपवास चल रहा है। परसों भी मध्याह्नके कुछ पश्चात् थोड़े फल प्राप्त हुए थे। आपके अन्वेषणकी चिन्ताने क्षुधाको विस्मृत कर दिया था।' मैंने देखा कि जगन्माता इधर-उधर खिन्न देखने लगी हैं। उन असहायाके समीप यहाँ क्या धरा था और उनका परम वात्सल्य-भाजन बच्चा भूखा है, यह उनके लिए असह्य था। वे वरदान देकर सदाके लिए मेरी क्षुधा शान्त कर दें, इससे पहिले ही मैंने कहा—'यहाँ इस वाटिकामें इतने नाना रंगोंके पक्व फलोंके वृक्षोंको इस अरुणोदय कालमें देखकर मेरी क्षुधा अधिक बढ़ गयी है। हम वानर वैसे भी प्रातः उठते ही उदरपूर्ति करनेके अभ्यासी होते हैं। अतः यदि आप अनुमति दें........!'

'यह वाटिका दशग्रीवको अत्यन्त प्रिय है। उसने यहाँ बहुत बलशाली रक्षक नियुक्त कर रखे हैं!' अम्बाने मेरी ओर देखा। कुछ खिन्न, कुछ आशङ्कित स्वरमें कहा—'तुम उन रक्षकोंको पराजित भी करलो तो उनकी सहायताको असंख्य आ सकते हैं।'

'रक्षकोंकी, राक्षस-सैन्यकी और स्वयं दशग्रीवकी चिन्ता मुझे नहीं है। अब तो आपके आशीर्वादसे मैं अजर-अमर भी होगया हूँ। मुझे प्रभुके समीप पहुँचनेसे पूर्व दशग्रीवको देख लेना चाहिए। उसकी शक्तिका अनुमान कर लेना चाहिए किन्तु....' मैंने मस्तक झुकाकर प्रार्थना की—'हम वानर स्वभावसे चपल होते हैं। हम केवल फल तोड़कर शान्त बैठकर आहार नहीं करते। आहार-ग्रहणके समय उछलना-कूदना हमारी प्रकृति है और इसमें शाखाएँ टूटती हैं, वृक्ष भी गिरते हैं। यदि मेरी इस चपलतासे आपको कष्ट न हो—मैं इस शिंशुपा तरुसे दूर रहूँगा ; क्योंकि इसके फल तो पक्षीके लिए भी अखाद्य हैं।'

'हनुमान ! तुममें प्रभूत पराक्रमके साथ प्रबुद्ध प्रतिभा है।' अम्बाने अनुमति दी—'तुम यथेच्छ आहार करो ! जो भी कुछ तुम्हें प्रिय एवं आवश्यक प्रतीत हो, करो ; किन्तु वत्स ! राक्षस मायावी हैं। उनसे अपनी रक्षाके प्रति सावधान रहना ! सीताका स्नेह और आशीर्वाद तुम्हारे साथ है !'

'अम्ब ! आपने भी वानरके पराक्रम-प्रतिभाकी अच्छी प्रशंसा की। वह जो कुछ है—अभी ही आपने प्रदान किया है।' मैंने पुनः पद-वन्दना की। अब पर्याप्त प्रकाश हो गया था। वहाँसे मैं कूदकर उपवनके फलोद्यानमें पहुँच गया।

मैंने प्रायः पूरी लङ्का देखी थी ; किन्तु रात्रिमें देखी थी। उस समय मेरा ध्यान केवल अम्बाके अन्वेषणकी ओर था। मैंने तब नगर-रचनाकी ओर ध्यान ही नहीं दिया था। मेरे स्वामीको इस राक्षस-राजधानीपर आक्रमण करना है। मैं उनका अग्रचर हूँ। उनके लिए पथ-प्रशस्त करना मेरा कर्तव्य है। यह राक्षसराजका अत्यन्त दुर्गम दुर्ग है। इसके प्रत्येक द्वारपर स्वतःचालित अद्‌भुत शक्तिशाली यन्त्र हैं। इस पुरीमें कोई शत्रु-सैन्य प्रवेश नहीं पा सकता। मुझे सम्भव हो तो इन यन्त्रोंको ध्वस्त कर देना चाहिए। दशग्रीव तथा उसके शूरोंकी शक्ति, स्वभाव, दुर्बलताका परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए। यहाँ के लोगोंको आतङ्कित करके इनका उत्साह भङ्ग कर देना चाहिए। यहाँके पथ, वीथियों तथा गुप्त मार्गोंसे परिचित होनेके साथ प्रधान-प्रधान राक्षस-नायकोंके निवास, शस्त्रागार, शिक्षण एवं सङ्कटके समयके शरण-स्थल देख लेना चाहिए और राक्षसोंका मनोबल तो गिरा ही देना चाहिए।

बिना उत्पात किये मैं यह कुछ कर नहीं सकता था। अतः मैंने पूरे उच्चस्वरमें 'हूप हूप' करके कूदना प्रारम्भ किया। एक वृक्षसे एक फल तोड़कर मुखमें डाला और मान लिया कि वृक्ष उच्छिष्ट होकर व्यर्थ हो गया। व्यर्थ वृक्ष तो वाटिकामें रहने योग्य नहीं होता, अतः मैं उसे उखाड़ फेंकता था। उस वृक्षके धक्केसे, मेरे कूदनेसे, मेरे शरीरके धक्केसे शाखाएँ टूटती थीं और वृक्ष गिरते थे, इसे मेरा दोष नहीं कहना चाहिए। दशग्रीव अपनेको त्रिभुवनजयी कहता है तो उसने ऐसे दुर्बल वृक्ष अपनी वाटिकामें क्यों लगाये कि वे एक वानरके वेगको भी न सह सकें।

'बड़ा सुन्दर तर्क है आपका।' रघुकुलके बालकोंने प्रसन्न होकर तालियाँ बजा दीं—'अच्छा हुआ कि आप जैसे तार्किक चक्र चूड़ामणिने लङ्कामें ही इस अपने प्रकाण्ड तर्कका त्याग कर दिया और अन्यत्र कहीं इसका उपयोग नहीं किया। लेकिन वहाँ उपवन-रक्षक भी तो थे ?'

उपवन-रक्षक थे—संख्यामें प्रचुर थे ; किन्तु दुर्बल थे। सच तो यह है कि परमपुरुष श्रीरघुनाथकी अनुकम्पा और आद्या महाशक्ति अम्बाके आशीर्वादके सम्मुख सृष्टिमें कोई सबल हो नहीं सकता। मुझे दोनों प्राप्त थे, अतः भले मैं उपेक्षणीय छुद्र वानर था, लङ्कामें आगे भी युद्ध भूमिमें राक्षस मुझे अल्पप्राण ही लगे। रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद—नाम लेने योग्य केवल तीन थे ; किन्तु वे भी मुझे महाप्राण, सबल कभी नहीं लगे। उपवन-रक्षकोंने अस्त्र-शस्त्र लेकर कोलाहल करते हुए मुझे घेरने या मार देनेका प्रयत्न किया। मैंने कुछ वृक्ष उनकी ओर उछाल दिये। यह मैं कैसे गिन सकता था कि उनमेंसे कितनोंका अङ्ग-भङ्ग हुआ और कितनोंके शव कुचले, फटे वृक्षोंसे दबे पड़े थे।

इतने दुर्बल वृक्ष लोकजयी दशग्रीवकी वाटिकामें क्यों होने चाहिए जो एक कपिके कूदनेके भारसे टूटें या गिर पड़ें ? रावणको वाटिका ही चाहिए तो सुदृढ़ वृक्ष लगवाये। मैंने उसके बल-विक्रम, आकारके सर्वथा विपरीत लगने वाली वह वाटिका उजाड़ दी। उसके बहुत-से वृक्ष उखाड़ फेंके। शाखाओंके भग्न होनेसे कुछ ठूँठ प्राय खड़े थे।

वहाँ सरोवरके समीप एक विशाल शिव-मन्दिर था। इन अधम राक्षसोंकी पुरीमें भगवान वृषभध्वजके मन्दिरका क्या काम ? चन्द्रमौलिको

कैलासपर, वाराणसीमें या अयोध्यामें रहना चाहिए। उन महावैष्णवको इन आमिषाशी पापिष्ठ राक्षसोंने यहाँ बैठा लिया तो व्यथित नहीं होते होंगे ये नीलकण्ठ ? मैंने उनके लिए भी वहाँसे निकल जानेका पथ प्रशस्त किया। मन्दिरका प्राकार मैंने जब ध्वस्त कर दिया, आशुतोष प्रतिमा-परित्याग करके अपनी पावनपुरी पधारे। अब मैं उसी मन्दिरका एक विशाल स्तम्भ उखाड़कर ध्वस्त प्राचीरके खण्डहरपर बैठकर प्रतीक्षा करने लगा। दशग्रीव अधिक राक्षस भेजने ही वाला था।

विभीषणजी जब श्रीरघुनाथके शरणापन्न होकर साथ रहने लगे, तब उन्होंने मुझे एक दिन बतलाया था—'हनुमानजी ! आप उस रात्रि मुझसे विदा होकर चले गये, तब आपके सम्बन्धमें मैं बहुत चिन्तित हो उठा था। स्नान, सन्ध्यादिमें मेरा चित्त उस दिन एकाग्र नहीं हुआ। आराध्यकी अर्चामें बैठनेसे पूर्व मैंने एक विश्वस्त सेवक राक्षसेश्वरके सदनमें भेज दिया। वह राज प्रतीहार था। उससे आपके समाचार लगभग सूर्योदयके समयसे ही आने आरम्भ होगये।'

'विभीषणजीसे प्राप्त वर्णन सुना दीजिये !' बालकोंने आग्रह किया। मैंने वह वर्णन सुनाया—

प्रथम बार आये चरने बतलाया था कि अशोक वाटिकाके रक्षकोंमें-से तीन दौड़े आये थे। उनमें-से सब रक्त-स्नात थे। उनके मस्तक, कन्धे आहत थे। एकका एक हाथ, दूसरेका एक पैर कुचल कर लटकने लगा था। उनके क्रन्दन-पुकारके कारण राक्षसेश्वरको अन्तःपुर-रक्षिकाने जगाकर समाचार दिया। निद्रासे प्रभातमें—दिनके प्रथम प्रहरके अन्तमें उठने वाले राक्षसेन्द्र उठाये जानेके कारण क्रोधमें भरे राजसभामें आ बैठे। उनके अरुण-नेत्र, कुटिल-भृकुटि—उन्होंने बैठते ही मन्त्रियोंको, सेनापतियोंको बुलानेकी आज्ञा दी और उपवनसे आये रक्षकोंको बुला लिया।

उपवन-रक्षकोंने निवेदन किया—'आपके अशोकोपवनमें पता नहीं, कैसे एक स्वर्णपीतरोमा, असाधारण वानर आगया है। सीताके समीप रहने वाली रक्षिकाएँ कहती हैं कि उन्होंने दूरसे देखा है कि उस वानरने सीतासे बात की है।

'दूरसे क्यों ? वे कहाँ चली गयीं थीं सब ? सीताको क्यों एकाकिनी छोड़ा गया ?' दशग्रीवने क्रोधपूर्वक ओष्ठ दाँतोंसे दबाया।

'वे सब रोरही हैं। उनका कहना है कि आप जब रात्रिके अन्तमें अशोकोपवनमें सीताके समीप गये थे, महाराज्ञी साथ थीं।' उन रक्षकोंको क्या पता था कि राक्षसियाँ भयके कारण मिथ्या-भाषण कर रही थीं। उन्होंने जो सुना था, सुनाया--'तब लौटते समय वे इस आशङ्कासे कि सम्भव है, प्रभु पुनः उन्हें कुछ आदेश करें, आपका अनुगमन करती राजसदन तक आगयीं। यहाँ भी कुछ काल आदेशकी प्रतीक्षामें द्वारके बाहर रहीं। जब लगा कि नवीन आदेश नहीं मिलना है, वे लौट गयीं। सम्भवतः प्रभुने वहाँ वाटिकासे प्रयाण करते समय उनसे कुछ कहा था। इसीसे उन्हें भ्रम हुआ कि राजसदन पहुँचकर सम्भव है, आप और कुछ आदेश करें।'

विभीषणको चरने कहा था कि राक्षसेन्द्रने यह चर्चा टाल दी। मैं समझ गया कि अम्बाने राक्षसियोंके सम्मुख ही जो दशग्रीवका तिरस्कार किया था, वह चर्चा कहीं न उठे, इसलिए वह इस प्रसङ्गको टाल गया। उसने केवल यह पूछा--'सीतासे पूछा नहीं गया ?'

"राक्षसियोंने पूछा था।' आहत राक्षसोंने क्रोधपूर्वक कहा—'वह कहती है कि 'तुम राक्षसोंकी माया तुम्हीं जानो।' कपिके सम्बन्धमें कुछ कहनेको वह प्रस्तुत नहीं।"

'अब कहाँ है ? क्या किया है उसने ?' दशग्रीवने पूछा।

'उसने क्या नहीं किया है।' आहत रक्षक रुदन करते बोले—'हमारी दशा आप देख रहे हैं। आपके अन्य उपवन-रक्षकोंको उसने मार डाला। वाटिकाके समस्त फल एवं पुष्प-वृक्ष उखाड़ फेंके या तोड़ दिये। सरोवरके समीपका चैत्य-प्रासाद भी भग्नकर दिया उसने। अब उस प्रासादके भग्न-द्वारपर एक स्तम्भ उखाड़कर समीप रखे निश्चिन्त बैठा है। लगता है कि कोई नया उपद्रव करनेकी सोच रहा हो।'

विभीषणने बतलाया कि राक्षसेश्वर स्वप्न देख रहे थे, जब उन्हें जगाया गया। स्वप्नमें भी कोई वानर उनके वस्त्र फाड़ रहा था, उन्हें नोच रहा था। अपनी अत्यन्त प्रिय वाटिकाके उजाड़े जानेसे वे बहुत क्रुद्ध हुए। उसने निद्रासे जगाये, आतुर दौड़कर आये सेना-नायकोंको अभिवादनका अवसर भी नहीं दिया। तत्काल बड़ी सेना लेकर वानरको बन्दी बनाने और यह सम्भव न हो तो मार देनेकी आज्ञा दी। उनका नायक था प्रहस्तका पुत्र जम्बुमाली।'

यह सेना आयी थी, मैं इतना ही कह सकता हूँ। मुझे प्रसन्नता हुई थी। वह मन्दिरका उखाड़ा स्तम्भ लेकर मैं कूद पड़ा था। कुछ पलोंमें वहाँ राक्षसोंके चिथड़े पड़े थे। थोड़े आहत भाग गये होंगे। विभीषणने ही बतलाया कि दूसरी बार राक्षसेश्वरके मन्त्रीके सात पुत्र आये थे सेना लेकर। तीसरी बार विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस, भासकर्ण—ये पाँच सेनापति सेनाके साथ राक्षसराजने भेजे थे। चौथी बार रावणने अपने पुत्र अक्षयकुमारको भेजा था।

मेरे लिए इन नामोंका कुछ अर्थ नहीं था। राक्षस महाकाय थे। उनमें कुछ अपने यहाँ पराक्रमी भी माने जाते होंगे। रावणपुत्र अक्षयकुमारने तो कुछ क्षण मुझसे आकाशमें भी युद्ध किया था। वही था जिसने मेरे हाथके स्तम्भको अपने वाणोंसे टुकड़े कर दिये थे ; किन्तु अन्तमें मेरी मुष्टिकाने उसकी भी कपाल-क्रिया कर दी।

विभीषणका कहना था—"अक्षयकुमारकी मृत्यु सुनकर राक्षसेन्द्र व्याकुल हो उठे थे। कठिनाईसे अपनेको स्थिर करके उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रजितको बुलानेका आदेश दिया। स्वाभाविक था कि अनुजका वध सुनकर मेघनाद अत्यन्त क्रोधमें भरा आया था। उसने पिताको प्रणाम करके कहा—'मैं उस अधम वानरको आग्नेयास्त्रसे भस्म कर दूँगा।"

"मेघनादका यह मिथ्याभिमान था, यह उसे शीघ्र समझमें आनेवाला था ; किन्तु दशग्रीवने अपनेको तब तक स्थिर कर लिया था। उसने पुत्रसे शान्त स्वरमें कहा—'वत्स। वानरका वध मत करना। उसे बन्दी बनाकर ले आना। वह एकाकी है, यह सत्य होनेपर भी सत्य नहीं है। आवश्यक है यह जानना कि वह कहाँसे आया? किसने उसे भेजा? हमारी राजधानीमें इतना उत्पाती कपि भेजनेका जो साहस कर सकता है, उस शत्रुका पता हमारे लिए बहुत आवश्यक है। कपि मर गया तो हम वास्तविक शत्रुको ही नहीं जान सकेंगे।"

विभीषणके इस विवरणको सुनकर दशग्रीवकी नीति-कुशलताकी मैंने प्रशंसा की। मेघनादके साथ आने वाले राक्षस उसका नाम लेकर जयघोष कर रहे थे। इस जयघोषने मुझे सावधान किया। इन्द्रजित जैसे अस्त्रज्ञ त्रिभुवनमें कम ही थे। मैं उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता था। भग्न मन्दिरके

ध्वजदण्डपरसे मैं उतरा। मैंने वह ध्वज-दण्ड उखाड़ लिया। मेघनादकी मैंने उपेक्षा कर दी और साथ आये राक्षस सैनिकोंके संहारमें लग गया।

मैं मेघनादको एकाकी कर देना चाहता था। वह अपने धनुषसे वाणोंकी झड़ी लगाकर मुझे रोकनेके प्रयत्नमें लग गया। उसके शरोंने भले सुरोंको संत्रस्त किया हो, मेरे शरीरपर लगकर उनके अग्रभाग ही टूट सकते थे। मुझे उनकी ओर ध्यान देनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं थी। कुछ क्षण लगे—सब राक्षस या तो यमालय जा चुके थे या आहत होकर भाग गये थे। अब मैं मेघनादसे द्वन्द्व-युद्ध कर सकता था।

विभीषणने बतलाया था कि दशग्रीवने चलते समय अपने इन्द्रजित पुत्रसे कहा था—'लगता है, वह वानर अमेय शक्ति है। वह साधन-विशेषसे अवध्य हो सकता है। उसके बलको समझकर सावधान रहना। अपने सब दिव्यास्त्र ले जाओ। अथवा मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।'

"मेघनादने पिताको प्रणाम करके कहा था—'मेरे रहते आप क्यों कष्ट करेंगे ? मैं उस वानरकी चञ्चलता शान्त कर दूँगा। आप निश्चिन्त रहें !' पिताकी परिक्रमा करके वह आया था। उसने अपने सब दिव्यास्त्र साथ ले लिये थे।"

ध्वजदण्ड शीघ्र मेघनादके वाणोंने काट दिया। मैंने जो भी वृक्ष या स्तम्भ उठाया, उसे वह क्षणार्धमें शतशः खण्ड करता गया। उसके हस्तलाघवकी मुझे प्रशंसा करनी पड़ी ; किन्तु वह भी हतबुद्धि मुझे देखता रह गया जब उसके वायव्यास्त्रने उड़ाकर समुद्रमें फेंकनेके स्थानपर किञ्चित् भी कम्पित नहीं किया। मुझ पवनपुत्रका वायव्यास्त्र क्या बिगाड़ लेता ? निष्प्रभाव हो गया उसका पर्वतास्त्र भी। इसी समय मुझे अवसर मिला और मैंने उसके ऊपर मुष्टि-प्रहार किया। मेरी मुष्टिसे पर्वत भी चूर्ण हो जाता ; किन्तु इन्द्रजित वरदानके प्रभावसे रक्षित था। वह घूमकर गिरा और मूर्छित हो गया।

मर्यादा पुरुषोत्तमका सेवक मैं मूर्छित शत्रुके उठकर सावधान होनेकी प्रतीक्षा ही कर सकता था। मेघनाद जब उठा, उसने भी समझ लिया कि सम्मुखका कपि दूसरी मुष्टिका धर देनेका अवकाश पा गया तो क्या होगा। उसने धनुषपर सीधे ब्रह्मास्त्र-सन्धान किया।

ब्रह्मास्त्रसे भी मैं अवध्य था ; किन्तु सृष्टिकर्ताके इस अमोघास्त्रकी मर्यादा मर्यादापुरुषोत्तमका सेवक ही मिटा दे, यह किसी प्रकार उचित नहीं था। भगवान ब्रह्माके वरदानके कारण मुझे ब्रह्मास्त्रने कोई कष्ट नहीं दिया। वह प्रज्वलित शर मेरा स्पर्श करके अन्तरिक्षमें चला गया ; परन्तु मैंने उसकी मर्यादा मानली। दशग्रीवने पुत्रकी सहायतार्थ और सैनिक भेजे थे। वे मेरे समीप आ गये थे। मैंने मूर्छा स्वीकार की और गिरते समय भी अपने शरीरसे उन राक्षसोंमें अनेकोंका कचूमर कर दिया।

मेघनाद बुद्धिमान था। कृतविद्य था। उसे यह समझनेमें क्षण भरका भी विलम्ब नहीं हुआ कि मेरी मूर्छा क्षणिक है और मैं केवल ब्रह्मास्त्रकी मर्यादा मानता हूँ। उसने अविलम्ब ब्रह्मपाशसे मुझे बाँधा।

मैं बन्धनमें पड़कर अवश हो गया हूँ, यह देखते ही वे राक्षस दौड़ पड़े जो अब तक मेरे भयसे दूर खड़े थे। उनमें अनेक मोटी, सुदृढ़ तन्तुपाश (चमड़ेकी रस्सी) अथवा अन्य पाश ले आये थे। वे मुझे डाँटते-फटकारते आये और अपनी समझसे मुझे भली प्रकार बाँधने लगे।

'हाय रे मूर्खता !' मेघनादने झल्लाकर पैर पटके और मस्तकपर हाथ दे मारा। उसे पता था कि ब्रह्मपाश अन्य बन्धनके साथ नहीं रहता ; किन्तु कुछ बोलकर वह मुझे सावधान नहीं करना चाहता था। वह समझता होगा कि मैं इस तथ्यसे अनजान पाशोंके बन्धनमें शान्त रहूँगा।

ब्रह्मपाश निष्प्रभाव हो गया है, यह मैं जानता था। सामान्य तान्तव पाशोंको मैं इच्छा करते ही तोड़कर फेंक सकता था ; किन्तु मैं मेघनादकी आशाके अनुरूप शान्त बना रहा। मुझे दशग्रीवको और उसकी राजसभाको देखना था। इन पाशोंसे मैं चाहे जब मुक्त हो सकता था। अतः जब राक्षस मुझे पकड़कर ले चले मैं चुपचाप चल पड़ा। सावधान मैं मार्ग देखता जा रहा था। मार्गके भवन, वीथियाँ भी ; क्योंकि राक्षस अशोकोपवनसे मुझे सीधे अन्तःपुरके मार्गसे ले नहीं जा सकते थे। मुझे उपवनसे बाहर उस मार्गसे निकाला उन्होंने जिसका रात्रिमें विभीषणने उल्लेख किया था। उससे निकालकर नगरके मार्गसे घूमकर उन्हें राजसभामें जाना था।

———

२५–रावणकी सभामें

'यही वह उत्पाती वानर है।' मेघनादने ले जाकर दशग्रीवकी राजसभामें मुझे खड़ा किया और राक्षसेश्वरसे निवेदन किया।

मैंने देखा कि रावण अपने सम्पूर्ण राजकीय वेशमें है। उसकी राज-सभा अमरावतीकी सुरेन्द्र-सभासे अधिक सज्जित, अनुशासित एवं प्रभाव-पूर्ण लगी मुझे। वहाँ मैंने अग्नि, वायु, यमादि अनेक दिक्पालोंको देखा। वे भयभीत थे और राक्षसेश्वरके भ्रू-संकेतकी प्रतीक्षामें थे। दशग्रीवके दक्षिणपार्श्वमें एक रत्नासन रिक्त था। वामपार्श्वके रत्नासनपर पिताको प्रणाम करके इन्द्रजित बैठ गया। विभीषण जब आये, वे दक्षिणपार्श्वके आसनपर बैठे। इनके अतिरिक्त ऐसे ही दो-दो रत्नासन दोनों ओर और थे। उनपर दशग्रीवके दो-दो मन्त्री बैठे थे। विभीषणने पीछे उनके नाम बतलाये थे—प्रहस्त, दुर्धर दाहिने और महापार्श्व, निकुम्भ वामपार्श्वमें।

रावणको देखकर मेरे मनमें आया—इतना सुन्दर, इतनी अनुपम शक्ति, ऐसा अद्‌भुत तेज और इतना बड़ा विद्वान यह दशग्रीव यदि प्रबल अधर्मी न होता तो यह सुरेन्द्र सहित समस्त सुरोंका संरक्षक होने योग्य था।

अवश्य ही वह कज्जल कृष्णवर्ण था; किन्तु उसका विशाल भाल, बड़े-बड़े नेत्र, प्रचण्ड भुजदण्ड, अत्यन्त विशाल वक्ष—दशग्रीवका शरीर सुपुष्ट, अत्यन्त बलिष्ट सुन्दर था और उसका तेज, प्रभाव, गाम्भीर्य दुर्दम था। वह श्रुति-शास्त्रका श्रेष्ठतम ज्ञाता है, यह मैं पहिलेसे सुन चुका था।

'इससे पूछो कि यह कौन है, कहाँसे आया है?' दशग्रीवने सीधे मुझसे कुछ न कहकर अपने महामन्त्री प्रहस्तसे कहा—'यहाँ क्यों आया? अशोक वाटिका क्यों ध्वस्त की और राक्षसोंको तथा मेरे पुत्रको क्यों मारा?'

मुझे देखकर दशग्रीव क्रोधसे अरुण नेत्र हो गया, यह मैंने देख लिया था। सम्भवतः अपने सम्मुख इस प्रकार अशङ्क निर्भय किसीको उसने जीवनमें प्रथम देखा था। श्रीरघुनाथके पदाश्रितको भय दे सके, इतनी

शक्ति महाकालमें भी नहीं और मुझे तो महाशक्ति अम्बाका आशीर्वाद भी प्राप्त था। मैं पाशबद्ध बन्दी था; किन्तु इन पाशोंको अभी मैंने स्वेच्छासे शरीरपर लिपटे रहने दिया था, अन्यथा मेरे लिए ये ऐसे थे जैसे कच्चे सूत।

प्रहस्तका पुत्र भी मेरे द्वारा मारा गया था। मुझे देखकर उसके भी नेत्र अङ्गार हो उठे थे; किन्तु राक्षसेश्वरके सम्मुख वह धृष्टता करनेका साहस नहीं कर सकता था। महामन्त्रीकी उचित गम्भीरतासे बोला—'वानर! डरो मत! धैर्य रखो! हम तुम्हारी बात सुनेंगे! राक्षसेन्द्र न्याय करेंगे। तुम कौन हो? किसने भेजा है तुम्हें? यदि तुम सत्य कहोगे तो मैं तुम्हें मुक्त कर देने की राक्षसेश्वरसे प्रार्थना करूँगा। तुम्हारी कोई क्षति नहीं होगी।'

मुझे निर्भय रहनेकी बात कहकर प्रहस्त अपनी ही प्रवञ्चना कर रहा था। मैंने सीधे दशग्रीवसे कहा—'राक्षसेश्वर कृतविद्य हैं, बुद्धिमान हैं। श्रुतिशास्त्रके परम मर्मज्ञसे सर्वेश्वरेश्वर परात्पर परमपुरुष श्रीरामका माहात्म्य छिपा नहीं होगा। सहस्र-सहस्र ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, स्थिति, संहार जिनके भ्रू-संकेतसे होता है, वे भक्तवत्सल अयोध्याके चक्रवर्ती महाराज दशरथके यहाँ अवतीर्ण हुए। लङ्काधिप जानते हैं कि जनकपुरमें जिस शिव-धनुषको उठानेका साहस नहीं कर सके थे, उसे भङ्ग करके श्रीरघुनाथने भगवती वैदेहीकी वरमाला प्राप्त की थी। यह प्रमाद ही किया राक्षसेश्वरने कि वनमें उनकी अनुपस्थितिमें उनकी प्रियाका अपहरण किया। मैं उन निखिल लोकेश्वर श्रीराम तथा किष्किन्धाके वानरेन्द्र सुग्रीवके द्वारा प्रेषित हूँ।'

मैंने अब अपनी बात कही—'मैं केवल भगवती जनकात्मजाके दर्शन करने आया था। क्षुधा-सन्तप्त प्राणीका स्वत्व है कि आहार जहाँ उपलब्ध हो, ग्रहण करले। सृष्टिकर्ताने हम वानरोंके आहारार्थ ही वृक्ष बनाये हैं। फल-भक्षणमें वानर यह विचार नहीं करते–कर नहीं सकते कि वृक्ष किसकी वाटिकाके हैं। वानर जैसे उछलते-कूदते आहार करते हैं, वैसे ही मैंने भी किया; किन्तु अतुलबल राक्षसेन्द्र अपनी वाटिकामें ऐसे दुर्बल वृक्ष लगा रखें जो एक वानरकी उछल-कूद भी न सह सकें, यह राक्षसेश्वरके लिए शोभास्पद नहीं है। वाटिकाके वृक्ष तो इसी मेरी सहज स्वभावकी उछल-

कूदसे धराशायी हुए । आत्मरक्षाका स्वत्व सबको है । जो मुझे मारने आये, मैंने उन्हें मार दिया । आप क्या आशा करते हैं कि मैं उनके प्रहार शान्त सहन करता ? आपपर कोई प्रहार करे तो आप शान्त रहेंगे ? इसमें मेरा क्या दोष है ? अपराध तो आपके समीप बैठे आपके इस पुत्रने किया कि मुझ निरपराधको बाँध लाया ।'

दशग्रीवने क्रोधसे अधर दाँतोंसे दबाया । उसके करोंकी मुट्ठियाँ कस गयीं । नेत्रोंसे अङ्गार झड़ते हों—ऐसे अरुण हो उठे; किन्तु मैंने उसे समझाया—'मैं आपके पुत्रपर कोई अभियोग उपस्थित नहीं करता हूँ । मुझे अपने बन्दी किये जानेकी चिन्ता नहीं है । अपराध किया है आपने सर्वसमर्थ श्रीरघुनाथकी भार्याका अपहरण करके ; किन्तु आपके लिए भी भय अथवा चिन्ताका कारण नहीं है । मेरे स्वामी दयाधाम, क्षमासिन्धु हैं । श्रीजनक-नन्दिनीको आगे करके मेरे साथ चलो और उनके भुवनपावन पादपद्मोंमें गिरकर क्षमा माँग लो । वे प्रणतपाल दयालु निश्चय तुम्हें क्षमा कर देंगे । लङ्काका निष्कण्टक राज्य तुम्हारा रक्षित रहेगा और श्रीरामके स्नेह-भाजन होकर तुम धन्य हो जाओगे । तुम्हारा लोक-परलोक दोनों समुज्वल बनेगा ।'

'मूर्ख कपि !' दशग्रीव और धैर्य नहीं रख सका । वह क्रोधसे काँपता भयङ्कर स्वरमें बोला—'इतना निर्भय यहाँ मेरे सम्मुख खड़ा बकवाद करता जा रहा है, जानता नहीं है कि लोक और परलोक दोनोंके अधीश्वर दशाननके द्वारपर दीन बने उपस्थित रहते हैं । तू जिनकी चर्चा करता है, उन राम और सुग्रीवकी शक्ति मैं जानता हूँ । बालिके भयसे भागता-भटकता फिरने वाला सुग्रीव अब धोखेसे भाईका वध कराके वानरेन्द्र बन गया है !' अट्टहास किया असुराधिपने ।

'पिताने जिसे अयोग्य समझकर वनमें निर्वासित कर दिया, उस रामकी प्रशंसा करता है तू ?' रावण बड़बड़ाता जा रहा था—'पहिले मैं तेरा वध करके सीताको मार देता हूँ । वही उत्पातोंकी जड़ है । इसके अनन्तर सेना सहित सुग्रीव तथा सानुज रामको मार दूँगा ।'

मेरे लिए ये दुर्वचन असह्य थे । कदर्य राक्षस प्रभुकी अवज्ञा करता है, यह देखकर मैंने क्रोधमें दाँत कटकटाये और उग्रस्वरमें ही डाँटा उसे—'अधम राक्षस ! तेरे मस्तकपर मृत्यु मँडरा रही है, इसीसे तू इस प्रकार

प्रलाप करने लगा है। तू प्रभुकी चर्चा करता है; किन्तु तुझे उनके इस छुद्र सेवक हनुमानकी शक्ति एवं पराक्रमकी कल्पना भी नहीं है। तुझ जैसे तुच्छ कीटकी मैं कोई गणना नहीं करता। तुझमें शक्ति हो तो........।

'मार दो इसे!' दशग्रीव मेरे वाक्यके पूर्ण होनेसे पहिले ही चिल्लाया।

'नहीं स्वामी! दूत अवध्य होता है।' इसी समय विभीषणने राज-सभामें प्रवेश किया। दूरसे ही उन्होंने उच्च स्वरसे कहा। धीर पदोंसे सम्मुख आकर दशग्रीवको मस्तक झुकाया। संकेत पाकर दक्षिण पार्श्वके रत्नपीठपर बैठकर बोले—'दूत अपने प्रभुका प्रतिनिधि होता है। वह अवध्य न माना जाय ता अपने स्वामीकी बात ही सुना नहीं सकेगा। इसी अभय-प्राप्तिके कारण प्रायः दूत दुर्वचन कहते हैं; किन्तु उन्हें क्षमा कर देना सदासे शक्तिशाली समर्थ शूरोंकी सम्मान्य परम्परा है।'

दशग्रीवने विभीषणकी ओर देखा। स्पष्ट था कि वह अपने इस अनुजकी बातसे सन्तुष्ट नहीं हुआ; किन्तु यह कैसे वह स्वीकार करले कि वह स्वयं शक्तिशाली समर्थ शूर नहीं है। अतः ऐसोंकी सम्मान्य परम्पराका पालन उसके लिए अनिवार्य हो गया है, यह वह समझ गया।

विभीषणने पीछे बतलाया था कि जैसे ही उनके चरने उन्हें सम्वाद दिया मेघनादके द्वारा उत्पाती कपिको बाँधकर राक्षसेश्वरके समीप ले जानेका, वे राजसभाके उपयुक्त वस्त्रादि धारण करके चल पड़े थे।

'तुम ठीक कहते हो!' दशग्रीवने विभीषणको सन्तुष्ट करके अपने उन अनुचरोंकी ओर देखा जो उसका आदेश पाते ही मेरे वधके लिए शूल लेकर या खड्ग कोषसे निकालकर खड़े हो गये थे 'इस कपिका अङ्ग-भङ्ग करना उचित है। जब यह भग्नाङ्ग जायगा तब अपने उस स्वामीको ले आवेगा, जिसकी यह इतनी प्रशंसा कर रहा था।'

मैं प्रस्तुत ही था। राक्षस आक्रमण कर दें तो आत्मरक्षाका उद्योग करनेकी जाम्बवन्तने मुझे अनुमति दे रखी थी। अतः मैं प्रतीक्षा कर रहा था कि ये आक्रमण करें; किन्तु दशग्रीवने अट्टहास करके कहा—'वानरको अपनी पूँछ सबसे प्रिय होती है, अतः इसे पुच्छहीन कर देना उपयुक्त है। इसकी पूँछमें पर्याप्त वस्त्र बाँधकर उसे भली प्रकार तैल-स्निग्ध करो और

प्रज्वलित कर दो ! एक बार पूँछमें वस्त्र बाँधकर इसे पूरे नगरमें घुमाओ। सब नगर जन देख लें, जिनके स्वजनोंको इसने मारा है, वे देखकर सन्तुष्ट हो लें कि उनके इस अपराधीको कैसे दण्ड दिया जा रहा है।'

विभीषणने अत्यन्त भयकातर होकर मेरी ओर देखा। मैंने केवल नेत्र-संकेतसे उन्हें शान्त रहनेको कहा। वे खिन्न हो गये थे ; पर जानते थे कि दशग्रीव अब कोई प्रतिवाद नहीं सुनेगा। रावणने सोचा होगा कि पूँछमें अग्नि लगनेपर वानर उछल-कूद करके पूरे शरीरमें अग्नि लगा लेगा और जल मरेगा। वह प्रहस्त एवं मेघनादको एक बार देखकर प्रसन्न होकर उठा। उसके उठते ही दूसरे सब उठ गये। मेघनाद पिताके पीछे चला गया ; किन्तु प्रहस्त उन राक्षसोंके साथ हो गया जो मुझे लेकर राजसभासे बाहर चले।

मैंने प्रहस्तके पुत्रको मारा था। सम्भवतः वह मुझे जलते देखनेको उत्सुक था। अनावश्यक होनेपर भी वह मेरी पूँछमें वस्त्र बाँधने, उसे तैलसिक्त करनेकी क्रियाका निर्देशक बन गया था। तब तक वह मेरे साथ ही रहा, जब तक मेरी पूँछ प्रज्वलित नहीं कर दी गयी।

विभीषण अवनत मुख अत्यन्त शिथिल पद अपने सदनकी ओर लौट रहे हैं, यह मैंने देख लिया ; किन्तु उन्हें मैं किसी संकेतसे भी आश्वस्त करनेमें असमर्थ था। इस समय परिस्थिति इसके अनुकूल नहीं थी। राक्षसोंने मुझे चारों ओरसे घेर रखा था। मैं भी प्रसन्न था। मैंने मनमें पूरी योजना बनाली थी। नगरके भली प्रकार दर्शन तथा आवश्यक अंश ध्वस्त कर देनेका सुयोग सौभाग्यसे स्वतः प्राप्त हो रहा था। सम्भवतः भगवती सरस्वतीने मेरे सानुकूल होकर रावणको वैसी बुद्धि दी थी।

—:×:—

२६-लङ्का-दहन—

अपने आकारके समान ही असुर सम्भवतः बुद्धिसे भी मोटे ही होते हैं। देवजातिके होनेपर भी राक्षस यह नहीं सोच सके कि जो वानर उपदेवता है, कामरूप है, उसे स्थूल पाश बन्धनमें कैसे रख सकते हैं। वे सब उत्साहपूर्वक मेरे लांगूलमें वस्त्र लपेट रहे थे। वे देख रहे थे कि मैं पूँछ बढ़ाता जारहा हूँ, वे स्वयं अपना शरीर इच्छानुसार बड़ा या छोटा करनेमें समर्थ थे ; किन्तु किसीने भी पूँछ बढ़ रही है, इसपर ध्यान नहीं दिया। बालक और वृद्ध सब दौड़-दौड़कर अपने-अपने गृहोंसे अनेक रङ्गोंके वस्त्र ले आरहे थे। उन वस्त्रोंको वे तैल, घृत अथवा पशुओंकी वसामें डुबाकर मेरी पूँछमें कसकर लपेटनेमें लगे थे।

जिनके हाथ जो वस्त्र लग जाता था, वही लिये दौड़ा आता था। उत्साहातिरेकमें उन्होंने नवीन वस्त्रोंका भी उपयोग किया। यह उत्साह तब शिथिल हुआ जब नगरका तैल एव घृत भण्डार समाप्त होगया। पहिले उन्होंने परस्पर पूछना प्रारम्भ किया 'तुम्हारे यहाँ कोई तैल है ? घृत है ? वसा है ?'

लङ्कामें गौघृत, महिषघृत ही नहीं अजाघृत, उष्ट्रघृत भी था, यह तभी मैं जान सका। अनेक प्रकारके तेल थे। जलानेके लिए, शरीर-मर्दनके लिए, आहारके लिए ही नहीं, औषधीय उपयोगके भी तैल थे, वसा थी कई प्रकारकी; किन्तु राक्षसोंने ढूँढ़-ढूँढ़कर सब मँगालीं। प्रहस्त सबको प्रोत्साहित कर रहा था। राजकीय भण्डारमें भी दशग्रीवके निजी उपयोगको सुरक्षित तथा मेघनाद, विभीषणादि कुछ राजपरिवारके व्यक्तियोंको छोड़कर महामन्त्री प्रहस्तने नगरके सभीके गृहोंसे घृत, तैलादि मँगवा लिये। वह आदेश न भी देता तो राक्षस उत्साहमें स्वयं यह काम कर रहे थे। अन्ततः जब कोई स्नेह अप्राप्य होगया, मेरी पूँछमें वस्त्र लपेटनेका वह महोत्सव समाप्त हुआ।

अब निशाचरोंने दिनमें लङ्कामें मेरी शोभा-यात्रा निकाली। वे दुर्विनीत दौड़े आते थे और मेरे ऊपर पदाघात करते थे, मुझे निकृष्टतम गालियाँ देते थे। अन्ततः शोभायात्रामें स्तवन-पूजन भी तो चलता रहना

चाहिए। राक्षस जैसे थे—उनके समीप जो शील, सौजन्य था, उसीके अनुसार मेरा सत्कार कर रहे थे। मेरी लांगूल अत्यन्त विशाल थी—इतनी विशाल कि मैं वहाँ उपस्थित सब राक्षसोंको उसमें लपेट लेसकता था। लेकिन घृत, तैलादिसे आर्द्र वस्त्रोंसे बँधी वह पूँछ मैंने लम्बी फैलादी थी। राक्षस ही उसका भार उठाये मेरे साथ चल रहे थे।

राक्षसोंने वस्त्रोंको स्निग्ध करके मेरी पूँछमें कसकर लपेटा और ऊपरसे भलीप्रकार रज्जुसे बाँधा था। ऊपरसे तैलादि डाला था। वे शङ्ख, भेरी, शृङ्ग आदि बजाते, मेरे अपराधकी घोषणा करते मुझे नगरमें घुमा रहे थे। मेरा उपहास करते थे, गालियाँ देते थे, मुझपर घूसे अथवा पैरोंसे प्रहार करते थे, तालियाँ बजाते, कूदते, अट्टहास करते। राक्षसोंके बालक पत्थर और डण्डोंसे भी प्रहार करते थे। नारियाँ द्वारोंपर, गवाक्षोंपर, छज्जोंपर एकत्र यह कौतुक देख रही थीं। उनका यह महोत्सव था।

मेरा भी यह महोत्सव ही था। राक्षसोंकी गालियाँ, व्यङ्ग, प्रहारकी ओर मेरा ध्यान नहीं था। मुझे सुयोग प्राप्त होगया था। मैंने लङ्काके प्रायः सब सैनिकों एवं सामान्य लोगोंको देख लिया। उनके स्वभावका भी कुछ अनुमान कर लिया। इस उच्छृङ्खल उत्सवके समय भी राक्षसोंमें अच्छा अनुशासन है, वे प्रहस्तके संकेतोंका पूरा पालन करते हैं, यह मैंने देखा।

नगरके मार्गोंको, भवनोंको—विशेष भवनोंको जो शस्त्रागार, वस्तु-भण्डार, सैनिक-शिविर हो सकते हों, मैं ध्यानपूर्वक देख रहा था। राजपथ, वीथियाँ, चतुरष्क (चबूतरे), चतुष्पथ, गढ़द्वार, आवास, जलस्थान प्रभृतिको मैं इस प्रकार देख रहा था कि उन्हें ठीक-ठीक स्मरण रख सकूँ। लङ्काका पूरा मानचित्र मैंने मानसमें अङ्कित कर लिया।

मुझे सम्पूर्ण नगर, प्रायः सब गलियाँ भी घुमाया गया। अन्तमें राजसदनके सम्मुख विशाल चतुष्पथपर लाकर मेरी पूँछमें एक साथ अनेक राक्षसोंने अनेक स्थानोंपर अग्नि लगायी। इसके लिए वे प्रज्वलित उल्मुक पहिलेसे लिये थे। इस समय प्रसन्न होकर राक्षसोंने बहुत कोलाहल किया। बहुत उछले-कूदे, हर्षध्वनि करते, ताली बजाते, अट्टहास करते रहे। सब मुझे छोड़कर थोड़ी दूर हट गये। वे कह रहे थे—'अब यह तनिक देरमें उछलने लगेगा और चीखे-चिल्लायेगा।'

जैसे ही राक्षस पूँछमें अग्नि लगाकर मुझसे दूर हटे, मैंने अपना आकार बहुत छोटा किया; किन्तु पूँछ वैसी ही रहने दी। मैं चाहता तो पूँछ भी छोटी कर लेता और उसमें बँधे वस्त्र भी गिर जाते; किन्तु मुझे तो इनका उपयोग करना था। शरीरको छोटा करते ही जो पाश मुझे बाँधे थे, ढीले होनेसे सरक कर गिर पड़े। पाश-बन्धनसे छूटते ही मैंने अपना शरीर पुनः विशाल कर लिया।

राक्षसोंको कुछ देखने, समझने, सावधान होनेका समय नहीं मिला। एक क्षणमें लघु रूप होकर, पाशमुक्त मैं विशाल हो गया था। अब मैं अपनी प्रज्वलित पूँछसे वहाँ एकत्र राक्षसोंको पीटने लगा। वे एक-दूसरेको धक्का देते, कुचलते भागे; किन्तु मेरी विशाल पूँछसे बचकर जाते तो कहाँ जाते। मैं उन्हें पूछमें लपेट-लपेटकर पटकने लगा था। अब उनमें हाहाकार मच गया था। प्रायः सब जो वहाँ एकत्र थे, झुलस गये। वे मूर्छित होकर गिर पड़े। लेकिन प्रहस्त बुद्धिमान निकला। वह पहिले भी दूर खड़ा राक्षसोंको निर्देश दे रहा था। पूँछमें अग्नि लगते ही भाग गया था। उसे अनुमान होगा कि वानर पूँछसे अपने बन्धन जलाकर छूट सकता है।

वहाँ एकत्र राक्षसोंमें कितने मरे और कितने मूर्छित थे, यह गणना मैं क्यों करता ? मैं कूदकर समीपके भवनके ऊपर पहुँचा। अब मेरी लांगूल भवनोंमें अग्नि लगाने लगी। भवन-द्वार, वातायन, गवाक्ष जो खुला मिल जाय उसमें-से लांगूल भीतर प्रवेश करके कक्षको भी अग्नि-पवित्र करना मैंने प्रारम्भ कर दिया था।

मैं शीघ्र दशग्रीवके सौधपर पहुँच गया। राक्षसेश्वरने सभी लोकपालोंको भेजा। उसने यमको आदेश दिया—'इस वानरको मार दो।'

यमराज आये तो मैंने उन्हें उठाकर मुखमें रख लिया। दूसरे सब लोकपालोंकी ओर मेरी लांगूल लपकी तो वे भाग गये—लङ्काका त्यागकर अपने लोकोंको भाग गये। उन्हें स्वयं राक्षसोंका अनिष्ट अभीष्ट था। लेकिन मैंने देखा कि गगनमें भगवान हंसवाहन आगये हैं। मैंने उन चतुरानन सृष्टिकर्ताको मस्तक झुकाया। उन्होंने हाथ उठाकर मुझे अभय दिया और संकेत किया संयमनीके स्वामीको छोड़ देनेका। वे सूर्य-नन्दन मेरे भी सम्मान्य हैं। उन्हें मुखसे निकाल मैंने क्षमा माँगी तो बोले—'पवनपुत्र ! तुम तो हम सबका ही प्रिय कर रहे हो। अग्नि तुम्हारी इच्छानुसार बढ़ेंगे।

तुम्हारे पिता अपने उनचास रूपोंसे तुम्हारी सहायता करने आ पहुँचे हैं। मैं अपने भाई शनिको सचेत करता जाता हूँ। जैसे ही तुम इस पुरीसे पृथक् होगे, यह स्वर्णपुरी शनिकी दृष्टिसे दग्ध भस्म बन जायगी।'

मैंने दुर्ग-द्वारोंपर लगे महायन्त्र दग्ध कर दिये। सैन्य-शिविर, शस्त्रागार, वस्तु-भण्डार मेरे विशेष लक्ष्य थे; किन्तु मैं बार-बार दशग्रीवके सौधपर कूद आता था। वहाँ अग्नि-शमनके सब प्रयत्न मैं निष्फल कर देता था। अन्तमें राक्षसेश्वरने मेघोंको वर्षा करके अग्नि बुझा देनेकी आज्ञा दी। मेघोंको थोड़ी ही देरमें उसे लौटनेकी आज्ञा देनी पड़ी। उसने उनको डाँटा—'यह क्या हो रहा है ?'

मैंने राक्षसेन्द्रके सम्मुख गिड़गिड़ाते मेघोंकी गड़गड़ाहट सुनी। वे कह रहे थे—'हम स्वयं कुछ नहीं समझ पाते हैं। हमने प्रलयके समय द्वादशादित्योंका ताप देखा है, शेषके सहस्र फणोंसे उत्थित प्रलयाग्नि देखी है, रुद्र नेत्राग्नि ज्वाला भी देखी है ; किन्तु यह पता नहीं, कैसी अग्नि है जो हमारी जलधारासे अधिक प्रदीप्त होती है। इसमें हमारा जल घृताहुति बन रहा है अथवा हम शुष्क वाष्प बननेको बाध्य हैं।'

दशग्रीव बहुत बुद्धिमान था। उसने समझ लिया कि अग्निज्वाला उस प्रचण्डताको प्राप्त हो चुकी है जिसमें जल पड़ते ही ओषजन[1]-हार्द्रजन[2] दोनों भागोंमें विभक्त हो जाता है और ओषजन ही अग्निको नहीं बढ़ाता, हार्द्रजनके अणु तापाधिक्यसे विस्फोटित होकर महाविनाश करने लगते हैं।'

मेघाधिदेव मस्तक झुकाकर चले गये। हताश रावण भवनके भूगर्भस्थ भागमें अपने परिकरोंके साथ चला गया। मैंने उसके मन्त्रियोंको कहते सुना—'यह ईश्वरीय कोप साकार कपि बनकर प्रकट हुआ है।'

लङ्कामें विस्फोट हो रहे थे। स्वर्ण द्रवित होकर बहने लगा था। उस प्रचण्ड ज्वालाका प्रकाश किसी भी सामान्य दृष्टिके लिए असह्य था। राक्षसियाँ और राक्षस जहाँ सम्भव था, भूगर्भस्थ स्थलोंमें शरण लेने भाग रहे थे। सरोवरोंमें, समीपके समुद्रमें भी उनके समूह खड़े थे और वहाँ भी मेरी पूँछ लपकती थी तो वे जलमें डुबकी लगानेको बाध्य होजाते थे। मैं जानता था कि भूगर्भमें भी ताप उन्हें अवश्य अध-भुना बना रहा होगा।

---

१. आक्सिजन २. हाइड्रोजन

मैंने सावधानी रखी कि विभीषणके भवन तथा उद्यान तक ताप न पहुँचे। मैंने उसके समीपके भवनोंको प्रज्वलित किया तो मेरे सम्मान्य पिता पवनदेवने लपटोंको विपरीत दिशामें प्रेरित किया। उस समय उनका प्रबल वेग लङ्का-दहनमें सहायक बनकर प्रकट था और वे मेरे सङ्कल्पका अनुगमन कर रहे थे।

मैंने एक भवन और छोड़ दिया—कुम्भकर्णका विशाल भवन। जब मैं उसपर पहुँचा, लगभग उसके समान ही विशाल देहा, भयानक वदन उसकी पत्नी केश खोले अत्यन्त दीन होकर प्राङ्गणमें आयी और प्रार्थना करने लगी—'कपीन्द्र! मेरे पति निद्रित हैं। वे निरपराध हैं। तुम्हें तुम्हारे स्वामीकी शपथ! मुझे विधवा मत बनाओ! यहाँसे पधारो! इस सदनपर दया करो।'

मुझे दया आगयी उसपर और वहाँ निद्रामग्न महाकाय कुम्भकर्णपर भी। सचमुच वह निरपराध था। उसने कभी किसीका कोई अपराध नहीं किया था और किया भी हो तो केवल आहारके निमित्त किया होगा। आहार कर लेना कोई अपराध नहीं है। सृष्टिकर्त्ताने उसे जो शरीर तथा क्षुधा प्रदान की, इसके लिए उसे दोष कैसे दिया जा सकता है। मैं उस भवनसे शीघ्र हट गया। मैंने उस तक ताप न पहुँचे, इसकी भी सावधानी रखी। मेरे पिता पवनने इसमें भी मेरा साथ दिया।

जो राक्षस मुझे लङ्काकी नगर-यात्रा कराते समय गालियाँ दे रहे थे, वे और राक्षस-नारियाँ पुकार-पुकार कर रावणको कोस रही थीं, गाली दे रही थीं—'इस अहंकारीको स्वर्णपुरीमें सुखसे बैठना काटता था। इस अधमको इतनी रानियोंसे संतोष नहीं हुआ और यह सीताको ले आया। अब उस सतीका क्रोध यह साकार कपि बना कूद रहा है। लङ्का अनाथकी भाँति जल रही है और वह अब मूषकके समान भूगर्भमें जा छिपा है।'

स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सब भाग रहे थे। पशुओंकी वहाँ कौन चिन्ता करता। पशुओंमें कितने भस्म हुए और कितने समुद्रमें कूदकर प्रवाहित हो गये, यह कभी कोई जान नहीं सकता था। वहाँ सबको अपने प्राणोंकी पड़ी थी। वे सब इधर-से-उधर भाग रहे थे। अपनी अत्यन्त आवश्यक एवं प्रिय वस्तुएँ इधर-से-उधर फेंक रहे थे। उनके वस्त्र जले-अधजले थे। केश

झुलस गये थे। शरीरोंपर फफोले उठे थे। मेरी लांगूलकी लप टेंउन्हें कहीं स्थिर नहीं रहने देती थीं।

'यह साक्षात् काल है! प्रलयङ्कर रुद्र कपि बनकर आगये हैं!' मरे सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ उठ रही थीं। मैं प्रचण्ड स्वरमें 'हूप-हूप' करता कूद रहा था और मेरी प्रज्वलित पूँछ घूम रही थी। लङ्काके भवनोंमें, आकाशमें, उद्यानोंमें, पथ-वीथियोंमें केवल लपटें—मेरी पूँछसे उठी या उठायी गयी लपटें ही दीख सकती थीं। मैं स्वयं उन लपटोंसे घिरा था। मुझे ही नहीं दीख रहा था कि लपटोंसे घिरी लङ्कामें कहाँ कुछ जल रहा है और कहाँ शेष है जलनेसे।

स्वर्णपुरी लङ्का—स्वर्ण प्रतप्त होकर पिघलने-बहने लगा था। मणि-रत्न चटख रहे थे। द्वार, वस्त्रादि भस्म हो रहे थे। ज्वाला-धूम्र-चीत्कार-विश्वमें जब कपालमालो प्रलयङ्कर उद्दाम ताण्डव प्रारम्भ करते हैं, कुछ ऐसा ही होता होगा।

लङ्का प्रायः भस्म हो चुकी थी या भस्म हो जाने वाली थी। मैं कितनी बार किस भवनपर पहुँचा—मैंने नहीं गिना। जब मुझे अपना कार्य समाप्त हुआ लगा तो मैंने सागरमें छलाँग लगादी। पयोधिके पावन जलने प्रसन्नतापूर्वक मेरी पूँछमें प्रज्वलित पावकको बुझा दिया; किन्तु तभी मैं चौंका—'हाय! मैंने यह क्या किया? मैं विस्मृत हो होगया लङ्काको जलानेमें कि मेरी अम्बा भगवती भूमिजा भी वहीं दशग्रीवके राजसदनसे सटे उपवनमें हैं। उनका क्या हुआ? मुझ अधमके प्रमादसे यदि वे भस्म हो गयी हों? ....'

'राम! राम! राम!' मैं अपने परमाश्रय प्रभुको पुकारने लगा। मेरे पश्चातापकी पीड़ाका वर्णन सम्भव नहीं। मुझे तो अग्निने सामान्य ताप भी नहीं दिया था। मेरा कोई रोम झुलसा नहीं था। उलटे लपटें मुझे शीतल लगती थीं; किन्तु मैं उनमें भस्म भी होगया होता तो इतनी वेदना मुझे नहीं होती। मैं अत्यन्त कातर पुकार रहा था—'राम! राम! राम!'

'उत्पाती कपि चला गया। अग्नि-शमनके प्रयत्न सफल हो रहे हैं। समस्त राक्षस अग्नि बुझानेमें सहयोग करें। सब राक्षसेश्वरका आदेश

सुनो !' मैंने सागरमें खड़े-खड़े लङ्काके चारणोंकी उच्चध्वनि सुनी—'यद्यपि लङ्कामें केवल विभोषण और कुम्भकर्णके गृह बचे हैं।'

मैं स्वयं इन गृहोंको बचा आया था। उत्कर्ण सुनने लगा था चारणोंका स्वर। मेरे प्राणोंमें उनके स्वरने सुधा-सञ्चार किया—'पुरीके समस्त वन उपवनोंमें केवल वह शिशुपातरु सुरक्षित है, जिसके नीचे सीता बैठी है। आश्चर्य है, सीता तो सुरक्षित हैं ही, उसके आश्रयवृक्षका एक पत्र भी नहीं झुलसा है, जबकि सम्पर्ण अशोकोपवन अब भस्म अथवा सुलगते वृक्षोंसे परिपूर्ण है।'

मैंने अपने समर्थ, सर्वज्ञ, सेवकवत्सल स्वामीके श्रीचरणोंमें मन ही मन प्रणाम किया। उन भक्तवत्सलने मेरे अपराधको सुधार लिया था। सेवक जब प्रमत्त होता है, श्री रघुनाथ ही वे सदय स्वामी हैं जो उसके दोषको गुण, प्रमादको सत्कार और च्युतिको उन्नतिमें बदलते रहते हैं।

मैं समुद्रमें-से अम्बाके समीप पहुँचनेको मुड़ा तो दो क्षण लङ्काको आश्चर्यसे देखता खड़ा रह गया। अब वहाँ कोई स्वर्णपुरी नहीं थी। मैं समझ गया कि शनिदेवने दृष्टि उठाकर इस नगरको देख लिया है। उनकी दृष्टिसे दग्ध—जो कार्य मेरी पूँछमें लगे पावकने नहीं किया था, वह श्रीसूर्यसुतकी दृष्टिने सम्पन्न कर दिया था। वहाँ केवल झुलसे कज्जल कृष्ण वर्णकी शिलाएँ थीं। वे भले सौध-भित्तियाँ हों, भूमि हो, परिखा हो या और कुछ-सर्वत्र झुलसी काली शिलाएँ थीं।
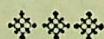
२७—प्रत्यावर्तन

'जय जय श्रीसीताराम !' मैंने अपना साधारण छोटा रूप धारण किया और कूदकर अशोक वाटिकामें अम्बाके सम्मुख इस प्रकार साष्टाङ्ग गिरा कि मेरे मस्तकने उनके श्रीचरणोंका स्पर्श किया । मुझे देखते ही वहाँ बैठी राक्षसियाँ दूर भाग गयीं । अब मुझे छिपनेकी आवश्यकता नहीं थी । राक्षस तो दूर, स्वयं रावण भी अब मेरे समीप आनेमें सौ बार सोचेगा ।

'वत्स !' अम्बाका कर मेरे मस्तकपर अनन्त वात्सल्य वर्षा करता घूमने लगा । वे स्नेहाकुल थीं । दो क्षण लगे उन्हें स्थिर होनेमें । बोलीं— 'हनुमान ! तुम्हें सकुशल देखकर मेरा चित्त शान्त हुआ ! तुम्हारा कोई अङ्ग ऐसा तो नहीं कि उसमें जलन होती हो ?'

मैंने पुनः पद-धूलि मस्तकपर धारण की—'अम्ब ! आपके अनुग्रहसे अग्निकी लपटें मुझे हिम-शीतल लगती थीं ।'

'एक राक्षसीने आकर मुझे सम्वाद दिया था ।' अम्बाने सुनाया— 'उसने कहा कि जिस वानरसे तुमने बात की थी, उसे मेघनाद बाँधकर ले गया था । उसकी बहुत बड़ी पूँछमें भलीप्रकार तैलसे भीगे वस्त्र लपेटकर अपमान पूर्वक उसे गलियोंमें घुमाया गया । सबने उसे पीटा, गालियाँ दीं और अब उसकी पूँछमें अग्नि लगा रहे हैं ।'

'मेरे प्राण काँप उठे यह सुनकर ।' अम्बाने कहा—'मुझे यहाँसे रावणके राजसदनकी ओर उठती प्रचण्ड ज्वाला दीख पड़ी । मैं यहाँ एकाकिनी, विवशा कर क्या सकती थी ? मैंने सङ्कल्प किया— 'सीता यदि सचमुच सती है तो इसके पातिव्रतकी शपथ अग्निदेवको ! हनुमानके लिए उनको अपनी ज्वाला शीतल रखनी चाहिए ।'

जगद्धात्रीके सङ्कल्पकी अवज्ञा करनेका साहस अग्निमें सम्भव नहीं था । अब मैं समझा कि क्यों लपटोंका सामान्य उष्णत्व भी सहसा मेरे लिए शीतल बन गया था । मेरा राम-रोम खड़ा हो गया । अपने अश्रुसे मैंने अपनी परमवात्सल्यमयी अम्बाके श्रीचरण आर्द्र कर दिये ।

कुछ क्षण लगे मुझे स्वस्थ होनेमें। मैंने प्रार्थना की—'अम्ब ! आपकी अनुकम्पासे मैंने लङ्का देखली। इस दुर्धर्ष दुर्गके द्वार, मार्ग, रहस्य ज्ञात कर लिये। प्रभुके पधारनेके लिए पथ-प्रशस्त हो गया। अब आप मुझे उनके समीप जाकर उन्हें ले आनेकी आज्ञा दें।'

'तुम एकदो दिन विश्राम कर लो !' मैंने यह देख लिया कि यह कहते समय अम्बाने इधर-उधर देखा। उनके श्रीमुखपर खेदके चिह्न व्यक्त हुए। इस राक्षसपुरीमें वे मुझे अब छिपाकर नहीं रख सकतीं और रावण क्या करेगा, इसका ठिकाना नहीं था। अम्बा इसलिए भी खिन्न हुई होंगी कि अब ध्वस्त अशोक वाटिकामें फलोंके वृक्ष नहीं बचे थे। मैं आहार कहाँसे करता।

'अम्ब ! आपको इस अवस्थामें देखते हुए मुझे विश्राम कैसे मिल सकता है ?' मैंने प्रार्थना की—'दशग्रीवने आपको एक मासकी अवधि दी है और उसमें-से एक दिन बीत चुका। वानरेन्द्र सुग्रीवने हम वानरोंको लौटनेके लिए एक मासकी अवधि दी थी, उसमें एक दिन ही शेष है। अतः आप आज्ञा दें कि मैं प्रभुको लेने प्रयाण करूँ।'

अम्बाने खिन्न स्वरमें कहा—'वत्स ! राक्षसोंको छोड़ दें तो समुद्र पार करनेमें केवल तीन समर्थ हैं—गरुड़, पवन और तुम। तुम्हारे प्रभु तथा वानर यहाँ कैसे पहुँचेंगे ?'

'अम्ब ! आप भी ऐसा कहती हैं ?' मैंने कहा—आप भली प्रकार जानती हैं कि प्रभुका एक शर समुद्रको शुष्क बना दे सकता है। सागर तो भयके कारण पथ देगा।'

'तुम मेरे उन आराध्यके योग्य सेवक हो।' अम्बाने अपने मस्तकसे चूड़ामणि निकाली—'इसे उनके करोंमें देकर कहना कि सीताका सौभाग्य-सिन्दूर सुरक्षित है, रहेगा ; किन्तु उन्होंने यदि आगमनमें विलम्ब किया तो वैदेही मस्तक पटककर मर जायगी। एक मास पश्चात् आनेपर इसे जीवित प्रभु नहीं पावेंगे।'

अम्बने चित्रकूटके एकान्तमें इन्द्र-पुत्र जयन्तने काक बन कर जो चञ्चुप्रहारकी धृष्टताकी थी, वह सुनाकर कहा—'स्वामीसे कहना कि उनके सींक-शरसे भी सुरेन्द्र-सुतको त्रिभुवनमें शरण देने वाला कोई नहीं मिला था। सीता वही है जिसके कारण शक्र-सुतपर स्वामीने वैसा क्रोध

किया था। अब जानकीकी यह उपेक्षा और अधम असुरोंपर कृपा क्या उचित है ?'

'आप केवल कुछ दिन और धैर्य धारण करें।' मैंने फूट-फूटकर रुदन करती अम्बाको आश्वस्त करना चाहा।

'कैसे धैर्य रखूँ हनुमान ?' तुम मेरी अवस्था देख रहे हो। तुम्हें देखकर किञ्चित सहारा मिला था ; किन्तु तुम भी अब जाना चाहते हो।' दो क्षणमें उन महत्तमाने अपनेको स्थिर कर लिया—'लेकिन तुम ठीक कहते हो। तुम्हें जाना चाहिए। जाओ, तुम्हारा मार्ग-निर्विघ्न हो !'

मैंने चूड़ामणि आदरपूर्वक ग्रहण कर ली थी। अम्बाकी तीन परिक्रमा करके मैंने उन्हें प्रणिपात किया। उनका आशीर्वाद लेकर वहाँसे अरिष्ट गिरिके ऊपर कूदकर पहुँचा। यह शिखर समुद्रमें लङ्काके समीप ही था। यहाँसे उछलते समय मैंने उच्च गर्जना की पूरी शक्तिसे—पूरे उच्च स्वरसे। यह दशग्रीव और उसके अनुचरोंको मेरी चुनौती थी—'मैं जा रहा हूँ ! तुममें किसीमें साहस हो तो रोकनेका प्रयत्न कर देखो !'

जब प्रभुके साथ मैं लङ्का लौटा तो उस अरिष्ट गिरिका कहीं पता नहीं था, जिससे मैं उछला था। विभीषणने तब बतलाया था—'आपके उछलनेके वेगसे वह पूरा पर्वत सागर-गर्भमें चला गया। आपकी गर्जना तो ऐसी थी मानो गगन फट गया। पर्वतोंके तथा भवनोंके शिखर टूट गिरे। सम्पूर्ण लङ्का हिल उठी। राक्षसेश्वर तक सिंहासनसे नीचे गिर गये थे। राक्षसियोंको गर्भपात हो गया।'

विभीषणका कहना था—'लङ्कामें तभीसे विनाशसूचक अपशकुनोंकी परम्परा प्रारम्भ हो गयी।'

मैनाक सागरसे अब भी ऊपर उठे। अपने रत्नशिखरपर मानवाकार खड़े उन गिरिवरने फिर स्नेहपूर्वक पुकारा—'पवन-नन्दन ! अब किञ्चित् विश्राम कर लो।'

मैंने पुनः कर-स्पर्श द्वारा उन्हें सत्कृत किया। बहुत ही अपने वेगको मैंने शिथिल कर लिया महेन्द्राचलपर उतरते समय। मेरी किलकारी सुनकर सभी वानर उछलकर खड़े हुए। सब प्रसन्न होकर किलकारियाँ मारने लगे। कूदने लगे। वृक्षोंपर चढ़ने-उतरने लगे। परस्पर एक-दूसरेका आलिङ्गन करने लगे। वैसे मैं उनसे दूर महेन्द्र गिरिके शिखरपर उतरा था और वानरों तक पहुँचनेमें तो विलम्ब हुआ था।

'आप तो वेगमें गरुड़से भी तीव्रगामी हैं। आपको विलम्ब क्यों हुआ ?' रघुकुलके बालकोंने पूछा।

मैंने उनको बतलाया कि लङ्का-दहनके पश्चात् मुझे प्यास लग गयी थी। लङ्कामें जल पीनेका स्मरण नहीं रहा। इस पार उतरते ही मुझे महेन्द्र पर्वतके नीचे एक मुनिका आश्रम दीखा। मैंने जाकर उन जटाधारीको प्रणाम किया तो बिना कहे ही उन्होंने मेरी स्थिति जानकर सरोवरकी ओर संकेत कर दिया। अम्बाने अपनी चूड़ामणिके साथ प्रभुकी मुद्रिका भी मुझे लौटा दी थी। मैं मुद्रिका तथा चूड़ामणि मुनिके समीप छोड़कर जल पीने चला गया। वहाँ मैंने तृषा शान्त की।

लौटनेपर चूड़ामणि रखी थी। मैंने मुद्रिका न देखकर पूछा तो उन महात्माने अपने कमण्डलुकी ओर संकेत कर दिया। उसमें मैंने हाथ डाला तो लगा कि वह मुद्रिकाओंसे लगभग आधा भरा है। मुट्ठी भर मुद्रिकाएँ निकाल कर बाहर भूमिमें मैंने डालीं और उन्हें देखकर तो चकित देखता रह गया। अन्तमें मैंने मुनिके सम्मुख हाथ जोड़ा—'प्रभो !'

मुनि बोले—'जब किसी कल्पके त्रेतामें श्रीराम अवतार लेते हैं। यही सब होता है, जो तुमने सुना और किया है। इसी प्रकार इसी आकारके हनुमान यहाँ जल पीने आते है। मैं दिन-वर्षकी गणना कहाँ तक करूँ, मुद्रिका उठाकर कमण्डलुमें डाल लेता हूँ। इससे रामावतारकी—कल्पकी गणना रह सकती है।'

'अब तक कितने हनुमान आपके समीप आये ? 'समुद्र पार करने, लङ्का-दहन करनेका मेरा गर्व दूर करनेके लिए मेरे गर्वहारी प्रभुने मुझे यहाँ भेजा है, यह मैं समझ गया।

'तुम स्वयं मुद्रिकाएँ गिन लो !' मेरे प्रश्नके उत्तरमें मुनिने कहा—'अपनी मुद्रिका पहिचान कर ले लो !'

मैं मुट्ठी भर-भर कर कमण्डलुसे मुद्रिकाएँ निकालने लगा 'किन्तु शीघ्र समझ गया कि यह श्रम व्यर्थ है। वे अनन्त लगीं मुझे। वे सब इतनी समान थीं कि उनमें एक बिन्दुका भी अन्तर नहीं था। अन्तमें हारकर मैंने सब समेटकर कमण्डलुमें डाल दीं तो मुनि बोले—'पवनपुत्र ! तुम प्रसन्न मन जाओ। कोई हनुमान मुद्रिका नहीं ले जाते। अब तुम्हें उससे कोई प्रयोजन नहीं है।'

उन महामुनिको प्रणाम करके मैं वानरोंके समीप पहुँचा तो जाम्बवन्त तथा अङ्गदने मुझे हृदयसे लगाया। वानर मेरी पूँछ चूमने लगे। जाम्बवान तथा हमारे युवराज, दोनोंने भरे कण्ठ कहा- 'पवनपुत्र! तुमने हमारी प्राणरक्षा कर ली।'

मेरे लङ्का जानेके पीछे ही जाम्बवानने बहुत-से वानरोंको किष्किन्धा भेज दिया था। उनके द्वारा सुग्रीवको सन्देश भेजा था—'भगवती भूमिजा दशग्रीवकी पुरी लङ्कामें हैं, यह पता लग गया है। पवनपुत्र वहाँ उनका दर्शन करने गये हैं। अतः अन्य दिशाओंमें गये वानरपतियोंको आज्ञा भेज दें कि वे किष्किन्धा लौट आवें।'

यह सन्देश पहुँच गया था। सुग्रीवने आदेश भेज दिये थे। जब हम किष्किन्धा पहुँचे तब अन्य दिशाओंमें गये दल लौट रहे थे।

समुद्र-किनारे बैठे प्रायः सभी वानर मेरे लौटने तक आहार-निद्रा त्यागकर दक्षिण समुद्रकी ओर ही रात-दिन देखते रहे थे। सब मेरे सम्बन्धमें चिन्तित थे। अब सब साथ लौटे। किष्किन्धा पहुँचनेका यह अन्तिम दिन था। मार्गमें हमने कहीं विश्राम नहीं किया। अब जब किष्किन्धाके समीप आ गये, पुरीके बाहर वानरेन्द्रका विशाल फलोद्यान मधुवन देखते ही युवराज आङ्गदने कहा—'सब लोग इसमें यथेच्छ आहार-ग्रहण कर लें, तब वानरेन्द्रके समीप चलेंगे।'

वानरेन्द्र सुग्रीवके मामा दधिमुख मधुवनके प्रधान रक्षक थे। उन्होंने हम सबको रोका; किन्तु युवराजने उन्हें चिढ़ा दिया। वानरोंने रक्षकोंको डाँटा, कुछ धौलधप्पा भी किया और धक्का देकर उपवनसे निकाल दिया— 'उपवन हमारा! तुम सब बाधक बनते हो तो बाहर जाओ!'

जब हम किष्किन्धा पहुँचे, स्वागतमें आये सुग्रीवके एक पार्षदने हँसकर कहा--"मामा दधिमुख बहुत रुष्ट आये थे। आप सब सम्भवतः कुछ अधिक ही उत्साहपूर्वक आहारमें लगे थे; किन्तु वानरेन्द्र प्रसन्न हैं। उन्होंने कह दिया- "मामा जी! मधुवन तो युवराजका ही है। आप कहते ही हैं कि युवराज तथा हनुमानकी आज्ञासे वानर उसे नष्ट कर रहे हैं, अतः आप उन बालकोंको क्षमा कर दो! निश्चय वे सफल काम आये हैं। उनसे कहें कि मैं उनका सम्वाद सुननेको उत्सुक हूँ। वे सीधे प्रभुके पाद-पद्मोंमें ऋष्यमूक आवें।"

दधिमुखने लौटकर स्नेहपूर्वक आदेश सुनाया। हम सब तत्काल चल पड़े।

२८–प्रभुके पादपद्मोंमें

हम सभी अत्यन्त उत्सुक थे, अतः हम मधुवनसे आकाशमें उछले। गगनसे ही हमने देख लिया कि प्रवर्षण गिरि (ऋष्यमूक) के ऊपर बनी अपनी आवास गुहासे बाहर श्रीरघुनाथ स्फटिक शिलापर आसीन हैं। श्रीलक्ष्मणलाल पीछे खड़े हैं और कपीन्द्र सुग्रीव शिलापर वामपार्श्वमें तनिक हटकर हाथ जोड़े बैठे हैं।

हमें गगनमें देखकर वानरेन्द्रने प्रभुसे कुछ कहा—सम्भवतः सूचना दी कि हम श्रीमैथिलीका पता लगाकर लौट रहे हैं। फिर वे पूँछ ऊपर उठाकर हमारा स्वागत करने कुछ आगे बढ़ आये। इसी समय हम सब गिरिपर गगनसे उतरे। हमारे दलके अग्रणी ऋक्षराज जाम्बवन्तने पहिले श्रीरघुनाथके चरणोंपर मस्तक रखा। जब वे कुमार लक्ष्मणको प्रणाम करने बढ़े, युवराज अङ्गदको अवसर मिला और तब मैंने अपने स्वामीके चरणोंमें प्रणाम किया।

'प्रभो! पवनपुत्रने हम सबकी प्राणरक्षा की।' मैं जब वानरेन्द्रको प्रणाम कर चुका, जाम्बवन्तने प्रभुसे कहा—भगवतीभूमिजा का दर्शनकर आये ये और जो कुछ कर आये, इनके मुखसे ही सब सुनने योग्य है।'

मैंने पुनः श्रीरघुनाथके चरणोंमें मस्तक रखा। हाथ जोड़कर बोला—'माता, जीवित हैं। वे कठोर नियमोंका पालन करते हुए किसी प्रकार आपके नामके सहारे अब तक प्राण धारण किये हैं। मैंने उनके श्रीचरणोंके दर्शन किये, यह आपका इस कपिपर असीम अनुग्रह।'

मैं अपनेको सम्हाल नहीं पा रहा था। बार-बार प्रभुके पादपद्मोंमें मस्तक रखता था। श्रीरघुनाथने पूछा—'वे कहाँ हैं? कैसे हैं? उनका भाव मेरे प्रति कैसा है? पूरी बात बतलाओ।'

मैंने दक्षिण मुख कर पृथ्वीमें पड़कर अम्बाको वहींसे साष्टाङ्ग प्रणिपात किया—'अम्ब! शक्ति दो कि यह आपका वानर सुत समाचार देनेमें समर्थ हो!'

'स्वामी ! इस देशकी, भूमिकी दक्षिण सीमा जहाँ सागरका स्पर्श करती है, वहाँसे सौ योजन दूर समुद्रके मध्य राक्षसाधिप रावणकी राजधानी लङ्का त्रिकूटके मध्य शिखरपर बसी है। उस राक्षसपुरीमें राजसदनसे लगे अशोकोपवनमें अम्बा रहती हैं। प्रायः रात-दिन उन्हें विकटाकार कुरूपा राक्षसियाँ घेरकर डराया करती हैं।' मैंने बहुत संक्षिप्त समाचार दिया—"उनके शरीरपर केवल एक मैली साड़ी है। उन्होंने अन्न-जल त्याग दिया है। निद्रा उन्हें आती नहीं। भूमिपर ही बैठी रहती हैं, वहीं लेट जाती हैं। उनके केशोंकी एक जटा बन गयी है। निरन्तर उनके मुखपर 'हा राम' रहता है। आपने काक बने शक्र-सुतपर सींक-शरका सन्धान किया था, यह सुनाकर उन्होंने कहा—'इतनी शक्ति रहते स्वामी किस अपराधसे मेरा विस्मरण कर बैठे हैं?"

'माताने आपको प्रदान करनेके लिए अपनी चूड़ामणि मुझे दी है!' मैंने अञ्जलिमें लेकर वह ज्योतिर्मय मणि प्रभुके सम्मुख की।

उस मणिको उठाकर हृदयसे लगाये श्रीरघुनाथ अत्यन्त व्याकुल हो उठे। कमललोचनोंसे अश्रु-वर्षा करते गद्गद स्वरमें बोले—'समुद्र-मन्थनके समय क्षीराब्धिसे यह सुर-पूजित मणि प्रकट हुई थी। सुरेन्द्रने यज्ञमें सन्तुष्ट होकर इसे महाराज जनकको दिया। मिथिला-नरेशने अपनी पुत्री वैदेहीको विवाहके अवसरपर इसे प्रदान किया। यह सीताके सीमन्त (भाल) पर सदा सुशोभित रहनेवाली मणि तुम लाये हनुमान! राम तुमसे कभी उऋण नहीं हो सकता। मैं तुम्हें अपना सर्वस्व सौंपता हूँ। मुझ परमपुरुषका अत्यन्त दुर्लभ वरदान प्राप्त करो—तुम मेरे परमप्रिय भक्त हो। तुम्हारी कृपासे ही मेरी भक्ति प्राणियोंको प्राप्त होगी।'

मुझे खींचकर जब मेरे दयामय स्वामीने हृदयसे लगाया, मैं अत्यन्त कातर होकर उनके श्रीचरणोंपर गिर पड़ा—'त्राहि माम्! त्राहि माम्!'

'पवनकुमार! तुमने कैसे समुद्र पार किया? उस दुर्गम राक्षस-राजधानीमें मैथिलीसे कैसे मिल सके?' कुछ क्षणोंमें स्वस्थ होकर श्रीरघुनाथने पूछा—'रावणका वह दुर्ग कैसा है? उसकी शक्ति कैसी है? सुरेन्द्र भी जिससे भयभीत रहते हैं, उस भयङ्कर राक्षसाधिपकी पुरीको तुम भस्म कैसे कर सके?'

'आपके ही प्रबल प्रतापके प्रभावसे प्रभो !' मैंने पुनः उन भुवनपावन पद्मापुण्यपाणि संलालित पादपद्मोंमें मस्तक रखा। प्राञ्जलि सम्मुख स्थित प्रार्थना की —'यह अत्यन्त तुच्छ, चञ्चल पशु बल-विद्या-बुद्धिहीन, अल्पप्राण वानर—इसकी क्या शक्ति और क्या साहस !'

प्रभुके पुनः पूछनेपर मैंने विवरण दिया—'महोदधिके मध्य, भूमिसे सौ योजन दूर, त्रिकूटके मध्य शिखरपर स्वर्णपुरी लङ्काका अत्यन्त सुदृढ़ दुर्ग है। इस दुर्गमें चारों ओर चार विशाल द्वार हैं। उनमें अत्यन्त दृढ़ कपाट लगे हैं। मोटी अर्गला हैं उनमें। द्वारोंपर विशाल शक्तिशाली अद्भुत यन्त्र लगे हैं, जो वाण, पत्थर एवं जलती शिलाओंकी वर्षा कर सकते हैं।'

मैंने पूरा विवरण दिया—'लङ्काके चारों ओर स्वर्णकी दृढ़, ऊँची परिखा है, जिसमें मूँगा, मोती, मणियाँ जटित हैं। उस परिखासे बाहर चारों ओर गम्भीर जलपूर्ण खाई हैं, जिसमें ग्राह तथा मांसभक्षी महामत्स्य, भयानक समुद्री सर्प भरे हैं। दुर्ग-द्वारोंके सम्मुख खाईपर विशाल काष्ठ-पुल बने हैं, जो यन्त्रके द्वारा हटाये अथवा खाईके जलमें डुबाये जा सकते हैं। लङ्कापर सामान्य मानवके लिए आक्रमणका मार्ग नहीं है। नगरसे बाहर भयानक वेगवाली नदियाँ हैं। पर्वतकी खड़ी ढलान है और वह भी दुर्गभवनसे ढकी है।'

मैंने अधिक स्पष्ट किया—'लङ्काके चारों ओरके समुद्रमें उत्ताल तरंगे उठती हैं। चारों ओर जलमग्न पर्वत हैं। अतः वहाँ जलयानसे पहुँचना असम्भव है। दुर्गके पूर्व द्वारपर दस सहस्र रक्षक सदा सावधान रहते हैं। दक्षिण द्वार एक लाख योधाओंकी चतुरंगिणी सेनासे रक्षित है। पश्चिम द्वारपर दस लाख योधा रहते हैं। जबकि इन तीनों दिशाओंमें उत्ताल तरंगायमान उदधि है। यही अवस्था उत्तर द्वारकी है; किन्तु इधर एक कोटि रक्षक रखे गये हैं; क्योंकि इसी ओर पृथ्वी सबसे समीप है।'

'नगरके मध्यमें सैनिक-शिविरमें लक्ष-लक्ष दुर्जय शूर रहते हैं। वहाँ अत्यन्त सुशिक्षित गज, अश्व, उष्ट्र तथा अश्वतरी (खच्चर) हैं।'

अन्तमें मैंने प्रार्थना की —'आपके प्रतापसे इस सेवकने जो देखा, यह उसका वर्णन है; किन्तु अब यह सब वहाँ नहीं है। मैंने द्वार ध्वस्त कर

दिये हैं। खाई प्रायः परिखा गिराकर पाट दी है। लगभग राक्षसोंकी चतुर्थांश सेना नष्ट करदी है। लङ्का भस्म करदी है। रावणके मनमें भी भय उत्पन्न होगया, यह मैं लक्षित कर आया। नारियाँ तो भीरु होती ही हैं, वे पतियोंको हतोत्साह करेंगी। नागरिकोंका ही नहीं, सैनिकोंका भी मनोबल मैं नष्ट कर आया हूँ।'

अन्तमें मैंने अपनी ओरसे कहा—'अम्बाको दुष्ट राक्षसने केवल एक मासकी अवधि दे रखी है। दशग्रीव दुर्ग, परिखा, खाई आदिका जीर्णोद्धार करानेमें अवश्य तत्काल लगेगा। उसका प्रयत्न पूरा हो, उसके सैनिकोंका मनोबल लौटे, इससे पूर्व ही हमको आक्रमण कर देना चाहिए। अविलम्ब प्रस्थान उचित होगा। वहाँ सुबेल-शिखरपर हमारे सैन्य-शिविरके लिए प्रशस्त स्थल है। वह स्थान अपेक्षाकृत सुरक्षित है। वहाँ प्रचुर फल-पुष्प-कंद उपलब्ध हैं और पीने योग्य जलके बहुत निर्झर हैं।'

'वायुनन्दन ! तुमने यह देव दुष्कर कार्य करके पूरे रघुवंशको और सुग्रीवको भी बचा लिया।' प्रभुने कहा तो मैं कातर होकर उनके श्रीचरणोंपर गिर पड़ा।

'देव !' प्रभु वानरेन्द्रसे कुछ कहनेको उन्मुख हुए तो मैंने जाकर लक्ष्मणलालके चरणोंपर सिर रखा। उन्होंने मुझे आतुरतापूर्वक उठाया। मैंने कहा—'अम्बाने आपसे कहा है– 'लालजी ! भाग्यहीना सीताने दुर्दैवकी प्रेरणासे तुमको जनस्थानमें दुर्वचन कहे। इस अभागिनीपर यदि अब भी तुम्हारा रोष हो तो उसे त्यागकर क्षमा........!'

मैं बात पूरी नहीं कर सका। श्रीसौमित्र फूट-फूट कर रुदन करते मुझसे लिपट गये—'मत कहो-मत कहो हनुमान ! वे मेरी परमपूजनीया अम्बा हैं। हाय ! कितना वात्सल्य प्राप्त था उनसे लक्ष्मणको और आज वे राक्षसपुरीमें बन्दिनी हैं ? लक्ष्मणका शरीर यह सोचकर दुःखसे दग्ध हो रहा है। दुष्ट राक्षस।.... ......'

क्रोधसे वे काँपने लगे थे। उसी समय उनके साथ ही मेरे श्रवणोंमें भी सुधाधाराके समान प्रभुके वचन पड़े। वे वानरेन्द्रसे कह रहे थे—'सुग्रीव ! सीताका समाचार पानेके पश्चात् रामके लिए एक क्षण भी विलम्ब असह्य है। इस समय विजय नामक मुहूर्त है। हम अभी प्रस्थान करें।'

'लङ्का बहुत दूर है।' मैंने सम्मुख आकर हाथ जोड़े—'हमें पहुँचनेकी शीघ्रता है, अतः प्रभु मेरे स्कन्धको भूषित करें।'

मेरी प्रार्थना स्वीकृत होगयी। युवराज अङ्गदने कुमार लक्ष्मणको कन्धेपर उठा लिया। उसी दिन वानरेन्द्रके साथ हमारी वानर-वाहिनीने प्रस्थान किया। अन्य दिशाओंमें गये दल भी लौट चुके थे। सब अनुशासित थे। अन्वेषण-यात्रामें हम पथ देख चुके थे। जल, फल आदि प्रचुर प्राप्त हों, ऐसे मार्गसे हम चले। हमारी यात्रा रात-दिन बिना विश्रामके चलती रही।

श्रीलक्ष्मणलालने कहीं कोई फल अथवा कन्द स्वीकार नहीं किया। मुझे पीछे पता लगा कि वे वनवासके पूरे समय उपोषित रहे। जिस किसी कपिको उत्तम सुस्वादु फल या कन्द मिलता था, उसे वह प्रभुको अर्पित करने दौड़ा आता था। श्रीरामने कब किसका स्नेहोपहार अस्वीकार किया है ? किन्तु उनके मुखमें कम ही फल या कन्द पहुँचते थे। वे कृपामय तो वानरेन्द्र सुग्रीवको, अङ्गदको, मुझे, जाम्बवानको या दूसरे किसीको भी प्रसाद देकर सन्तुष्ट होते थे।

इस प्रकार चलते-चलते ही हम सब आहार तथा जल ग्रहण करते रहे। वैसे भी वानर शान्त बैठकर कम ही भोजन करते हैं। केवल सानुज प्रभु स्नान करके सन्ध्या करते, पार्थिव-पूजनमें लगते, तब हमारी यात्रा कुछ देर विरमित होती।

हमने प्रस्थान किया तबसे शकुन मिलने लगे। शुभ शकुनोंको भी सार्थक होना था। श्रीरामकी अनुकूलता जहाँ हो, सफलता--श्री वहाँ सदा साथ रहती है। शुभ शकुनोंको तब कहीं और शरण है। मिलनेपर विभीषणने बतलाया था कि मेरे लङ्का-प्रस्थानसे पूर्वसे ही विनाश-सूचक अपशकुनोंकी परम्परा वहाँ प्रारम्भ हुई और बढ़ती ही गयी।

हम मलयाचल तथा सह्याद्रिके काननोंको देखते, गर्जना करते, पूरे वेगसे चलते रहे। समुद्रतट पहुँचकर ही विश्राम किया। हमारा प्रथम शिविर खुले गगनके नीचे सागर-तटपर पड़ा।

———

२९—लंकेश्वर विभीषण

हम सबको लङ्काका समाचार विभीषणजीके द्वारा तब प्राप्त हुआ, जब वे दशग्रीवकी पुरीका त्याग करके श्रीरघुनाथकी सेवामें आ गये। उन्होंने जो विवरण दिया, इस प्रकार है—

'लङ्का-दहनके पश्चात् वहाँ किसीको इस सम्बन्धमें कोई भ्रम नहीं था कि शीघ्र यह राक्षस-राजधानी आक्रान्त होने वाली है। कोई भी राक्षसेश्वरके भयसे उनके सम्मुख कुछ कह नहीं सकता था; किन्तु सब परस्पर चर्चा करते थे। सभी भयभीत थे। किसीको अब लङ्का तथा लङ्कापतिकी अजेयतापर भरोसा नहीं रह गया था।'

'स्वयं लङ्काधिप भी निश्चिन्त नहीं थे। असावधान तो सर्वथा नहीं थे। लङ्काके भवन, द्वार, परिखा, खाई सब ध्वस्त हो गये थे। स्वर्णपुरी जले कज्जल कृष्ण पाषाणोंकी पुरी बन चुकी थी। सबको आश्चर्य था कि स्वर्ण भी अत्यन्त तप्त होकर पिघलनेके पश्चात् ऐसा हो जाता है। केवल भवनोंके भीतरी भाग स्वर्ण-मणियोंके रह गये थे।'

'आश्चर्य एवं अनुसन्धानका अवसर नहीं था। कभी भी पुरीपर आक्रमण प्रत्याशित था। निरन्तर अपशकुन—अत्यन्त अमङ्गलसूचक अपशकुनोंसे सबके प्राण आकुल थे। स्मरण करनेपर, आदेश-सन्देश भेजनेपर भी देवशिल्पी विश्वकर्मा नहीं आये। वे कहीं बहुत व्यस्त बतला रहे थे अपनेको। दूसरा कोई अवसर होता तो राक्षसेन्द्र दशग्रीव उन्हें दण्ड देने अमरावती दौड़ गये होते। किन्तु इस समय लङ्काका एक भी सैनिक बाहर नहीं भेजा जा सकता था। दाँत पीसकर रोष पीकर रह जाना पड़ा।'

'दानवेन्द्र मय देवशिल्पी विश्वकर्मासे कम कुशल नहीं हैं; किन्तु दशग्रीव अपने श्वसुरको सेवा सौंपनेकी हीनता नहीं करना चाहते थे। सन्देश देनेपर अवश्य मय आ जाते; किन्तु तब हमारी पुरीकी एक कपिने क्या दुर्दशा की है, यह वे देख जाते। दैत्य-दानवोंमें दशग्रीवका सम्मान—आतङ्क इससे समाप्त हो जाता। अतः उन्हें बुलाया ही नहीं गया। अब अगने

शिल्पियों, सेवकोंके द्वारा ही पुरीका निर्माण करना था। इसमें पूरी तत्परतासे सबको लगना पड़ा।'

जब हम समुद्रपार पहुँचे तो सुबेलपर-से लङ्काको देखकर मुझे दशग्रीवकी दक्षताका परिचय मिला। हमारे युवराज अङ्गद जब राक्षस-पुरीसे लौटे तब उन्होंने भी बतलाया था कि 'लङ्काके चारों द्वार अत्यन्त सुदृढ़ हैं। यद्यपि उन द्वारोंपर महायन्त्र अब नहीं हैं। उनका ध्वंसावशेष सम्भवतः हटा दिया गया। परिखा, भवन, पथ, सभागृह, आपण आदि सब ऐसे सुदृढ़, सुसज्ज हैं कि उन्हें देखकर नहीं लगता कि वहाँ कोई ध्वंस कभी हुआ था। अवश्य अब परिखा, भवन, भित्तियाँ, द्वार आदि सबमें काले पाषाणका प्रयोग बहुत दीखता है; किन्तु उसमें स्वर्ण-शिलाओं, मणियोंका मण्डन ऐसा कलापूर्ण है कि कोई यह नहीं कह सकता कि यह निर्माण कुरूप है अथवा किसी विवशताके कारण है।'

अवश्य ही परिखाके बाहरकी खाईको स्वच्छ करनेका अवसर दशग्रीवको नहीं मिला था। हम किष्किन्धासे चलकर इतनी अल्प अवधिमें आ पहुँचे थे कि इतने समयमें लङ्काका इतना निर्माण भी आश्चर्य ही था। खाई महत्वकी भी नहीं थीं। राक्षसेश्वर जानता था कि उसकी खाईको कपि सहज कूद जायँगे। अतः खाईको स्वच्छ कराना व्यर्थ था। उपवनके तरु तो इतने शीघ्र लग नहीं सकते थे। उनको स्वच्छ करके उनमें रेणुका बिछा दी गयी थी और स्थान-स्थानपर पाषाणोंकी शिलाएं इस प्रकार रख दी गयी थीं जैसे ये स्थान पहिलेसे शिला-रेणुका उद्यान हों।

विभीषणजीने कहा था—'पवनपुत्र! जैसे ही आप गये, स्वयं राक्षसाधिपने सम्पूर्ण पुरीका निरीक्षण किया अपने प्रधान पार्षदोंके साथ। मैं उनके साथ था। कुम्भकर्णका सदन सुरक्षित देखकर बोले—'मानवका चर भी सदय लगता है। निद्रित शत्रुपर उसने निष्करुण होना उचित नहीं माना।' लेकिन मेरा भवन-उपवन सर्वथा सुरक्षित देखकर वे गम्भीर हो गये। उसी समयसे मुझपर उन्हें सन्देह हो गया। यद्यपि उन्होंने मुझसे अथवा किसीसे कुछ कहा नहीं; किन्तु फिर मुझे लङ्काके पुनर्निर्माणका दायित्व नहीं दिया गया। दूसरा भी कोई दायित्व मुझे नहीं मिला। जबकि पहिले पुरीके निर्माण, प्रशासनका भार मुझपर ही था। इस बार युवराज इन्द्रजितको पुनर्निर्माणका सञ्चालन सौंपा राक्षसेश्वरने और स्वयं इस कार्यकी देख-रेख भी करते रहे।'

'श्रीराम ससैन्य समुद्र-तट पहुँच गये !' विभीषणने बतलाया, जैसे ही यह समाचार पुरीमें पहुँचा—आप सबके सागरतीर पहुँचते ही पहुँचा ; क्योंकि राक्षसेन्द्र असावधान नहीं थे। उन्होंने चर नियुक्त कर रखे थे, समाचारने जैसे सबके हृदय मथित कर दिये। नर-नारी, वृद्ध-बालक सबके मुखपर एक ही चर्चा—'अब क्या होगा ? एक ही वानरने आकर स्वयं राक्षसेशके पुत्रको मार दिया, हमारे स्वजन मारे, पुरी भस्म कर दी, हमारी सब सामग्री नष्ट कर दी। अब सुनते हैं कि कोटि-कोटि वानर एवं उनके बड़े भाई भालु आ रहे हैं।'

'सदाके निश्चिन्त, निर्दय, परोत्पीडन-विनोदी राक्षसोंको इतना व्याकुल कभी नहीं देखा गया था।' विभीषणने बतलाया था—'लोग परस्पर ही एक-दूसरेकी पद-ध्वनि, छाया या खाँसनेके स्वरसे चौंक कर भागनेको उद्यत हो जाते थे। समाचार पाकर दशग्रीवने अपनी सभाके दो चतुर परिकर पूरा विवरण लेने भेजा। शुक-सारणको भेजते समय उसने आदेश दिया—'वानर बनकर ही जाना उत्तम है। शत्रुकी शक्ति और उसके प्रधान शूरोंका परिचय प्राप्त कर शीघ्र आओ।'

शुक-सारण हमारे दलमें वानर होकर मिल गये थे ; किन्तु जब विभीषणजी आ गये और प्रभुने उन्हें लंकेश्वर कहकर सागर-जलसे अभिषिक्त कर दिया, विभीषणकी सम्मति मानकर वे समुद्र-तटपर मार्ग पानेके लिए व्रत धारण करके बैठ गये, तब ये दोनों अपने हृदयका आवेग रोक नहीं सके, बोल उठे—'धन्य—श्रीराम धन्य हैं ! धन्य है इनका भक्त-वात्सल्य ! आश्रितोंपर ऐसा अनुग्रह राक्षसेन्द्र स्वप्नमें भी सोच नहीं सकता।'

हमारे वानरोंने सुना और दोनोंको पकड़ लिया। अब उनको अपना रूप धारण करना पड़ा। वानरोंने कुछ हाथों-पदोंके प्रहारसे पूजा तो उनकी की ही, समग्र दलमें घुमाया और बोले—'यह नीति दशग्रीवने स्थापित की है कि दूतका अङ्ग-भङ्ग कर दिया जाय। ये दुष्ट तो दूत भी नहीं, गुप्तचर हैं। इनको कर्ण-नासिका रहित करो !'

श्रीरामानुजने सूर्पणखाके नाक-कान काटकर मानो यह मर्यादा बना दी थी कि लङ्का वालोंके साथ यही किया जाना चाहिए ; किन्तु स्वयं उन्होंने ही यह परम्परा समाप्त कर दी। शुक-सारण जब आर्त होकर

पुकारने लगे—'श्रीरघुनाथकी शपथ आप सबको। हम सेवक हैं! हमपर दया करें।'

श्रीरामानुजने दया करके वानरोंको रोक दिया। उन दोनोंको दशग्रीवके लिए पत्र देकर लङ्का जानेको स्वतन्त्र कर दिया।

विभीषणने बतलाया था—'शुक-सारणको भेजकर राक्षसेन्द्र राजसभामें आ बैठे। सभी सभासद एवं मन्त्री उपस्थित थे। दशग्रीवने पूछा—'सागर-तट तक आनेकी धृष्टता करने वाले वानरों तथा उनके अग्रणी दोनों नरोंको कैसे दण्डित किया जाय, यह आप सब निश्चय करें।'

'एक वानर आया था उसे हमने दूत समझकर छोड़ दिया। कुछ यह भी बात थी कि वह अकेला था और हम बहुत थे। उसे कोई भक्षण करने लगता तो दूसरोंसे संघर्ष हो सकता था।' दशग्रीवके चाटुकार पार्षद बात बनानेमें निपुण थे। यह गुण सदा चाटुकारोंमें रहा है और किसी दृष्टिसे जो समर्थ होता है, कुछ चाटुकार उसके समीप आ ही जाते हैं। वे कह रहे थे—'यह तो सौभाग्यकी बात है कि अब वहुतसे वानर और दो नर आ गये हैं। हम लोग इन सबको भक्षण कर लेंगे। अभी समुद्र पार जाकर एक-एकको खा‍ये लेते हैं।'

'धन्यवाद! बड़े शूर हैं आप सब।' मैं चाटुकार मन्त्रियोंकी डींग सुनकर क्रुद्ध उठा था। जानता था कि यदि दशग्रीवने इन्हें समुद्रपार जानेका आदेश दिया तो कहीं अन्यत्र इतनी दूर जायँगे कि फिर लङ्कामें इनका दर्शन नहीं होगा; किन्तु तभी दशग्रीवके मातामह सुमालीके बड़े भाई माल्यवान उठ खड़े हुए। उन्होंने राक्षसोंकी भर्त्सना की—'आप सबको तब अजीर्ण हो रहा था जब अकेला वानर पुरी जला रहा था? दशग्रीव! उत्तम होगा कि विभीषणकी बात सुनो।'

मैं बिना अनुमतिकी अपेक्षा किये बोला—'राक्षसेन्द्र बुद्धिमान हैं। नीतिज्ञ हैं। चाटुकारोंको समझते हैं। एक वानरने प्रमदावन उजाड़ डाला, पुरी भस्म कर दी, अनुचरों सहित अक्षयकुमारको मार दिया। सुरोंके लिए दुर्लंघ्य हमारी पुरीसे जाते समय गर्जना करके, चुनौती देकर गया, तब भी किसीका साहस उसे पकड़नेका नहीं हुआ। अब वैसे करोड़ों कपि आने वाले हैं। इन लोगोंको आदेश देकर राक्षसेश देखलें, कोई सागर-पार जानेका

साहस कर पाता है ! वानरेन्द्र बालिको एक बाणसे यमलोक भेज देने वाले श्रीराम सामान्य मानव हैं ?'

मैंने कहा—"अपने कुल-पुरुष महर्षि पुलस्त्यने शिष्यके द्वारा आपसे कहनेको सन्देश भेजा है—'सीताको देकर श्रीरामसे सन्धि कर लो। उनके विरोधसे राक्षस वंश निर्मूल हो जायगा।' मुझे महर्षिका आदेश पालन करने योग्य प्रतीत होता है।"

'वत्स विभीषणके वचन श्रेयस्कर हैं।' माल्यवन्तने प्रसन्न होकर मेरी प्रशंसा की—'विभीषण बुद्धिमान हैं। श्रीराम सामान्य मानव नहीं हैं। अतः उनसे सन्धि कर लेना उचित है।'

'ये दोनों मूर्ख शत्रुके प्रशंसक हैं !' दशग्रीवने गर्जना की—'इन दोनोंको अविलम्ब यहाँसे निकाल दो।'

'तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है ! समस्त राक्षसकुलका संहार करवाने पर तू उतारू है।' यह कहकर माल्यवन्त उठकर राजसभासे चले गये। उन वृद्ध मातामहका अपमान करनेका साहस किसीमें नहीं था। दशग्रीव भी जानता था कि उनको रुष्ट करके वह अपने सम्पूर्ण मातृ-कुल—दैत्योंके सहयोगसे वञ्चित हो जायगा।'

'मेरी अवमानना करनेका साहस भी किसी राक्षसमें नहीं था। दशग्रीवके आदेशपर भी कोई मुझे राजसभासे निकालने नहीं उठा। मैंने उठकर अपने अग्रज लङ्काधिपको प्रणाम किया। उनसे पुनः प्रार्थना की—'आपने सदा मुझे स्नेह दिया है। इस बार अपने इस अनुजकी इतनी बात मान लें। श्रीरामके विरोधमें मुझे सबका विनाश स्पष्ट दीखता है। वे सीताको पाकर न लौटें, तब उनसे संग्राम उचित होगा ; किन्तु अभी तो आप सीताको लेकर सागर-पार चलें। मैं आपके साथ चलता हूँ। उनकी भार्या लौटा कर हम क्षमा-प्रार्थना करेंगे तो मुझे आशा है, वे मान जायँगे।'

'तू उस शत्रुसे सहानुभूति रखता है ? कुलकलङ्क ! तू साहस करता है यह कहनेका कि दशग्रीव सामान्य मानवसे क्षमा माँगे ?' रावणने उठकर मेरे वक्षपर पदाघात किया—'दूसरा कोई ये वचन कहता तो मैं उसका मस्तक धड़से पृथक कर चुका होता। तू अनुज है, अतः तेरा वध

नहीं करता। अपने उन तपस्वियोंके समीप जा और उन्हें ही सम्मति दे। शीघ्र लङ्कासे मुख काला कर।'

मैंने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और अपनी गदा लेकर सभासे उठा। मैंने गगनमें पहुँचकर पुकार कर कहा—'राक्षसेन्द्र! आप मेरे पितृ-तुल्य हैं, आपने मुझपर पाद-प्रहार किया, इसका मुझे कोई दुःख नहीं। मुझे दुःख यह है कि आप तथा आपके सब आश्रित मृत्यु-मुखमें गिरने वाले हैं। मुझे दोष मत देना, मैं आपके ही वचनोंको स्वीकार करके अब श्रीरामकी शरण जा रहा हूँ।'

'मेरे चार मन्त्री मेरे साथ आकाशमें आ गये थे। हमें कोई छल नहीं करना था, अतः हम अपने ही वेशमें, कवच तथा अस्त्र धारण किये ही आकाश मार्गसे आये। वानरोंको हमें पहिचाननेमें कोई असुविधा नहीं होनी थी।' विभीषणजीने विवरण समाप्त किया।

सचमुच महाकाय, कवचअस्त्रधारी, तेजस्वी विभीषणको मन्त्रियों सहित आकाशसे भूमिपर उतरते देखकर वानरोंको कोई भ्रम नहीं हुआ। इसीलिए किसीने कोई अशिष्टता नहीं की। दूतका सम्मान करना श्रीरघुनाथके सेवक जानते हैं। लङ्कासे इस प्रकार आये व्यक्तिको उन सबने दूत ही समझा था।

'शरणागतबत्सल श्रीरामके चरणारविन्दोंका दर्शन करने यह दशग्रीवका अनुज आया है।' वानरोंको विभीषणने अपना संक्षिप्त परिचय दिया था।

यह परिचय जब प्रभुके समीप वानरोंने पहुँचाया, मैं समीप ही बैठा था। श्रीरघुनाथने सुग्रीवसे पूछा—'मित्र। आपकी क्या सम्मति है? हमें क्या करना चाहिए?'

वानर-ऋक्षोंकी समस्त सेना वानरेन्द्रकी थी। यहाँ जो कुछ होगा, उसका प्रभाव सेनापर पड़े बिना नहीं रहेगा। अतः श्रीराम का सुग्रीवसे सम्मति लेना उचित था; किन्तु सुग्रीव उन परमपुरुषके प्रभावको बिना समझे जो बोले—केवल वानर सिद्ध हुए उससे। उन्होंने कहा—'राक्षस मायावी होते हैं। यह रावणानुज पता नहीं किस कूट अभिप्रायसे आया है। मेरी सम्मति है कि इसे बाँधकर संग्राम-समाप्ति तक बन्दी रखना चाहिए। विजयके पश्चात् इसका विचार करना उचित होगा!'

मेरा हृदय धक्से होगया। मैंने विभीषणको कितना आश्वासन दिया था! अब क्या श्रीराम शरण आयेको बन्धन देंगे?

मेरी आशङ्का अकारण थी। भुवन-भयहारी मेरे भक्तवत्सल स्वामीकी वाणी—समस्त जीवोंके लिए सदाको आश्वासन देने वाली वाणीने मेरे श्रवण पवित्र किये। वे शरणागत-वत्सल बोले—'सखे! तुमने नीतिके-अनुसार उचित सम्मति दी है; किन्तु रामका एक व्रत है—कोई कैसा भी पापी-अपराधी हो, एक बार जब मेरी ओर उन्मुख होकर कह देता है—'मैं आपका हूँ'—तब मैं उसे त्रिभुवनमें सब ओरसे अभय कर देता हूँ। राम शरणागतका त्याग नहीं कर सकता। रावणानुज हो या स्वयं रावण हो, जो रामके सम्मुख शरणकी पुकार लेकर आवेगा, राम उसे अपनावेगा ही।'

सुग्रीवने मस्तक झुका लिया। यह देखकर प्रभु बोले—'सखे! राक्षस मायावी होते हैं, इस आशङ्कासे राम शरणागतका त्याग किसी कापुरुषके समान कैसे कर देगा? हों राक्षस मायावी; किन्तु तुम नहीं जानते कि कुमार लक्ष्मणको क्रोध आजाय तो सृष्टिके सम्पूर्ण असुरोंको—दैत्य, दानव, राक्षस सबको नष्ट कर देनेमें उन्हें न दो निमेष लगेंगे और न दो वाण धनुषपर चढ़ाने होंगे। अतः चिन्ता मत करो। जो आया है, उसे सम्मानपूर्वक लाया जावे!'

नेत्र मेरी ओर उठे प्रभुके और मैं प्रसन्न होकर दौड़ पड़ा। युवराज अङ्गद भी मेरे साथ दौड़े। मैंने विभीषणके समीप पहुँचकर अभिवादन किया तो वे मेरे ही पैरोंपर झुकने लगे। मैंने उन्हें भुजाओंमें भर लिया। वानरोंने अब उनके चारों ओरका घेरा तोड़ा और सब एक ओर हट गये। मैंने कहा—'श्री रघुनाथ आपका स्मरण कर रहे हैं।'

विभीषण तो सुनते ही विह्वल हो गये। उनके नेत्रोंसे अजस्र अश्रुधारा चलने लगी। उनका शरीर इस प्रकार कम्पित होने लगा कि मुझे और युवराजको सहारा देकर उन्हें लाना पड़ा। दूरसे ही पृथ्वीमें पड़ते हुए पुकार की उन्होंने—'सुर-संतापी, अधम राक्षसकुलोत्पन्न, दशग्रीवानुज विभीषणको भी पादाश्रय दो प्रभो! रक्षा करो! इस पापिष्ठ पामरकी रक्षा करो!'

श्रीरघुनाथ अस्त-व्यस्त उठे और दौड़े आये वे दीनबन्धु। विशाल भुजाओंमें भरकर उन्होंने विभीषणको उठाकर हृदयसे लगा लिया।

अपूर्व औदार्य श्रीरघुनाथका और अद्‌भुत विनम्रता विभीषणकी। वे श्रीरामानुजके ही नहीं, सुग्रीवके चरणोंपर भी सिर धरनेको झुके। उन्हें उठाकर रामानुज तथा रोककर कपीन्द्रने आलिङ्गन दिया। लगता था अवसर मिले तो विभीषण एक-एक वानर-ऋक्षके पादस्पर्श करना चाहते हैं; किन्तु श्रीरघुनाथने हाथ पकड़कर उन्हें समीप बैठा लिया।

'लंकेश! सकुशल आगये आप? किसी वानरने कोई अविनय तो नहीं की?' श्रीरघुनाथने पूछा और मैं चौंक गया। मेरे स्वामीकी वाणी असत्यका स्पर्श नहीं करती। उन सर्वेश्वरेश्वरने पहुँचते ही विभीषणको 'लंकेश' कह दिया। दशग्रीव! समाप्त हो गया तेरा दम्भ। लङ्काका भविष्य इसी क्षण सुनिश्चित होगया।

प्रभु सप्रेम पूछते रहे—लङ्काका, दशग्रीव तकका कुशल समाचार पूछा उन्होंने। विभीषणके परिवारके सम्बन्धमें चिन्ता प्रकट की। विभीषण विनम्रताकी मूर्ति—वे बहुत कम बोले। उनकी वाणीमें उनका अडिग विश्वास बोलता था—'आप जिन्हें सकुशल देखना चाहते हैं, दशग्रीव उनका अमङ्गल कर नहीं सकता।'

'कुमार! मैंने विभीषणको लंकेश कहा है।' प्रभुने अनुजकी ओर देखा—'लङ्काके सिंहासनपर इनका अभिषेक यथासमय तुम्हारे करोंसे होगा, जैसे किष्किन्धामें तुमने सुग्रीवको अभिषिक्त किया था; किन्तु राम अभी यहीं इनका अभिषेक करना चाहता है।'

'मुझे इन श्रीचरणोंका तुच्छ सेवक रहने दें।' निस्पृह विभीषण विनय करते रहे—'मेरे अन्तरमें पहिले वासना थी—मैं स्वीकार करता हूँ; किन्तु वह तो इन पादपद्मोंके सम्मुख आते ही स्वयं विलीन होगयी। अब इस कर्दममें क्यों प्रभु मुझे डालें?'

'मित्र! तुममें कभी कामना नहींथी।' श्रीरघुनाथने कहा—'लेकिन रामको अपनी वाणी सत्य करनेका अवसर दो तुम।' श्रीरघुनाथके दर्शनका फल तत्काल प्राप्त हुआ। श्रीलक्ष्मणलाल संकेतके अनुसार सागरका जल ले आये। श्रीरामने स्वकरोंसे उस जलसे उसी समय विभीषणका तिलक करके जयघोष किया—'लंकेश्वर विभीषणकी जय!'

'जय! लंकेश्वर विभीषणकी जय!' सभी वानर-ऋक्षोंने जयनाद किया। हमारे दलमें विभीषण इसी क्षणसे 'लङ्केश्वर' होगये। उनका यही नाम हमारे यहाँ चलने लगा। हमारी दृष्टिमें राक्षसेन्द्र एक और वह विभीषण।

३०-सागरपर सेतु

श्रीरघुनाथके साथ हम सब सागर-पुलिनपर ही रुके थे। किष्किन्धासे यहाँ तक अविराम चलते आये थे, अतः सबको कुछ विश्रामकी अपेक्षा थी। विभीषणका अभिषेक करनेके पश्चात् प्रभुने पूछा—'हम सब इस सौ योजन समुद्रके पार कैसे जा सकते हैं—यह उपाय आप सब सोचकर निश्चय करें।'

जीव स्वभावसे दुर्बल है। कोई न कोई दुर्बलता सभीमें होती है। दशग्रीवकी सभामें सम्मति देनेके अभ्यासकी दुर्बलता विभीषणजीमें थी। वसे उन्होंने अपनी यह त्रुटि पहली ही बारमें समझली और आगे बिना पूछे फिर कभी सम्मति नहीं दी ; किन्तु इस बार सबसे पहिले उन्होंने ही सम्मति दो। बड़ी अटपटी सम्मति—'सागरको सगर पुत्रोंने अभिवद्ध किया, अतः ये रघुवंशके पूर्वपुरुष हैं। इनसे प्रार्थना करके पथ प्राप्त हो सकता है।'

कोई दूसरा होता तो इस सम्मतिमें दशग्रीवको समय देनेकी दुरभिसन्धि देखता ; किन्तु उदारचक्र चूड़ामणि श्रीरघुनाथने विभीषणका प्रस्ताव तत्काल स्वीकार कर लिया। विभीषण अभी आये थे। उनकी यह प्रथम सम्मति थी। अतः प्रभुने अनुजका आग्रह कि 'शर-सन्धान करके समुद्र शुष्क कर देना चाहिए।' स्थगित करके विभीषणकी सम्मतिको सम्मानित किया। वे निखिल लोकेश्वर दर्भासनपर जलका भी त्याग कर जलनिधिसे पथ-प्राप्तिके लिए प्रार्थना करने बैठे।

प्रायः जड़ तत्त्वोंके अधिदेवता प्रार्थनासे कम प्रभावित होते हैं। इनसे काम लेनेके लिए प्रक्रियाका (वैज्ञानिक प्रयोगोंका) आश्रय लेना पड़ता है। परात्पर परमपुरुष श्रीरघुनाथ अनाहार, अनिद्र तीन दिवा-रात्रि अखण्ड एक आसनपर बैठे प्रार्थना करते रहे ; किन्तु पयोधिपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उत्ताल तरंगे पूर्ववत् उदधिमें उठती रहीं।

प्रतीक्षाकी भी सीमा होती है। हम सबके लिए प्रतिपल मूल्यवान था। अन्ततः चौथे दिन प्रातः स्नान-सन्ध्याके अनन्तर सृष्टिने श्रीरामका

निखिल लोकेश्वर स्वरूप भी देखा जब रुष्ट होकर अनुजसे धनुष माँगा उन्होंने। वह अरुणाभमुख, कुटिल भृकुटि कपि स्तब्ध देखते रह गये। सुरोंमें ही नहीं, सृष्टिकर्त्तामें भी समीप आकर प्रार्थना करनेका साहस नहीं था जब श्रीरामने ज्यासज्ज कोदण्डपर शर चढ़ाया। उदधिकी उत्ताल तरंगे पलक मारते बैठ गयीं। अतल गम्भीर पयोधिका पानी खौलने लगा था।

अभी श्रीरघुनाथके अधर आग्नेयास्त्रके मन्त्रोच्चारमें हिले भी नहीं थ कि 'त्राहि माम् ! त्राहि माम् !' पुकारते जलनिधिके अधिदेवता सागर जलसे ऊपर उठे। मौक्तिक-सज्ज केशपाश बिखर गये थे। नील अङ्ग-कान्ति भयभीत होनेसे हरिताभ हो उठी थी। तरङ्ग नील-वसन अस्त-व्यस्त —विशाल शुक्ति-पात्रकी मौक्तिक राशि प्रभुके श्रीचरणोंके सम्मुख अर्पित करके साष्टाङ्ग गिरे वे।

'आपने ही हमें जड़-अविचारी बनाया है।' साक्षात् जलाधिदेव ठीक बोल भी नहीं पा रहे थे—'अतः यदि हमसे प्रमाद होता है, प्रभुके पादपद्मोंके अतिरिक्त क्षमा कहाँ प्राप्त करेंगे हम ? आप सत्य-संकल्प चाहेंगे तो समुद्र शुष्क होनेमें पलार्ध भी नहीं लगेगा ; किन्तु निखिलेश ! अनन्त-अनन्त निरपराध प्राणी हैं मेरे इस उदरमें और वे जल-जीवी हैं। उनका जीवन………।'

'लङ्का पहुँचनेके लिए पथ तो प्राप्त ही करना है।' श्रीरामकी भ्रूपर पड़ी भङ्गिमा सरल न हो गयी होती, बेचारे जल-जीव तो खौलते जलमें उबलकर मर गये होते।

समुद्रने बतला दिया कि नल-नीलको ऋषियोंका शाप है—उनके स्पर्श किये पाषाण पानीमें डूब नहीं सकते। वे निपुण शिल्पी हैं। अतः सेतु-निर्माण करके पथ-प्रस्तुत कर देंगे। श्रीरामका अमोघ वाण—ज्यापर पहुँचकर वह लक्ष्यवेध किये बिना उतर नहीं सकता था। सागरने ही लक्ष्य-निर्दिष्ट किया। समुद्रके उत्तर तट पर स्थित द्रुमकुल्य देश उस आग्नेयास्त्रसे सदाके लिए मरुस्थल होगया। भस्म हो गये वहाँके अभिमानी देवद्रोही असुर।

जलाधिदेवके विदा होते ही सेतु-निर्माण प्रारम्भ हो गया। नल-नील सुस्थिर बैठ गये जलके समीप। समस्त वानर-ऋक्ष दौड़-दौड़कर

शिलाएँ, गिरि-शिखर, वृक्ष उखाड़कर, उठाकर लाने लगे। मैं स्वयं विशाल शिखर लानेके साथ अपने वानरोंको प्रोत्साहित करने लगा। हमारे शिल्पी सावधान थे। उन्होंने देख लिया था कि उनके स्पर्शके प्रभावसे जलपर शिलाएँ तैरती अवश्य हैं ; किन्तु समुद्रकी तरंगे उन्हें स्थिर श्रृङ्खला नहीं बनाने देतीं। उन्मादिनी लहरें उन्हें चाहे जिधर बहा देती हैं, अतः उन्होंने एक क्रम बनाया। एक शिलापर 'रा' और दूसरीपर 'म' लिखकर उनको व्यवस्थित रखना प्रारम्भ किया। अमित प्रभाव राम-नामका अतिक्रमण समुद्र कर नहीं सकता था। सेतुका निर्माण होने लगा।

प्रथम दिनके प्रारम्भिक कालमें ही मैंने देखा कि प्रभु बहुत ध्यानसे सेतु-निर्माण देखकर एकाकी एक ओर जा रहे हैं। ऐसे समय मायावी राक्षस कोई भी उत्पात कर सकते हैं, यह सोचकर मैंने नीरव अनुगमन किया। मुझे इतनी दूर रहना था कि स्वामीको मेरी उपस्थितिके बोधसे बाधा न पड़े।

एक ओर एकान्तसे श्रीरघुनाथने एक छोटी शिला उठायी और सागरके समीप जाकर जलमें छोड़ दिया। पानीमें पड़नेपर पत्थरको तो डूबना ही था ; किन्तु प्रभुके श्रीमुखपर खेद के चिह्न स्पष्ट दिखलायी पड़े। यह सेवाका अवसर था। मैं अञ्जलि बाँधे सम्मुख उपस्थित हुआ तो श्रीरघुनाथने नेत्र उठाये। दृष्टिके द्वारा ही मुझे जो कहना हो, कहनेकी अनुमति मिल गयी।

'आपका नाम अधमोद्धारक है। वह शाश्वत पतितपावन—उसके प्रभावसे पाषाण पानीपर तैरते हैं, यह अद्‌भुत नहीं है मैंने प्रार्थना की—'किन्तु स्वामी ! आप अपने करोंसे जिसका त्यागकर देंगे, उसके लिए डूब जानेके अतिरिक्त और क्या गति है ?'

स्मित आगया श्रीरघुनाथके कमल-मुखपर। मैं धन्य होगया उस शोभाके दर्शन करके। वे लौटे और मैं साथ ही लौटा। प्रभु जब लौटकर शिलातलपर आसीन होगये, मैं सेतुके समीप आया। सहसा मेरी दृष्टि एक अत्यन्त छोटे प्राणीपर पड़ी। वह एक गिलहरी थी। मैं चौंका—'यह कोमल कलेवर प्राणी सेतुपर क्यों ?'

किसी भी क्षण वह किसी कपि अथवा ऋक्षके पैरोंके नीचे कुचलकर मर सकती थी। कोटि-कोटि वानर विशाल शिलाएँ अथवा वृक्ष लिए दौड़े

आ रहे थे। दौड़ते ही लौटते थे। ऐसेमें पैरोंके समीप इतने नन्हे प्राणीको बचाकर निकलना बहुत कठिन था। मैंने उसे अपने हाथपर उठा लिया—'तुम यहाँ क्या करने आयी ? यहाँ तुम्हारे लिए कोई आहार नहीं है। सेतुपर मत आओ !'

'सेतु तुम्हारा है या श्रीराम का ?' उस नन्हे प्राणीने पूँछ पटककर अपनी चीं-चींकी कोमल भाषामें क्रोधपूर्वक पूछा। मेरे उठानेसे वह रुष्ट हो गया था।'

'श्रीरामका।' मैंने स्वीकार किया।

'श्रीराम सर्वेश्वर हैं।' वह प्राणी वैसे ही सतेज बोल रहा था—'उनकी सेवा करके अपनेको कृतार्थ करनेका स्वत्व सबको है। केवल वानरोंको ही यह अधिकार तो प्रभुने नहीं दिया है ?'

'तुम इस कार्यमें क्या सेवा करोगे ?' मैंने कहा—'किसीके भी पैरोंके नीचे पड़कर घिस जा सकते हो। अपने रक्तसे प्रभुका यह सेतु अपवित्र तो मत करो।'

'तुम्हें दीखता नहीं कि सेतु-तल कितना विषम है। प्रभुके श्रीचरण कितने सुकुमार—उन्हें कष्ट होगा इसपर चलनेमें। मैं अपनी शक्तिके अनुसार इसे समतल करनेके प्रयत्नमें हूँ। प्राणी अपनी शक्तिके अनुसार ही तो सर्वेशकी सेवा करेगा ?' उसने कहा—'तुम अमर हो सकते हो, मैं नहीं हूँ। श्रीरघुनाथकी सेवामें लगा मेरा शरीर उनके किसी सेवकके पैरोंसे पिस जायगा तो पवित्र हो जायगा। मेरा जीवन सफल हो जायगा। मरना तो कभी न कभी मुझे है ही। वे सर्वव्यापी कहाँ नहीं हैं ? अन्तमें कहीं भी गिरे, इस गिलहरीका शव उनके अङ्कमें ही गिरना है। तब सेतुपर इसकी मृत्युसे सेतु अपवित्र क्यों होगा ?'

मैंने देखा था कि यह छुद्र प्राणी सागर-जलमें स्नान करके पुलिनपर रेतमें लोट-पोट होता है और सेतुपर जाकर अपने अङ्ग झाड़ता है। फिर दौड़ता है स्नान करने। इसका शरीर अब भी आर्द्र था और इसके केशोंमें रेत भरी थी। यह कोमल जीव तो बार-बारके स्नानसे ही मर जायगा ; किन्तु इसकी सेवा—इसकी जीवन तक देनेकी तत्परता—मेरे सर्व-समर्थ स्वामीके सम्मुख हममें-से किसीकी सेवा इसकी समता कर सकेगी ? श्रीरघुनाथको क्या सामग्री अथवा कार्य तुष्ट करता है ? मुझे अपनी हथेलीपर

पूँछ पटकता, सिर उठाये वह प्राणी बहुत भारी--बहुत महान लगा। मैंने उसे मस्तक झुकाया।

मैं उसे हथेलीसे उतार ही देने वाला था ; किन्तु इससे पूर्व प्रभुके समीप पहुँचाना था उसे। मैंने देखा कि सस्मित श्रीरघुनाथ मुझे संकेत कर रहे हैं उस प्राणीको लेकर समीप आनेका। मैं समीप गया तो प्रभुने स्नेह पूर्वक उसे उठाकर अपने वाम कर-तल पर रख लिया। उनके अरुण पद्मपाणिपर वह प्राणी शान्त बैठ गया और सिर झुकाकर कर-तलको सूँघने लगा।

'मैं तुमसे--तुम्हारी सेवासे प्रसन्न हुआ।' श्रीरघुनाथने अपने दक्षिण-करसे उसके पृष्ठ देशका स्पर्श किया और उनकी अङ्गुलियोंके चिह्न उसके पृष्ठपर अङ्कित हो गये। इस प्रकार श्रीराघवेन्द्रका मुद्राङ्कित प्रीति-पात्र बननेका सौभाग्य कहाँ किसीको मिलता है। वे दयाधाम कह रहे थे—'तुम अधिक श्रम मत करो। सेतुपर तो मुझे ये पवनपुत्र अपने स्कन्धपर ले जायँगे। तुम साकेतमें हमारे स्नेह-भाजन रहोगे।'

बहुत प्रसन्न वह प्राणी विदा हुआ और मैं सेतु-निर्माणकी सहायतामें लगा। कोटि-कोटि वानरोंको समुद्र पार करना था। नल-नीलने सेतुकी चौड़ाई दस योजन रखी थी। प्रथम दिनका कार्य-प्रारम्भ कुछ देरसे ही हो सका था, अतः इस दिन सायंकाल तक सेतु समुद्रके भीतर चतुर्दश योजन मात्र बढ़ सका।

दूसरे दिन नल-नीलने बीस योजन सेतु और बनाया। यह गति उन्हें स्वयं पर्याप्त नहीं लगती थी। तीसरे दिन इक्कीस योजन, चौथे दिन बाइस योजन और अन्तिम पाँचवें दिन तेइस योजन निर्माण करके उन्होंने सेतु पूरा कर दिया।

सेतु-निर्माणके प्रारम्भमें सभी समीपके शिखर, वृक्ष शिलाएँ, लाते रहे। जैसे-जैसे सेतु आगे बढ़ता गया, समीपके पर्वत समाप्त होते गये। मैंने ही प्रस्ताव किया था—'जो समर्थ हैं, वे दूरसे सम्पूर्ण शिखर ले आवें। समीपके पर्वत सामान्य बल वानरोंको लानेके लिए छोड़ दिये जायँ।'

मेरे प्रस्तावकी स्वीकृतिका सुफल हुआ—जैसे-जैसे हम दूर जानेको बाध्य हुए, भारी शिखर लाने लगे। इससे सेतु-निर्माणकी गति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी।

अन्तिम दिन शिखर लानेकी मेरी वह अन्तिम यात्रा थी। मैं सबसे दूर हिमालयपर पहुँचा और वहाँ द्रोणाचलका एक शिखर उठाने लगा। सम्पूर्ण शक्ति लगाकर भी जब मैं उस शिखरको हिला नहीं सका, मुझे आश्चर्य हुआ। हाथ लगाकर हारकर त्याग देना मेरे स्वभावमें नहीं है। मैंने श्रीरघुनाथका ध्यान किया और उस शिखरकी ओर देखा। उसका अलौकिक दिव्यत्व मेरे सम्मुख प्रकट हो गया ! वह कोई पार्थिव पर्वत था कि मैं उठा लेता। उसकी तो एक-एक शिला शालग्राम स्वरूप थीं।

मैंने पृथ्वीमें साष्टाङ्ग गिरकर उस साक्षात् भगवत्स्वरूप शिखरको प्रणिपात किया। हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'देव ! मैं तो आपको धरापर अवतीर्ण साक्षात्परम पुरुषके समीप ले चल रहा था....।'

'यदि तुम परमपुरुषके पादस्पर्श प्राप्त करानेकी प्रतिज्ञा करते हो तो मैं चलता हूँ।' पर्वतसे स्पष्ट स्वर आया।

'मैं प्रतिज्ञा करता हूँ !' कहकर मैंने उठाया तो वे गिरिराज मेरे करपर पुष्पके समान भारहीन होकर आ गये। मैं पूरे वेगसे चला।

'सेतु-निर्माण सम्पूर्ण हो गया !' मैं ब्रजभूमिमें ही पहुँचा था कि एक वानरने आकर पुकारा—'प्रभुका आदेश है, जो जहाँ कोई गिरि-शिखर लिये हो, जनपदको बचाकर वहीं धर दे और आ जाय।'

मैंने गिरिराजको भूमिपर स्थापित करके आश्वासन दिया—'मैं प्रभुके सम्मुख प्रार्थना करूँगा। आशा है, मेरे करुणासिन्धु मेरी प्रार्थना अस्वीकार नहीं करेंगे।'

मैंने लौटकर प्रार्थना की तो प्रभुने सप्रेम कहा—'हनुमान ! वे गिरिवर जहाँके हैं, वहीं पहुँचे हैं। उनको यहाँ सागर-तट लाकर ब्रजधरासे दूर नहीं करना है। कह आओ कि द्वापरान्त तक प्रतीक्षा करें। मैं उन्हें अपनी क्रीड़ा-भूमि बनाऊँगा। उनको करपर धारण करूँगा। स्वजनोंके साथ उनका पूजन करूँगा !'

मैंने जाकर गिरिराजको सन्देश सुना दिया। लगभग समस्त दक्षिण भारत गिरि-शिखर शून्य हो गया था ; किन्तु वानरोंने अन्तिम आदेशके अनुसार जहाँ-तहाँ वे शिखर, जिन्हें वे उठाये ला रहे थे, डाल दिये। इससे वह प्रदेश पर्वत बहुल हो गया।

३१—सुबेल-शिविर

हममें किसीको—नल-नीलको भी गर्व हो कि उन्होंने सेतु-निर्माण करके प्रभुके लिए लङ्काका पथ प्रशस्त किया है तो व्यर्थ था वह गर्व। मेरे गर्वहारी स्वामीने प्रत्यक्ष कर दिया कि यह सेतु-निर्माण उसी प्रकार उनकी क्रीड़ा थी, जैसे सृष्टि-सृजन है। वे सर्वसमर्थ—सभूचे वानरदलको बिना इस सेतुके ही सागरपार ले जा सकते थे। अब भी सेतु अपर्याप्त होगया तो उन्होंने यही किया।

दस योजन चौड़ा सेतु हमारे कोटि-कोटि वानरोंके पार होनेके लिए बहुत संकीर्ण सिद्ध हुआ। पक्तिबद्ध भी वानर चलते तो अत्यधिक विलम्ब होता और यह पंवितबद्ध रहना हमारे वर्गके स्वभावमें नहीं है। लङ्काके युद्धमें भी हमने ऐसा कोई व्यूह नहीं बनाया था। लेकिन सेतुकी संकीर्णता बाधा नहीं दे सकी। श्रीरघुनाथ जैसे ही सानुज सागर-तटपर पहुँचे, उनका दर्शन करने सागरके मत्स्य, महामत्स्य, तिमि, तिमिङ्गल, मकर आदि सब एक साथ ऊपर आगये। उनमें कच्छप, शङ्ख, शुक्ति सभी थे। उनकी अपार भीड़—एक-दूसरेसे सटे ही नहीं, एक दूसरेके शरीरपर अपने शरीरका कुछ भाग चढ़ाये वे इस प्रकार अविचल स्थित थे जैसे वे भी सेतुके भाग हों। उन्होंने सेतुका विस्तार कई गुणित बढ़ा दिया।

वानर-ऋक्षोंके दलका बड़ा भाग इन जलचरोंके ऊपरसे समुद्र पार हुआ। उन जल-जीवोंने किसीके भारका जैसे कोई अनुभव ही नहीं किया। हमारे वानर गगनमें भी कूदते थे और सेतुपर या जलचरोंके ऊपर उतर पड़ते थे। श्रीरघुनाथने मेरे और लक्ष्मणजीने अङ्गदके स्कन्धपर आरोहण स्वीकार कर लिया था। लेकिन प्रभुने प्रारम्भमें ही मुझे आदेश दिया—'पवनकुमार ! सबसे पीछे रहकर चलो। अपने समस्त दलको आगे समुद्र उतर जानेको प्रेरित करो।'

इस आदेशका अर्थ वानरोंने भले यह लगाया कि उन्हें पहिले पहुँचकर सबके लिए—विशेषकर प्रभुके लिए शिविर-स्थान स्वच्छ-व्यवस्थित

करना है ; किन्तु इस आदेशका अर्थ भी स्पष्ट होगया । सानुज श्रीरघुनाथ जैसे ही सेतुसे नीचे उतरकर सागर-तटसे कुछ दूर हुए, जलपर ऊपर आये जलचरोंने डुबकी लगाली । जलचरोंके द्वारा निर्मित सेतु अदृश्य होगया ।

मैंने विभीषणजीको सूचित कर दिया था कि सुबेल अब निरापद है । वानरेन्द्र सुग्रीवके साथ वे पहिले सागर पार करनेवालोंमें थे । इसलिए हमारा दल त्रिकूटपर पहुँचकर भी व्यवस्थित, अनुशासित तथा दशग्रीवके किसी सम्भावित दुष्प्रयत्नसे सुरक्षित था ।

सुबेल-शिखरसे अधिक उपयुक्त शिविर-स्थान समुद्र पार लङ्काके समीप सम्भव नहीं था । मैंने पहिले ही जाम्बवन्तको पूरा विवरण दे दिया था । प्रभु तो नित्य निरपेक्ष हैं । उन्होंने युद्धकालमें भी कभी व्यवस्था अथवा संग्रामके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा । वे केवल तब, जब हमारा दल सङ्कटमें आया, धनुष चढ़ाकर सामने बढ़े । अन्यथा वानरेन्द्र सुग्रीव, लंकेश विभीषण तथा ऋक्षराज जाम्बवन्तपर ही व्यवस्था एवं युद्ध-सञ्चालनका पूरा भार था । कहना चाहिए कि हमारी संग्राम-सञ्चालक समिति इन सदस्योंकी थी । इनमें कभी मतभेद नहीं हुआ ।

जाम्बवन्तजी तथा कपीन्द्र सुग्रीवने भी सुबेल-शिखरको उपयुक्त माना । विभीषणजी पहिलेसे स्थानके सम्बन्धमें मुझसे सहमत थे । उनका कहना था—'सुबेलपर शिविर-स्थापन स्वयंमें लङ्काको आतङ्कित करनेके लिए पर्याप्त है । यहाँ शिविरका अर्थ ही है कि श्रीरघुनाथ कालजयी हैं और उनके किङ्कर भी शनि अथवा यमकी किञ्चित् भीति नहीं मानते ।'

विभीषणजीके प्रीतिपात्र लङ्कामें थे । उनसे हम सबको समय-समयपर आवश्यक सूचनाएँ मिल जाया करती थीं । इसी प्रकार सूचना मिली थी कि जैसे ही दशग्रीवने सुना कि श्रीराम सदल सुबेलपर उतरे हैं, आकुल होकर एक साथ दसों मुखोंसे बोल पड़ा था—'यह कैसे सम्भव हुआ ? वे मानव और वानर वहाँ सुरक्षित हैं ?'

हम लगभग सायंकाल समुद्रपार पहुँचे थे । जितनी देरमें प्रभुने सायंकालीन स्नान-सन्ध्यादि सम्पन्न किया, हम सबने उनके लिए एक समतल विस्तीर्ण शिलापर पल्लव-तल्प प्रस्तुत कर दिया । श्री लक्ष्मणलालने उसपर मृगचर्म आस्तृत कर दिया । हम जानते थे कि छोटे कुमार रात्रि-शयन नहीं

करते हैं। वे कोई आस्तारण भी नहीं अपनाते। वे अत्यन्त श्रान्त होनेके कारण युद्ध कालमें प्रभुके विशेष अनुरोधपर केवल एक रात्रि सोये थे और उसी रात्रि अनर्थ हो गया था। अहिरावण प्रभुके साथ उनका अपहरण करनेका अवसर पा गया था। उन्हें तो यहाँ प्रभुसे कुछ दूर पूरी रात्रि शिलापर वीरासनसे धनुष चढ़ाये प्रतिदिनके समान बैठे रहना था। विभीषणजीने भी हम सबके बहुत आग्रह करनेपर भी पत्र-शैया स्वीकार नहीं की। वे भी पूरे युद्ध-काल अनिद्र रहे। आग्रह करनेपर कह देते थे—'हम तो निशाचर हैं। रात्रिमें निद्रा हमारे लिए अस्वाभाविक है।'

विभीषणजीके वचनका तात्पर्य हम सब समझते थे। लङ्काके सभी निवासी निशाचर थे। अतः रात्रिमें उनकी ओरसे अधिक सावधानी आवश्यक थी।

वानरेन्द्र सुग्रीवके साथ हमारी पूरी सेनाके विश्रामके लिए तो सुबेल वृक्षोंसे ढका ही था। हम सब शाखाओंपर सो सकते थे; किन्तु वानरेन्द्र, युवराज अङ्गद, ऋक्षराज जाम्बवान ही नहीं, और भी हमारे नायक स्वयं मेरे साथ रात्रि-जागरणके व्रती बन गये। प्रभुकी सेवाका यह सुयोग सौभाग्यसे प्राप्त हुआ था। इसे भला कौन छोड़ देता। हमारी सेनाके सामान्य वानर भी बहुधा कम सोते थे। वे भी रात्रिमें इधर-उधर थोड़ी धमा-चौकड़ी कर लेते थे।

सबको प्रारम्भमें ही वानरेन्द्रने आदेश दे दिया—'लङ्काकी ओर कोई अभी नहीं जायगा। त्रिकूटके दूसरे-शिखरकी ओर भी नहीं जाना है; किन्तु सुबेल अब सम्पूर्ण हमारा शिविर है। कोई राक्षस इधर आनेका साहस करे तो उसे दण्ड देनेको सब स्वतन्त्र हैं।'

इस आदेशका परिणाम अच्छा हुआ। पहिले सुबेल-शिखरकी ओर कोई राक्षस आता ही नहीं था। अब हमारे शिविरका समाचार पाकर कुछने दुस्साहस किया, वे एकाकी ही आये, दल बनाकर कोई नहीं आया। हमें कभी पता नहीं लगा कि उनमें कौन दशग्रीवके गुप्तचर थे और कौन केवल कुतूहलवश दूरसे हमें देखने आये थे। वानरोंने जिसे देख लिया, घेर लिया और हमारे कोटि-कोटि वानर—एक राक्षसको कुछ शत वानरोंने भी एक-एक थप्पड़ जमाया तो उसे जीवित लङ्का लौटना था?

प्रथम रात्रि प्रभु सुबेलपर शिला-तल्पपर विराजमान हुए। मुझे और युवराज अङ्गदको चरण-संवाहनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। वानरेन्द्र

सुग्रीव तथा विभीषणजी प्रभुके दोनों पार्श्वोंमें बैठे थे । तभी लीलामयने शशिकी ओर गगनमें दृष्टि उठायी । सहज पूछ लिया—'अमल उज्वल सुधाकरमें यह श्यामता क्यों है ?'

क्यों है शशिमें श्यामता, यह क्या सर्वज्ञसे छिपा था ? यह क्या वैज्ञानिक अन्वेषणका अवसर था कि हम देखने जाते अथवा बतलाते कि वहाँ चन्द्रतलमें वे ज्वालामुखी पर्वतोंके विवर हैं ? इस सबका इस समय प्रयोजन ? स्पष्ट था कि प्रभु जानना चाहते थे कि उनके सेवकोंका संसार तथा संसारके दृश्योंको देखनेका दृष्टिकोण क्या है ।

वानरेन्द्र सुग्रीवने, लंकेश विभीषणने, युवराज अङ्गदने तथा स्वयं प्रभुने भी अपना दृष्टिकोण सूचित किया । प्रभुको भगवती भूमिजाका वियोग भूलने योग्य था ? अतः उन्हें सर्वत्र वियोग-दर्शन स्वाभाविक था । दूसरोंकी बातें मुझे रुचीं नहीं । भले उसमें उत्तम उत्प्रेक्षाएँ थीं ; किन्तु श्रीरघुनाथकी सन्निधिमें भी उनके चरणाश्रितोंको साहित्य सूझे, इस समय भी सर्वत्र ये दूर्वादल श्याम दर्शन न दें—जीवन क्या कभी अन्यत्र धन्य होगा ?

'शशि आपका अन्तरङ्ग सेवक है । इसके हृदयमें आपकी जो श्रीमूर्ति विराजमान है, वही इस श्यामताका आभास देती है ?' मेरी ओर प्रभुने दृष्टि उठायी तो मैंने निवेदन कर दिया । यहीं चर्चा समाप्त हो गयी । सिन्धु-समुद्भव शशि भगवती रमाका सहोदर । अब उसके अन्तरमें हमारे ये नरके परम सखा नारायण निवास नहीं करेंगे ?

'मित्र सुग्रीव ! लगता है कि वर्षा होने वाली है ।' प्रभुने दक्षिण गगनकी ओर देखकर कहा—'बहुत काली घटा उठ रही है दक्षिणसे । उसमें चपलाकी चमक है और मेघ गर्जनकी जो गड़गड़ाहट है, वह सूचित करती है कि कठोर उपलवृष्टि होने वाली है । हम सबको सुरक्षा-स्थल ढूँढ़ना चाहिए ।'

'प्रभु ! ऐसा कुछ होता नहीं लगता ।' सुग्रीवने हाथ जोड़कर नम्रता-पूर्वक कहा—'हम वानर तो उपदेवता हैं, प्रकृतिकी गोदमें उन्मुक्त रहनेवाले दूसरे प्राणी भी पर्याप्त पहिले भूकम्प, वर्षा, झञ्झावातादि प्राकृतिक उत्पातोंका संकेत प्राप्त कर लेते हैं । ऐसी कोई सूचना हमें प्राप्त नहीं हो रही है । अन्यथा अब तक वानर एवं ऋक्ष गुहाओंके अन्वेषणमें लग गये होते ।'

'देव ! यह दशग्रीवका दर्प है। प्राकृतिक विपर्ययका प्रारम्भ नहीं।' विभीषण हाथ जोड़कर खड़े हो गये—'परमपुरुष अपने सेवकोंके साथ यहाँ उन्मुक्त आकाशके नीचे आसीन हैं, प्रकृति अथवा मेघाधिप देवराज कोई दुस्साहस कर ही नहीं सकते। वे जानते हैं कि जिनका एक शर-सन्धान-मात्र सागरको सन्तप्त कर सकता है, उनका वायव्यास्त्र मेघोंका नामशेष करनेकी शक्ति रखता ही होगा ?

'दशग्रीवका दर्प ?' प्रभुने पूछा।

'वहाँ लङ्काके दूसरे पार्श्वमें त्रिकूटका जो तीसरा शिखर है, उसपर राजकीय मल्लशाला बनी है। विशाल मेघाडम्बर छत्रके नीचे इस समय वहाँ दशग्रीव बैठा होगा। उसके वामपार्श्वमें राक्षस साम्राज्ञी भी होंगी; क्योंकि दानवेन्द्र मयने अपनी पुत्रीको जो कर्ण-कुण्डल दिये हैं, उनकी कान्ति ही यह चपलाकी चमकका भ्रम उत्पन्नकर रही है।' विभीषणने पूरा विवरण दिया—'मल्लशालामें मल्लयुद्ध होते समय दुन्दुभिका घोष मेघ-गर्जन प्रतीत हो रहा है। दशग्रीव अपने राक्षसोंको अपनी निर्भीकता प्रदर्शित करना चाहता है। साथ ही हम सबको सूचित करना चाहता है कि वह हम सबकी कितनी उपेक्षा करता है। इस दलको नगण्य मानकर मजेसे निश्चिन्त मल्लयुद्ध देख सकता है। मल्लशाला यहाँ से भले न दीखे, वाद्यध्वनि हम सुनते होंगे, यह उसे पता है।'

'अच्छा !' श्रीरघुनाथके अधरोंपर स्मित आया। सहज भावसे एक शर उन्होंने दक्षिण करमें अबतक ले रखा था, उसे तल्पपर रखकर पार्श्वसे धनुष उठाकर प्रत्यञ्चा चढ़ाली और वही शर बिना कानतक पूरी प्रत्यञ्चा खींचे, बैठे-बैठे ही धीरेसे छोड़ दिया।

श्रीरघुनाथने तो धनुषको ज्या उतारकर पार्श्वमें भी रख दिया उसी समय। उनका वह वाण भी दो क्षणमें लौटकर उनके त्रोणमें चला गया; किन्तु दक्षिण दीखनेवाली वह घटा लुप्त हो गयी थी। वहाँ न विद्युत्‌की चमक थी और न गड़गड़ाहटकी ध्वनि। पीछे जब समाचार मिला, विभीषणने बतलाया—'वहाँ मल्लशालामें कोई यहाँसे छूटे शरको लक्षित नहीं कर सका। दशग्रीवका छत्र, मुकुट तथा मय-तनयाके कर्ण-कुण्डल अचानक गिर पड़े कटकर तो वाद्य एवं मल्लयुद्ध बन्द हो गया। इसे भारी अपशकुन समझा सबने। तभी दशग्रीवने सबको आश्वासन दिया; किन्तु स्वयं भी वहाँ बैठा नहीं रह सका। महाराज्ञीके साथ अपने सदन लौट गया।'

उस रात्रि और कुछ होना ही नहीं था। प्रभातमें ऋक्षराज जाम्बवन्तकी सम्मतिसे प्रभुने युवराज अङ्गदको दूतके रूपमें दशग्रीवके समीप भेजा। हमारे युवराजने लौटकर मुझसे कहा था—'पवनकुमार ! यह मर्यादा तो तुमने ही बना दी कि श्रीरामका दूत लङ्का जाय तो दशग्रीव से मिलनेके पूर्व उसके एक पुत्रकी वलि उस राक्षस-भूमिको दे दे। मैंने लङ्कामें पहुँचते ही तुम्हारे द्वारा स्थापित इस पवित्र-परम्पराको पूर्ण किया। दशग्रीव तो सम्पूर्ण राक्षसकुलका श्रीरामके शरोंसे समुद्धार करानेपर तुला है। वह किसीका समझाना कैसे सुनेगा ? उसके दुर्वचनोंसे रोषमें आकर मैंने वहाँ भूमिपर कर.पटके—इससे उसकी सभामें भूकम्प आगया। रावणके मुकुट मस्तकसे भूमिमें गिर पड़े। मैंने उनमें-से चार झपटकर इधर फेंके थे। शेष उसने शीघ्रतासे उठाकर बचा लिये।'

युवराज अङ्गदके द्वारा दशग्रीवके चार प्रकाश-पुञ्ज मुकुट ही नहीं प्राप्त हुए, दुर्गका पूरा समाचार प्राप्त हो गया। उसी समय प्रभुके आदेशसे हमारी युद्ध-समितिके तीनों सदस्योंने मन्त्रणा की। निश्चय होगया कि प्रातः सूर्योदयसे पूर्व लङ्कापर घेरा डाल देना है। चारों दिशाओं—द्वारोंपर आक्रमणके लिए चार दल तथा दलपति निश्चित हो गये।

—:×:—

३२—लङ्काकी समर-भूमि

संसार जानता है कि लङ्काकी समर-भूमिमें सकुल लोकरावण रावण श्रीरघुनाथकी शराग्निमें स्वाहा हो गया।

'आप इस प्रकार तो यह वर्णन मत करो !' बालकोंने श्रीहनुमानजीको युद्धका अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन समाप्त करते देखकर आग्रह किया—'युद्धका पूरा वर्णन हम पढ़ सकते हैं ; किन्तु आपने जो प्रचण्ड पराक्रम प्रकट किया, उसे हमको आपसे अवश्य सुनना है।'

बालकोंकी हठ—अत्यन्त संकोच होनेपर भी विवश होकर वर्णन करना पड़ा। हनुमानजीने फिर भी बहुत संक्षिप्त वर्णन किया—

युद्ध तो युद्ध है, जो स्थान जिसके उपयुक्त है, उसे वहाँ जाना पड़ता है। अपने दलमें मुझे और युवराज अङ्गदको प्रारम्भमें ही यह स्वाधीनता कपीन्द्रने देदी थी कि हम दोनों-जहाँ जैसे उचित समझें, अपने दलकी सहायता करें और शत्रुका संहार करें। लङ्का-दुर्गमें हम दोनों प्रायः साथ ही प्रवेश करते थे और वहाँ आतङ्क फैलाने, सुरक्षित सेनाके विनाशके अतिरिक्त तो कोई कार्य था नहीं।

मुझे पश्चिम द्वारको घेरनेवाले दलके साथ प्रमुख रूपमें रखा गया था। इस द्वारके रक्षकोंका सेनापतित्व मेघनादने स्वयं सम्हाल लिया था; किन्तु इस मायावी राक्षससे मेरा युद्ध कम ही हुआ। वह मुझसे दूर-दूर ही रहनेका प्रयत्न करता था। जब भी सम्मुख पड़ा, शीघ्र अन्यत्र हट गया।

मेघनाद जैसे अस्त्रज्ञ विश्वमें कम होते हैं। एक बार तो उस मायावीने लगभग हमारे पूरे दलको अत्यन्त आहत कर दिया। मेरे लीलामय स्वामी स्वयं सानुज उस इन्द्रजितके नाग-पाशमें बद्ध मूर्छा-नाट्य करने लगे थे। उस समय विभीषणजी आहतोंको देखते घूमने लगे। वे देख लेना चाहते थे कि किनको अल्प उपचारसे स्वस्थ किया जा सकता है। शत्रुका वेग सम्हालना आवश्यक था, जिससे वह मूर्छितोंको मार न दे अथवा किसीको बन्दी बनानेको उठा ले जानेका अवसर न पा जाय।

विभीषणजी आहत जाम्बवन्तके समीप पहुँचे तो उन वृद्ध ऋक्षराजने कहा—'मेरे सभी अङ्ग शरोंसे विद्ध हैं। मुझमें इस समय नेत्र खोलकर देखनेकी भी शक्ति नहीं है। आप मुझे केवल इतना बता दें कि अञ्जनानन्दन जीवित हैं या नहीं ?'

मैं समीप ही था। मैंने सुना कि चकित स्वरमें विभीषणजी कह रहे हैं—'ऋक्षराज ! आप सुग्रीवको या अङ्गदको इस समय नहीं पूछते हैं। श्रीराम तथा कुमार लक्ष्मणको भी न पूछकर केवल हनुमानको क्यों पूछते हैं ?'

प्रश्न मुझे बहुत अटपटा लगा। ऋक्षराज सृष्टिकर्ताके मानसपुत्र—उन्हें श्रीरघुनाथ अथवा लक्ष्मणलालके सम्बन्धमें कहाँ सन्देह सम्भव है। वे जानते हैं कि प्रभु सानुज नर-लीलाका अनुकरण करते कुछ भी करें,

उनका अनिष्ट सम्भव नहीं है। वानरेन्द्र सुग्रीव तथा युवराज अङ्गदकी अपेक्षा इस समय मेरा—सेवकका स्मरण ही अधिक उपयुक्त था ; किन्तु जाम्बवन्तजीने दूसरा उत्तर दिया।

'यदि हनुमान जीवित हैं तो जो मृत होगये हैं, उन्हें भी पवनपुत्रका पराक्रम जीवन दे देगा और यदि वे मर गये हैं तो जो जीवित हैं, वे भी मृतके समान हैं। जो उनको मार सकता है, उसे कोई मार नहीं सकेगा। यदि वायुवेग अमित पराक्रम हनुमान जीवित हैं तो सबके जीवनकी आशा है।' जाम्बवन्तजीके ये शब्द सुनते ही मैं उनके समीप पहुँच गया।

'मुझे क्या आज्ञा है ?' मैंने उन परम वृद्धसे पूछा।

'पवनपुत्र ! यह तुम्हारे पराक्रम प्रकट करनेका अवसर है!' जाम्बवन्तने सोत्साह कहा—'मेघनादको रोकनेमें दूसरा कोई इस समय समर्थ नहीं है। सानुज प्रभुकी सुरक्षा तथा समस्त कटकका जीवन तुम्हारे हाथमें सौंपकर मैं निश्चिन्त हुआ।'

मेघनाद तो मेरे एक ही प्रहारमें मूर्छित होगया। उसका सूत उसे लङ्का ले गया। देवर्षि नारदने गरुड़को भेज दिया। उन पक्षिराजने सानुज प्रभुको आवद्ध करनेवाले नाग खा लिये। विभीषणजीके कहनेसे लङ्कासे मैं वहाँके वैद्य सुषेणको ले आया। राक्षस होनेपर भी चिकित्सकका कर्तव्य जानना था। चिकित्सकके लिए शत्रु-मित्र नहीं होते। उसके लिए रुग्ण केवल रुग्ण है और उसकी चिकित्सा कर्तव्य है। उसकी चिकित्साने सब आहतोंको शीघ्र स्वस्थ कर दिया।

दशग्रीवके दलमें गिनने योग्य तीन ही शूर थे—मेघनाद, कुम्भकर्ण और दशग्रीव स्वयं। इनमें-से मेघनाद अस्त्रज्ञ चाहे जितना बड़ा हो, बल उसमें इतना नहीं था कि मेरा सामना कर सकता। अतः वह मुझसे बचता ही रहता था। कुम्भकर्ण महाकाय था। वह बेचारा निद्रासे जगाकर युद्धमें भेज दिया गया था। उसी दिन प्रभुके शरोंने उसे समर-शय्या दे दी। मेरी एक मुष्टिका ही उसे मिली थी और वह चक्कर खाकर गिर पड़ा था।

युद्धमें दशग्रीवके सम्मुख जाकर मैंने उसे अपना हाथ दिखलाकर कहा था—'यह पाँच अँगुलियोंसे युक्त मेरा दक्षिण हस्त देख ले। तेरे इस दूषित देहसे यह चेतनाको पृथक कर देगा।'

दशग्रीवने बड़े दर्पसे कहा—'तुम पहिले प्रहार करलो, अन्यथा प्रहार करनेकी वासना तुम्हारे मनमें ही रह जायगी। मेरे प्रहारके पश्चात् कोई पानी नहीं माँगता।'

मुझे उसका यह दर्प असह्य लगा। अन्ततः कितना बल है इस राक्षस में? मैंने उसे उत्तेजित किया—'भूल मत कि मैंने तेरे पुत्र अक्षको मार दिया है!'

मेरी बात सुनकर दशग्रीव क्रोधसे अपनी पूरी शक्तिसे प्रहार करनेको उत्तेजित होगया। उसने मेरे वक्षपर अपनी मुष्टिकाका आघात किया। वह बलवान था; किन्तु कुछ बहुत नहीं। उसके प्रहारने मुझे तनिक विचलित कर दिया। मैं स्थिर खड़ा नहीं रह सका, थोड़ा कम्पित हो गया था।

अब मेरी बारी थी। मेरे मुष्टिका-घातसे वह घूमकर गिरा और मूर्छित होगया; किन्तु क्षणार्धमें ही उठ खड़ा हुआ। बोला—'सचमुच तुम पराक्रमी हो!'

'मेरे पराक्रमको धिक्कार है, जो मेरे प्रहारके पश्चात् भी तू जीवित रह गया।' सचमुच मुझे ग्लानि हुई थी। मैंने उसे ललकारा—'तू फिर प्रहार कर!'

रावणके नेत्र अङ्गार उगलने लगे। उसने फिर मेरे वक्षपर प्रहार किया। मैं इस बार अधिक विचलित हुआ; किन्तु दशग्रीवमें अब साहस नहीं था कि स्थिर रहकर मेरे दूसरे आघातकी प्रतीक्षा करता। वह नीलकी ओर बढ़ गया। सावधान होनेपर मैंने यह देखा तो उसे कह दिया—'तुम दूसरेसे युद्धमें लगे हो, अतः इस समय मैं तुमपर प्रहार नहीं करूँगा।'

वैसे दशग्रीवका दर्प व्यर्थ था। उसके बलकी परीक्षा तब होगयी जब उसकी शक्तिके आघातसे श्रीरामानुज मूर्छित हुए, वह पूरा प्रयत्न करके भी उन्हें उठा नहीं सका था। मैं तो सेवक था, मैं उठाने गया तो वे श्रीअनन्त सहज ही उठ गये। उन्हें प्रभुके समीप पहुँचाकर मैं रणाङ्गणमें लौटा। दशग्रीवपर मुझे क्रोध आगया था। मैंने उसके वक्षपर मुष्टिका-घात किया तो वह मुखसे रक्त-वमन करता अपने रथमें बैठ गया और बैठते ही मूर्छित हो गया। सूत उसे शीघ्र लङ्काके भीतर ले गया।

मैं जब अम्बाकी शोधमें लङ्का आ रहा था, तभी जाम्बवन्तजीने मुझे जो शिक्षा दी थी, वह युद्धके किसी भी क्षणमें—कितने भी गम्भीर क्षणमें भूलने योग्य नहीं थी। वह शिक्षा थी—'सेवकका कार्य स्वामीके सुयशको उज्वल करना है।' अतः मेघनाद, कुम्भकर्ण, दशग्रीव न मेरे हाथ, न अन्य किसी कपिके अथवा ऋक्षराजके हाथों मारे जा सकते थे, ये जिनके आखेट थे, उनके लिए इन्हें सुरक्षित रखते हुए ही हमको युद्ध करना था।

मैंने प्रभुसे प्रार्थना की—'दशग्रीव रथारूढ़ है, अतः आप उसी प्रकार मेरे कन्धोंपर बैठकर युद्ध करें, जिस प्रकार भगवान नारायण गरुड़के ऊपर बैठकर असुरोंका संहार करते हैं।'

लङ्काके युद्धमें मेरा सबसे बड़ा सौभाग्य यह कि मेरे स्वामीने मेरी प्रार्थना स्वीकार करली। जब तक इन्द्रके द्वारा प्रेषित उनका रथ लेकर मातलि नहीं आगये, यह सुअवसर मुझे प्राप्त था। उस युद्धमें मेरा सबसे महान शौर्य भी यही कि मैं दशग्रीवके शरोंको अपने शरीरपर निष्कम्प सह सका और प्रभुके श्रीअङ्ग तक एक भी शर पहुँच नहीं सका। वैसे रावणके अधिकांश वाण प्रभुने मध्यमें ही काट फेंके। मुझ तक बहुत कम वाण पहुँच सके थे; किन्तु श्रीरघुनाथका वाहन बन सका, इससे पवित्र पराक्रम दूसरा कोई नहीं हो सकता।

—×—

३३–सञ्जीवनी-आनयन

'आपने तो संग्रामका वर्णन ऐसे समाप्त कर दिया जैसे उसमें आपने कुछ किया ही न हो।' रघुकुलके कुमारोंने हनुमानजीकी लांगूल सहलाते हुए कहा—'सञ्जीवनी लाकर आपने ही सबको जीवनदान किया था। अहिरावणको आपने ही मारा था। यह कुछ तो आपने हमें बतलाया ही नहीं।'

ये कोई बहुत महत्व देने योग्य घटनाएँ तो मुझे नहीं लगतीं ; किन्तु सुनना ही है तो सुनाता हूँ।

मेघनादको उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने वरदान दिया था—'उसे वही मार सकेगा जो द्वादश वर्षीय अनाहार, अनिद्र, ब्रह्मचर्य व्रत कर चुका हो।'

अहङ्कारी असुरने मानलिया था कि सृष्टिमें ऐसा संयमी सम्भव नहीं, अतः उसे मारने वाला उत्पन्न ही नहीं होगा। उसे पता नहीं था कि श्रीरघुनाथके अनुज श्रीलक्ष्मण लालके लिए अग्रजकी सेवामें अरण्यवासके समय यह व्रत अनायास सिद्ध हो गया। उन अनन्तके साथ संग्रामका अवसर आया तो सब आसुरी माया तथा अस्त्र-कौशल व्यर्थ सिद्ध हो गया। इन्द्रजितको लगा कि आज उसकी अमरत्वकी आशा असफल हो गयी। मृत्यु ही सम्मुख-आसन्न दीखने लगी तो उसने अपनी अमोघ शक्तिका प्रहार किया।

मेघनादके माँगनेपर यह शक्ति भी उसे ब्रह्माजीने ही यह कहकर दी थी—'इसका तुम केवल एक बार उपयोग कर सकोगे। उपयोगके अनन्तर यह मेरे समीप आ जायगी। इसके द्वारा आहत होनेपर कोई अमर भी हो तो अवश्य मरण प्राप्त करेगा, यदि उसे उपचारके द्वारा दूसरे सूर्योदयसे पूर्व स्वस्थ न कर लिया जाय।'

मेघनाद नित्य उस शक्तिका पूजन करता था। प्राण-सङ्कटमें ही प्रयोगके लिए उसे उसने सुरक्षित रखा था। आज प्राण-सङ्कटमें उसका प्रहार किया था उसने। उसका आघात लगा—श्रीलक्ष्मण लाल इस वक्षपर हुए अमोघ अस्त्रके आघातकी मर्यादा मानकर मूर्छित हो गये।

अधम असुर अनन्तको उठाने दौड़ पड़ा। सम्भवतः वह उन्हें ले जाकर बन्दी करना चाहता था। जो केवल श्रद्धासे, सेवासे, अपने वात्सल्यसे ही वशमें हो सकते हैं, उन्हें बलपूर्वक उठाकर विवश करनेका प्रयत्न विफल तो होना ही था। मेघनाद पूरा बल लगाकर विफल हुआ। लौटकर अपने रथपर बैठने ही लगा था; किन्तु जब वह श्रीरामानुजको उठानेकी कुचेष्टा कर रहा था, मैंने देख लिया था उसे। बहुत क्रोध आया मुझे। समीप जो वड़ी शिला मिली, लेकर मैं दौड़ा। मेघनादकी अमरत्वकी आशा मैं ही मिटा देता, यदि वह रथ-त्यागकर भाग न जाता। मेरे प्रहारसे रथका सारथी तथा अश्वोंके साथ सम्पूर्ण समाप्ति हो गयी। मेघनाद भी समझ गया कि यदि वह इस समय संग्राम-स्थलमें दीख गया तो मैं उसे समाप्त ही कर दूँगा। सचमुच मुझे क्रोध ऐसा ही आया था; किन्तु वह भागकर अपनी पुरीमें जा छिपा।

मैं मेघनादको उस दिन अवश्य मार देता, मुझसे बचकर लङ्का तो क्या, रसातलमें भी वह छिप नहीं सकता था; किन्तु लक्ष्मण लाल मूर्छित भूमिपर पड़े थे। उनकी सुरक्षा-सेवा प्रथम कर्तव्य हो गयी। इस कर्तव्यने ही रावण-पुत्रकी उस समय रक्षा करवा दी।

मैं सदासे उनका चरण-सेवक। प्रदक्षिणा करके, चरणोंमें मस्तक रखकर मैंने उठाया तो वे भला मेरे लिए भारी क्यों होते? उन्हें उठाकर मैं श्रीरघुनाथके समीप ले आया। जैसे ही मैंने अनुजका मूर्छित शरीर उन सर्वेशके सम्मुख रखा, वे लिपट गये। अत्यन्त व्याकुल क्रन्दन करने लगे।

कमल-लोचन श्रीरघुनाथ अपने विशाल नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह गिराते आर्त-क्रन्दन करें, किससे सहा जा सकता है? मैं आवेशमें आ गया तो आश्चर्य क्या? आवेशमें आनेपर तो मुझे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको पीसकर धर देना भी कभी अशक्य नहीं लगा। इसीसे पीछे जाम्बवन्तने एक बार कहा था—'तात! तुम प्रलयङ्करके अंश हो। इससे तम्हारा शान्त रहना ही अच्छा है।'

आवेशमें आकर मैं उठ खड़ा हुआ। उस समय मेरा आकार कैसा था, मैं ही नहीं जानता; किन्तु इतना स्मरण है कि समस्त वानर तथा ऋक्ष ही नहीं, स्वयं श्रीरघुनाथ भी भाईके मूर्छित शरीरको छोड़कर मेरी ओर चकित देखने लगे थे। पीछे विभीषणने बतलाया था—'पवनकुमार!

तुम्हारा तेज उस समय असह्य था। पृथ्वी काँपने लगी थी। लगता था कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भस्म हो जाने वाला है। हममें-से किसीका साहस तुम्हारे मुखकी ओर देखनेका नहीं था।'

मैं आवेशमें हाथ जोड़कर बोलने लगा था—'मेरे स्वामी!' मेरे सर्वस्व! आपको इस प्रकार क्रन्दन करते मैं नहीं देखसकता! ऐसा क्या है जिसके लिए आप रुदन करें। श्रीलक्ष्मणलाल मूर्छित हैं, ठीक! लेकिन सृष्टिमें जो अनेक स्थानोंपर अमृत है, उसका उपयोग किस दिन होगा? आप मुझे आदेश दें—कौनसी सुधा आपके अनुजके उपयुक्त है? सुना है नाग-लोकमें सुधा-कुण्ड है। मैं तक्षक, वासुकि आदि सबको पैरोंसे पीसकर पूरा कुण्ड अभी ले आता हूँ। सुरोंके समीप भी सुरक्षित सुधा-कलश है और वह आपका स्वत्व है। उदधि-मन्थन आपके आश्रयसे, आपके बाहुबलसे हुआ। असुरोंने अमृत कुम्भ तो सुरोंसे छीन लिया था, आपने मोहिनी बनकर उन्हें यह कलश दिया। मैं अमरोंको जीतकर लाऊँगा वह कुम्भ यदि वे प्रसन्नता पूर्वक प्रदान न करें। मैं शिशु था तब शक्रने अपने अमोघ वज्रका प्रयोग मुझपर किया था। आज यदि उन्होंने वज्र उठाया तो उन्हें मरना पड़ेगा। वह अमृत अमरोंको आपका प्रसाद बनकर प्राप्त हुआ। आप उसे स्वीकार न करें तो शशि सुधाकर कहा जाता है। जो जन्मते ही सूर्य तक दौड़ गया, शशि उसके लिए दूर नहीं है। मैं उसे लाकर श्रीलक्ष्मणके शरीरपर—मुखमें निचोड़ देता हूँ।'

मेरे मस्तिष्कमें भयानक उथल-पुथल मची थी। मुझे स्वयं लगरहा था कि मेरी बातें असङ्गत हैं। कोई अमृत श्रीरामानुजके योग्य नहीं है। नाग-लोकका हो या स्वर्गका, दोनों उच्छिष्ट्र हैं और रमाके सगे भाई शशिके साथ भी धृष्टता अप्रीतिकर है। झल्लाकर मैंने कहा—'मैं कालका या मृत्युका अथवा दोनोंका वध करदूँ कि अब सृष्टिमें कोई मरे ही नहीं। सब प्राणी मृत्युसे अभय हो जायँ! या फिर मैं सूर्यको उठाकर अनन्त अन्तरिक्षमें फेंक दूँ? पातालमें बन्द कर दूँ? जिससे सूर्योदय ही न हो।'

'नहीं! नहीं!' मेरा मस्तिष्क ही पुकार रहा था। 'मर्यादा पुरुषोत्तमके उपयुक्त यह कुछ नहीं है। मेघनादको, रावणको मरना ही है। श्रीरामानुजका मूर्छा-काल बढ़ानेसे लाभ? रात्रि ही बनी रहे तो सब धर्म-कर्मोंका लोप हो जायगा।'

अन्तमें हारकर, हताश होकर मैंने कहा—'आप आज्ञा दें कि मैं क्या करूँ?'

श्रीरघुनाथका रुदन देखना मेरे लिए असह्य था। मैं कुछ भी कर सकता था। कुछ करनेको आतुर था, जिससे मेरे स्वामीकी अश्रुधारा रुके और मुझे सूझ नहीं रहा था कि करना क्या चाहिए।

'तात ! तुम सर्वसमर्थ हो । सब कर सकते हो।' जाम्बवन्तजीने उठकर मेरे कन्धेपर कर रखा। वे आदि युगके महाकाय भी पूरा कर उठाकर ही मेरे कन्धेका स्पर्श कर सके थे—'तुमने लङ्का देखी है। वहाँके भिषक् सुषेणको जानते हो। इस समय उसे ले आओ। कोई अवरोध उपस्थित न करे तो किसीसे लङ्कामें अभी उलझना मत।'

'इतनी सीधी बात और मेरे मनमें नहीं आयी।' मैं संकुचित हो गया। लङ्काके सब—दशग्रीव तक मुझे जानते थे। उन्हें पता था कि क्रुद्ध हनुमान कैसा होता है। अतः अवरोध उपस्थित करने कौन आता ? वहाँ किसे मरणकी शीघ्रता थी ? लेकिन मैंने सुषेणको जगाया नहीं। उस भिषक्से कुछ कहनेके स्थानपर मैंने उसका भवन उखाड़ लिया और युद्ध भूमिमें लाकर वहाँ धर दिया जहाँ श्रीलक्ष्मण मूर्छित पड़े थे। शिलाओंपर घने भवनोंके साथ सरलता पूर्वक यह व्यवहार किया जा सकता है। लङ्का समूची ही त्रिकूटके शिखरपर थी। वैद्य सुषेणको किन औषधियोंकी आवश्यकता होगी, मैं नहीं जानता था। मेरे प्रभु वहाँ रुदन कर रहे थे। वैद्यसे विवरण देनेके क्षण भी मैं नष्ट नहीं करना चाहता था। अतः उसे गृह-सहित ले आना मुझे उचित लगा।

सम्भव है, सुषेण तब तक सोया ही न हो। रात्रिका प्रथम प्रहर ही था और राक्षस तो निशाचर हैं। भवन भूमिपर रखते ही वह द्वारसे निकला। वैद्य सचमुच बुद्धिमान था। किसीसे एक शब्द कहे बिना वह श्रीलक्ष्मणके समीप सीधे गया और घुटनोंके बल बैठकर उनकी नाड़ी, हृदय फेफड़े टटोलने लगा। नेत्रोंकी पलकें उठाकर देखीं। हम सब श्रीरघुनाथ भी नीरव, अपलक देख रहे थे उसकी ओर।

'वानरवर्य ! तुम समर्थ हो।' सुषेणने परीक्षण समाप्त करके सिर उठाया और मेरी ओर देखा—'हिमालय चले जाओ। स्वर्णमय पर्वत ऋषभ तथा मानसरोवरके समीप कैलास शिखरोंको तुम जानते होगे। दोनोंके मध्य द्रोणाचल है। उस पर दीप्तिमान औषधियाँ होनेसे रात्रिमें भी वह द्योतित रहता है। वहाँ ऐसा एक वही शिखर है। उसपर-से तुम सञ्जीवनी, विशल्यकरिणी, व्रण-रोपिणी, सुवर्णकरिणी और सन्धानी ये पाँच औषधियाँ

ले आओ। समय बहुत कम है। भूलो मत कि तुम सूर्योदयसे पूर्व इनको लेकर यहाँ नहीं पहुँच गये तो मैं सूर्योदयके पश्चात् कुछ भी करूँ, कोई लाभ नहीं होगा। ये सब औषधियाँ प्रकाशमान हैं।

मैं बिना एक क्षण खोये, बिना एक शब्द बोले आकाशमें उछला और उत्तर उड़ पड़ा। लेकिन पता नहीं क्यों, मुझे कुछ क्षण पश्चात् ही तीव्र पिपासा प्रतीत हुई। दिनभर युद्ध चला था, प्रभुके रुदनने भी बहुत उत्तेजित किया था। श्रान्ति तथा उत्तेजनाके कारण प्यास लगी हो सकती थी। अतः यह किसी राक्षसकी मायाका प्रभाव है, इस ओर ध्यान नहीं गया। मैं रात्रिमें गगनसे उत्तर जाते नीचे कोई जलाशय देखनेके प्रयत्नमें लगा समुद्रपार होते ही।

विभीषणने पीछे बतलाया था कि—'दशग्रीव अपने पुत्रके पराक्रमसे सन्तुष्ट हुआ था। उसने उल्लास प्रकट किया था कि 'प्रातः सूर्योदय होते ही शत्रु-तापस एकाकी हो जायगा। अनुजके मरनेसे अधमरा हो जायगा।'

'उसे जब सुषेणके वहाँ पहुँचनेका समाचार मिला, बोला—'सुषेण निरा-वैद्य है। अभी उसकी हमें भी बहुत आवश्यकता है, अतः युद्ध समाप्त होनेसे पूर्व तो उसे सहन करना पड़ेगा।' मेरे औषधि लेने जानेका समाचार पाकर वह उसी क्षण महामायावी राक्षस कालनेमिके यहाँ स्वयं गया। उसने कालनेमिको भेजा कि वह किसी प्रकार मार्गमें मुझे विलम्बित करे। कालनेमिको इस कार्यमें अपनी निश्चित मृत्यु स्पष्ट दीखती थी; किन्तु दशग्रीवकी अवज्ञा करता वह तो उसे रावण तत्काल मार देता।'

विभीषणने तब कहा था—'पवन-नन्दन! जब आप लौट आये और श्रीरामानुजके स्वस्थ होनेका समाचार मिला, दशग्रीवने अपने मस्तकपर हाथ पटका। वह ऐसा हतश्री हो गया जैसे मेघनादके मरणका समाचार मिला हो उसे। सचमुच वह मेघनादके जीवनकी आशा कैसे कर सकता था?'

मैं इन सब बातोंसे अनजान उड़ा जा रहा था। मेरी नासिकामें यज्ञ-धूमकी सुरभि पहुँची। नीचे ध्यानसे देखा तो लगा कि कोई आश्रम है, किसी मुनिका। यज्ञ-कुण्डमें प्रज्वलित अग्निदेव दीखे। किसी मुनिका आश्रम है तो समीपमें जल होना ही चाहिए, यह अनुमान करके मैं भूमिपर उतर पड़ा।

बहुत विशाल जटा-मण्डल, भाल-बाहु-उदर सब भस्म-भूषित, रुद्राक्षकी मालाओंसे सर्वाङ्ग सज्जित वे मुनि अत्यन्त भव्य लगते थे । जैसे ही मैंने प्रणाम किया, प्रसन्न होकर बोले—'अहा, पवनपुत्र तुम ? चिन्ता मत करो । गुरुकृपासे मैं सृष्टिमें जहाँ जो कुछ हो रहा है, उसे और उसका भविष्य भी देखनेमें समर्थ हूँ । श्रीराम और राक्षसेश्वर रावणमें जो दारुण संग्राम चल रहा है, उसमें निःसन्देह श्रीरामकी विजय होगी । अब तो लक्ष्मण मूर्छाके दूर हो जानेसे उठकर बैठ भी चुके हैं ।'

मुझे आश्चर्य हुआ । ये मुनि-महाराज वनमें तपस्या करते हुए भी वाणी-संयमको महत्त्व नहीं देते । बोलते ही जा रहे थे । भले श्रीरामानुज सचेत हो गये हों, मुझे अपना कर्त्तव्य तो पूरा करना ही चाहिए । मैं यह सोच ही रहा था कि मुनिने कहा—'अरे, तुम तो खड़े ही हो । आसन-ग्रहण करो । समर-भूमिमें तुम्हारे प्रस्थानके पश्चात् जो हुआ और हो रहा है, तुम्हें सब बतलाता हूँ ।'

'मैं बहुत तृषार्त हूँ ।' मैंने प्रार्थना की—'आप कोई जलाशय बतला देनेका अनुग्रह करें ।'

'रात्रिमें जलाशय तक जानेकी आवश्यकता नहीं ।' मुनिने अपना कमण्डलु मेरी ओर बढ़ाया—'तुम यहीं प्यास बुझाओ !'

'मेरी पिपासा अल्प जलसे नहीं मिट सकती ।' मैंने प्रार्थना की । वैसे मैं चौंक गया था—'यह कैसे मुनि हैं ? एक साधुका कमण्डलु केवल उसीके लिए उपयोगी होता है । दूसरेके लिए उसका जल अशुद्ध माना जाता है, यह मर्यादा भी इन्हें मान्य नहीं लगती ?'

सम्भवतः मेरा चौंकना उन्होंने लक्षित कर लिया । अपनी असावधानी छिपाकर बोले—'यह पतला पथ सरोवर तक जाता है । जल पीकर स्नान भी कर आओ । मैं तुम्हें मन्त्र-दीक्षा दे दूँगा ; क्योंकि वैद्य सुषेणने तुम्हें बतलाया ही नहीं कि वे दिव्य-औषधियाँ बिना विशेष मन्त्रसे दीक्षित व्यक्तिके दूसरा देख ही नहीं सकता ।'

सुषेण अन्ततः लङ्काका वैद्य था—दशग्रीवका सेवक । उसने ऐसी कोई चाल चली हो—सहज सम्भव था । मैं वहाँसे सरोवरपर पहुँचा । जल पीकर स्नान करने उस सरोवरमें उतरा तो एक मकरने मेरा वामपद मुखमें पकड़ लिया और जलमें खींचने लगा । मैंने दक्षिण चरणसे उसपर प्रहार किया ।

मेरे प्रहारसे छटपटा कर मकर देह-त्याग कर जब एक तेजपूर्ण देह अप्सरा हाथ जोड़कर गगनमें खड़ी हो गयी, तब मैंने समझ लिया कि जलमें मेरा पैर पकड़ने वाली मकरी (मादा मगर) थी। उसने कहा—'श्रीरामदूत ! मैं ब्रह्मलोककी अप्सरा धान्यमालिनी हूँ। अपनी भूलसे ऋषि अङ्गिराके द्वारा प्रशप्त हो गयी। जलमें सन्ध्या करते उन ऋषिका चरण मैंने विनोदमें खींचा तो उन्होंने शाप दे दिया—'मकरी हो जा।' मेरे अत्यन्त दीन होकर प्रार्थना करनेपर उन दयामयने आपके चरण-स्पर्शसे मेरे शापोद्धारका विधान किया। आपने मेरा उद्धार किया। अतः आपको ब्रह्मलोक जानेसे पूर्व सतर्क कर देना मेरा कर्तव्य है।'

उस अप्सराने कहा—'यह सरोवर घोर अरण्यमें है। यहाँ समीप कोई आश्रम नहीं। महामायावी राक्षस कालनेमि आज ही अभी कुछ समय पूर्व यहाँ आया और मायासे आश्रम बनाकर स्वयं यहाँ मुनिवेशमें बैठा है। वह जो कमण्डलुका जल आपको पीनेको दे रहा था, उसमें अत्यन्त तीक्ष्ण विष मिला रखा है उसने। आप उस राक्षससे सावधान रहें !'

अब उस मुनिके व्यवहारका रहस्य स्पष्ट हो गया। वह मुझे विलम्बित करना चाहता था। अप्सरा गगनमें जाकर अदृश्य हो गयी। मैंने लौटते हुए दूरसे देख लिया कि उस कपट-मुनिने मुझे मन्त्र-दीक्षा देनेके निमित्त ढेरों सामग्री एकत्र कर ली है हवन-कुण्डके समीप। सम्भवतः वह मुझे दीक्षा-संस्कारके विस्तार द्वारा उलझाकर विलम्बित करना चाहता था।

मैंने उसे बोलनेका भी अवसर नहीं दिया। मुझे अपना इतना रुकना भी असह्य हो रहा था। मैंने कहा—'मुनि महाराज ! हम वानर पहिले गुरु-दक्षिणा देते हैं, फिर मन्त्र-दीक्षा, यदि वह तब आवश्यक हो। आप मेरी दक्षिणा ग्रहण करें।'

अपनी लाङ्गूलमें लपेटकर मैंने उसे पटक दिया। मरते समय उसने अपना राक्षस रूप प्रकट कर दिया। प्राण त्यागते बोला—'राम दूत ! तुम राम........' प्रभुका नाम लेते-लेते उसके श्वास समाप्त हो गये।

अब मैं अधिक वेगसे गगनमें बढ़ा। कैलास मेरे लिए अपरिचित नहीं था। ऋषभ पर्वतकी ओर मैंने द्रोणाचलको देखा। वह पूरा शिखर ज्योतिर्मय औषधियोंसे दीप्त हो रहा था। जब सभी औषधियाँ प्रकाश वाली हों,

उनमें-से किसी पाँचको केवल वैद्य पहिचान सकता था। मैंने पूरा शिखर उखाड़ लिया। सुषेणको जो चाहिए, स्वयं ले ले। उसने तो यह भी नहीं बतलाया था कि औषधियोंका मूल, पत्र, पुष्प, फल, त्वक् क्या आवश्यक है।

मैं पर्वत शिखर लिये हिमालयसे लङ्काकी ओर चला। रात्रिमें गगनमें यह निर्णय करना कठिन था कि मार्ग कुछ योजन इधर-उधर न हो जाय। मुझे केवल तारकोंको देखकर दिशा-निर्णय करना था। यह मेरा सौभाग्य ही था कि मैं पहिले मार्गसे थोड़ा भटक कर लगभग अयोध्याके समीप पहुँच गया था।

श्रीभरतलालने नन्दिग्रामके अपने उटजके सम्मुख ही बैठे हुए मुझे आकाशमें उड़ते देखा था। मेरा विशाल देह और उसपर मैं एक प्रकाशित औषधियों वाला पूरा शिखर लिये गगनमें उड़ा जा रहा था। अतः मुझे उन्होंने निशाचर मान लिया, यह स्वाभाविक ही था। एक राक्षस पर्वत उठाये अयोध्याके ऊपर पहुँचे और वहाँ पुरीपर पटक दे, इसका अवसर कोई प्रजापालक कैसे दे सकता था उस अज्ञात गगन-चरको। इतनेपर भी नन्दिग्रामके उन महातापसका दयादय हृदय उड़ने वालेको मार देनेको प्रस्तुत नहीं हुआ। उन्होंने बिना फर (नोक) का वाण सन्धान किया धनुषपर।

वाण मेरे वक्षपर लगा। मैं मूर्छित होकर भूतलपर गिरा! पर्वतको मेरे पिता पवनदेवने गगनमें ही रोक लिया। स्वाभाविक ही भूमिपर गिरकर मूर्छित होते समय मेरा स्वर कुछ उच्च हो गया। 'राम-राम' रटते रहना मेरी जिह्वाका स्वभाव है। वह उस समय उच्च-ध्वनिमें उठा होगा। श्रीरघुनाथ-गँत जिनका जीवन है वे श्रीभरत धनुष फेंककर दौड़ आये मेरे समीप मेरे मुखसे निकली राम नामकी ध्वनि सुनकर।

'मैं अधम, मैं सदाका अपराधी; किन्तु यदि मुझपर मेरे स्वामी श्रीरामका किञ्चित् भी अनुग्रह हो तो यह कपि पीड़ारहित होकर उठ बैठे!' श्रीभरतकी अत्यन्त कातर यह ध्वनि तो मैंने मूर्छासे सावधान होते-होते सुनी। पता नहीं और कितना क्रन्दन उन्होंने किया होगा।

'श्रीराम! श्रीसीताराम!' उच्च स्वरसे कहता जैसे ही उठा, उन जटा-मुकुटी, वल्कल-वसन, क्षीणकायने मुझे वक्षसे लगा लिया। वही मेरे

प्रभुका नवनीरद श्यामवर्ण, वैसा ही श्रीअङ्ग। वही मुख और वही स्पर्श। एक क्षणको तो मुझे भ्रम हो गया कि मैं लङ्कामें प्रभुके समीप पहुँच गया।

'तात ! मेरा अपराध क्षमा कर सको तो अपना परिचय देकर मुझे कृतार्थ !' कितनी नम्रता, दीनता पूर्ण थी वह वाणी। मैं संकोचके कारण बहुत झिझका। मैंने उनके पावनपदोंमें मस्तक रखना चाहा ; किन्तु उन्होंने अङ्कमें भर लिया मुझे।

'श्रीरामका दास मैं वानर केसरीका पुत्र हनुमान हूँ। मैंने बहुत ही थोड़े शब्दोंमें दशग्रीव द्वारा भगवती भूमिजाका हरण, सुग्रीव-मैत्री तथा लङ्काके युद्धका समाचार सुना दिया।

'यदि तुम अयोध्याके राजसदन तक चलनेका अनुग्रह करते !' श्रीभरतकी विनयशीलता उनके ही योग्य थी—'वहाँ श्रीराम-जननी तथा अन्य भी अपने अधीश्वरका समाचार पासकते तुम्हारे मुखसे। तुम्हें त्वरा है, उचित त्वरा है ; किन्तु........।'

'मैं धन्य बनूँगा यदि अपने आराध्यके पादपद्मोंमें प्रणिपात कर सकूँ।' अभी रात्रिका प्रथम प्रहर व्यतीत नहीं हुआ था। मुझे अपने बेगपर विश्वास था। अतः ऐसा सुयोग त्याग देना उचित नहीं लगा। फिर श्रीभरत मुझे अपने स्वामीके ही दूसरे स्वरूप लगते थे। मैं उनका कोई आदेश अमान्य कर नहीं सकता था। भले वे बिनयके स्वरों एवं शब्दोंमें उसे व्यक्त करें।

हनुमानके जीवनके सर्वाधिक स्मरणीय धन्य समयोंमें-से हैं उस रात्रिके अयोध्याके वे क्षण। श्रीभरत स्वयं मुझे लेकर राजसदन पहुँचे थे। सुविधाकी दृष्टिसे राजमाताएँ, राजवधुएँ भी राजसभामें ही बुलाली गयी थीं। मैं वहाँ तक पहुँचा, इससे पूर्व तो प्रायः पूरी अयोध्यामें समाचार पहुँच गया था। राजसभामें स्थान नहीं था और बाहर तक पुरवासी भरे थे।

मैंने अपने स्वामीकी माताके—सब माताओंके चरण-वन्दनका सौभाग्य पाया। सब राजवधुएँ मेरे लिए माता थीं और उनका मुझे स्नेह-भरा आशीर्वाद मिला। केवल माता कैकेयी नहीं आयी थीं। वे संकोचके कारण नहीं आयीं। कोई उनकी अनुपस्थितिपर ध्यान देने वाला वहाँ नहीं था और मैं तो तब तक अयोध्याको कम ही जानता था।

मुझे शीघ्रता थी। सबकी मेरी शीघ्रताके साथ सहानुभूति थी। मैंने बहुत संक्षिप्त सब वैसे ही सुना दिया, जैसे श्रीभरतको मैंने सुनाया था। मैंने विवरण समाप्त किया, तब तक तो कुमार शत्रुघ्नका शङ्ख उनके मुखसे लग गया था। वे अयोध्याकी अजेय-वाहिनीको शङ्ख-ध्वनिके संकेतसे पुकारने लगे थे। मैंने दशग्रीवकी सतर्कता भी देखी थी; किन्तु यह शीघ्रता—अयोध्याकी चतुरंगिणी सेना जैसे पलक मारते प्रस्तुत होने वाली त्रिभुवनकी अद्भुत सेना थी।

'शत्रुघ्न!' अम्बा सुमित्रा सहसा उठकर मेरे समीप आ गयीं। उनके पुकारते ही छोटे कुमारने आगे आकर माताके सम्मुख मस्तक झुकाया। मैंने श्रीलक्ष्मण लालकी इस दूसरी मूर्तिके उसी तेजस्वितामें राजवेशमें दर्शन किये। अम्बाके स्वरमें त्रिलोकीके शासनका ओज था—'यह पवनपुत्र इतना बड़ा शैल-शिखर ले जा सकते हैं तो तुझे भी अवश्य ले जा सकेंगे। शत्रुकी पुरीमें रामको अकेले नहीं रहने दिया जा सकता। तुम अपने अग्रजके उपयुक्त सिद्ध हो!'

कुमार शत्रुघ्नके मुखपर मैंने ऐसा उल्लास देखा, मानो उन्हें अकल्पनीय पुरस्कार मिला हो। उन्होंने तो श्रीभरत अथवा बड़ी अम्बा—राजमाताको प्रणाम करके अनुमति लेना भी विलम्ब माना। वे उसी क्षण वैसे ही त्रोण बाँधे, धनुष लिये मेरे समीप आ खड़े हुए।

'सेना जायगी; किन्तु लङ्का दूर है। सेनापति देखेंगे उसे।' अम्बा सुमित्राने मेरी ओर देखा—'शत्रुघ्नको साथ ले जाओ! रामको कहना कि उनकी इस माँका आदेश है, लक्ष्मणको भूल जायँ! उसका जीवन सफल हुआ। सेवकका कर्तव्य ही है स्वामीके लिए अपनी आहुति दे देना। स्वामीको रुदन करना शोभा नहीं देता। शत्रुघ्न अब लक्ष्मणकी सेवा सम्हाल लेगा। श्रीराम दशग्रीवको उचित दण्ड देकर वधू सीताके साथ अयोध्या लौटें!'

'हनुमान! मैं सुमित्रासे बड़ी हूँ। रामकी जननी हूँ मैं। मेरा आदेश है कि सुमित्राका यह सन्देश रामको मत कहना!' अम्बा कौशल्याका स्वर कह रहा था कि जीवनमें प्रथम बार वे इस प्रकार आदेशकी भाषा बोल रही हैं। उनके लिए यह भाषा सर्वथा अनभ्यस्त, अपरिचित है। उनके स्वरमें कम्पन था—'रामसे कहना कि कौशल्याने कहा है, जैसे यहाँसे राम

मेरे पुत्र लक्ष्मण तथा वधू सीताको ले गया है, वैसे ही दोनोंके साथ सकुशल लौट सके तो लौटे, अन्यथा अयोध्यामें मुख दिखलाना उसके योग्य नहीं होगा।'

'लालजी! आप जाना चाहते हैं तो मैं रोकूँगी नहीं; किन्तु ये अमङ्गल आशङ्काएँ क्यों?' मैंने देखा कि अम्बा सुमित्रासे किञ्चित् भी न्यून ओजस्विता उन राजवधूमें नहीं है। उन्होंने स्वयं अपना नाम न लिया होता तो भी मैं उन्हें पहिचान लेता। उन्होंने अपने शीलके कारण माताओंका उल्लेख किये बिना छोटे कुमारसे ही कहा—'लालजी! उर्मिलाका अम्लान सिन्दूर-बिन्दु देख रहे हो? इसकी चूड़ियाँ अक्षत हैं। उर्मिला जीवित है तो इसके आराध्यके सम्बन्धमें कुशङ्काका क्या अर्थ? उनको कुछ नहीं हुआ। रुदन करना चाहिए उनको मूर्छित करने वालेकी वधूको। मुझे खेद है कि रावणकी वह पुत्र-वधू आसन्न विधवा है। उसे पतिके शरीरको चितामें बैठकर आलिंगन देना है अब!'

'वधू उर्मिला महासती है। उसकी वाणी असत्यका स्पर्श नहीं कर सकती।' रात्रिके उस प्रथम प्रहरमें रघुकुलके गुरु सृष्टिकर्ताके परम समर्थ पुत्र महर्षि वशिष्ठने प्रवेश किया राजसभामें और आते ही आदेश दिया—'श्रीरामकी विजय सहायकोंकी अपेक्षा नहीं करती। दशग्रीवकी आयु समाप्तिके सन्निकट है। पवनपुत्रको जाने देना है। कोई दूसरा यहाँसे जाय, यह अनावश्यक है।'

कुमार शत्रुघ्नके श्रीमुखको मैंने खिन्न होते देखा। मैंने महर्षिके सम्मुख प्रणिपात किया तो उन्होंने आशीर्वाद दिया—'शुभस्ते पन्थानः सन्तु।'

अयोध्यामें सेनाको शिविरमें लौट जानेका संकेत करते शङ्ख गूँजने लगा। महर्षिके आदेशके पश्चात् सबने सिर झुका लिया था। मैंने भूमिमें मस्तक रखकर सबको एक साथ वन्दन किया और वहीं गगनमें उठनेको प्रस्तुत हुआ।

'तात! तुमको लङ्का पहुँचनेमें विलम्ब हो सकता है।' श्रीभरत-लालने कहा—'उस आकाशमें स्थित पर्वतको लेकर मेरे बाणपर बैठ जाओ। मैं तुम्हें लङ्का पहुँचा देता हूँ।'

'मेरे भारको लेकर बाण चल पावेगा?' मनमें एक बार यह बात आयी। तत्काल मैं सावधान हुआ—'हनुमान, धिक्कार है तुझे! श्रीरघुनाथ

जिन श्रीभरतकी, जिनकी प्रीतिकी, जिनके बाहुबलकी प्रशंसा करते थकते नहीं, तू उनकी शक्तिमें सन्देह करता है ?'

'आपके अनुग्रहसे मैं वाणके समान वेगसे ही जाऊँगा !' मैंने अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की। श्रीभरतलालने मुझे भ्रू-संकेत मात्रसे अनुमति दे दी।

मैं पर्वत लेकर लङ्काकी रणभूमिमें पहुँचा तो मध्यरात्रि व्यतीत हो रही थी। पर्वत जैसे ही मैंने भूमिपर रखा, सुषेण उठकर उसपर चढ़ गये। उन्होंने आवश्यक औषधियाँ उखाड़ लीं। इस वैद्यकी मौन तत्परता देखने योग्य थी। इसके उपचारसे श्रीलक्ष्मण स्वस्थ उठ बैठे। श्रीरघुनाथने इस सेवकको हृदयसे लगाकर भरे स्वरमें कहा—'तुमने आज लक्ष्मणकी ही नहीं, मेरी, सीताकी और समस्त अयोध्याके जनोंकी जीवन-रक्षा की।'

सुषेणने, दो शब्द धन्यवादके कोई कहे, इसका भी समय नहीं दिया। केवल मेरी ओर साभिप्राय देखकर अपने भवनके भीतर चले गये। मुझे उनके भवनको यथा-स्थान रख आनेमें क्या परिश्रम होना था।

३४-अहिरावण-उद्धार

श्रीलक्ष्मणलाल स्वस्थ हो गये और दशग्रीवके दुर्दिन आ गये, यह अब उस अहङ्कारीकी भी समझमें आ गया था। उसने असमयमें अपने भाई कुम्भकर्णको जगाया ; किन्तु वह महाकाय पहिले ही दिन प्रभुकी शराग्निकी आहुति बन गया। मेघनाद अभिचार-यज्ञमें लगकर भी रक्षा नहीं पा सका। उसने अमोघ शक्तिसे श्रीरामानुजको मारना चाहा था, अतः उन अनन्तने उसे यम-धाम भेज दिया। दशग्रीवके समीप अब कोई सहायक नहीं रहा। इस दुर्दिनमें उसने भी अभिचारका आश्रय लिया। पीछे सुना यह गया कि उसने आकर्षण प्रयोगके द्वारा अहिरावणका आह्वान किया था।

रात्रिमें अकस्मात् आकाशमें प्रकाश हुआ। इस प्रकाशसे चौंककर वानरेन्द्र सुग्रीव जाग गये। पीछे समाचार यह मिला कि अहिरावणने युद्ध करना स्वीकार नहीं किया था। दशग्रीवने अन्ततः उसे प्रस्तुत कर लिया था कि वह मायाके आश्रयसे प्रसुप्त दोनों मानव तापसोंको उठाकर पाताल

ले जाय और वहीं मार दे। यही अहिरावणने किया। प्रभुको सानुज ले जाते समय अपनी सफलताकी सूचना दशग्रीवको देनेके लिए पूर्व संकेतके अनुसार उसीने आकाशको प्रकाशित किया था।

वानरेन्द्र सुग्रीव प्रभुके समीप ही शयन करते थे। आज इन्द्रजितके वधसे श्रान्त अनुजको आग्रह करके श्रीरघुनाथने अपने समीप ही शयन करनेको विवश किया था। सुग्रीवने निद्रा भङ्ग होते ही देखा कि सानुज श्रीरघुनाथ शयन स्थानपर नहीं हैं। दोनों भाइयोंके धनुष तथा त्रोण वहीं हैं।

'प्रभु कहाँ है ?' वानरेन्द्रने अविराम पूछताछ प्रारम्भ कर दी। शत्रु-पुरीके समीप, संग्राम-भूमिसे प्रभु सानुज स्वयं इस प्रकार कैसे जा सकते थे। दिनमें भी दोनों भाई केवल शौच-स्नानादि आह्निक कृत्यके समय शस्त्रहीन रहते थे और अभी तो अर्धरात्रि हुई ही थी। सम्पूर्ण सेना इस समाचारसे व्याकुल हो उठी कि प्रभुका पता नहीं है।

मैं, जबसे युद्ध प्रारम्भ हुआ, अपने दलका दुर्ग तथा दुर्गपाल दोनों बन गया था। सायंकाल विश्रामके लिए जैसे ही दल प्रस्तुत होने लगता था, मैं अपनी लांगूल बढ़ाता चला जाता था। मेरी पूँछ पूरे दलके चारों ओर उच्च प्राचीर बना देती थी। उस प्राचीरका द्वार मेरे देहसे अवरुद्ध रहता था। किसीको बाहर जाना या भीतर आना हो तो उसे मेरे समीपसे ही आना-जाना था और मुझे उसे तनिक हटकर मार्ग देना था।

ऋक्षराज जाम्बवन्त, वानरेन्द्र सुग्रीव, लङ्काधिप विभीषण तथा युवराज अङ्गद मेरे समीप आये। सानुज श्रीरघुनाथ नहीं हैं—सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। उन योगमायाके भी अधीश्वरको कोई मायावी उठा ले जायगा—मनमें भी आने योग्य बात नहीं थी। मुझे कहाँ पता था कि मेरे स्वामी जैसे समर-भूमिमें नर-नाट्य करते मूर्छित होते हैं, वैसे ही किसी असुरका सकुल समुद्धार करनेके लिए उन्होंने उसकी मायाका प्रभाव भी अपने तथा अनुजपर पड़ना स्वीकार कर लिया है।

'पवनकुमार ! प्रभुका पता लगानेमें तुम्हीं समर्थ हो।' जाम्बवन्तने कहा—'समर्थ स्वामीकी अनुपस्थितिमें हमारी समस्त सेना अनाथ हो गयी है। दशग्रीवकी मायासे वे ही हमारी समय-समयपर रक्षा करते रहे हैं। तुम उनका पता लगाकर सबको प्राणदान दो।'

'मैं कालको भी मारकर प्रभुको ले आ सकता हूँ ; किन्तु त्रिभुवन बहुत बड़ा है।' मैंने अपनी विवशता प्रकट की—'भगवती भूमिजाको हम एक मासमें भी तब ढूँढ़ सके जब सम्पातीकी सहायता मिली। बिना किसी सूत्रके मैं कहाँ भटकूँगा ?'

जाम्बवानको मेरी वाणीका सत्य स्पर्श कर गया। वे मस्तक झुकाकर सोचने लगे। तनिक देरमें उन्होंने पूछा—'प्रभु तो स्वयं गगन-मार्गसे कहीं जा नहीं सकते। वानरेन्द्र कहते हैं कि आकाशमें कोई प्रकाश हुआ था—जिससे वे जगे थे। रात्रिमें सबके विश्राम करनेके पश्चात् कोई हमारे शिविरमें आया था ?'

मैंने वतलाया—'कल पहिली वार विभीषणजी देरसे आये थे। इन्होंने कहा था कि समुद्र-तटपर सन्ध्या करके ध्यान करने लगे तो समयका ध्यान ही नहीं रहा।'

'क्या ?' विभीषण चौंके—'मैं तो वानरेन्द्रके साथ सायंकालसे प्रभुके समीप ही था।'

जाम्बवन्तने गम्भीर स्वरमें कहा—'कोई आपके वेशमें आया और सानुज प्रभु को ले गया, यह स्पष्ट है। सोचना यह है कि कौन होसकता है वह ? कहाँ लेगया होगा प्रभुको ?'

विभीषण गम्भीर होकर सोचने लगे। हम उपदेवता ही काम रूप हैं—इच्छानुसार रूप बना सकते हैं ; किन्तु हमारी ही नहीं, राक्षस, दानव, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व, देवता, सबकी शक्ति सीमित है। चाहे जिसका रूप अथवा चाहे जो वस्तु हम नहीं बना सकते।

हमारे लीलामय स्वामी श्रीरघुनाथने सदाके लिए संसारके जीवोंको एक शिक्षा दी इस लीलासे। यह वात भी मेरे ध्यानमें बहुत पीछे आयी। हम सब उपस्थित थे और एक मायावी स्वयं श्रीरघुनाथको, निखिल जीवोंके परमाचार्य श्रीरामानुजको सम्मोहित करके उठा ले गया था। अतः माया—मायावियोंकी राजस-तामस माया भी कितनी प्रबल है, साधकको कितना सावधान रहना है, यह मर्यादा-पुरुषोत्तमने इस लीलामें दिखलाया।

आगे दशग्रीवने तो सीमा ही सूचित कर दी। उसने श्रीरामानुज एवं श्रीरघुनाथकी उपस्थितिमें मायासे असंख्य श्रीराम प्रकट कर दिये।

यह तब, जब हम सब जागृत थे। दिनका समय था। मैं और मेरे दलके सब उन असंख्य रूपोंमें वास्तविक प्रभु कौनसे, यह निर्णय करनेमें असमर्थ हो गये। इसका अर्थ है कि प्रत्यक्ष दिनमें श्रीरामरूप (किसी भी भगवद् रूप) का प्राकट्य सचमुच भगवद्दर्शन है या किसी देव-दैत्यकी माया, यह निर्णय कभी नहीं हो सकेगा, केवल उस रूपको आधार बनाकर। निर्णयके लिए अपने अन्तःकरणकी स्थितिको ही कसौटी बनाना होगा। सचमुच भगवद्दर्शन हुआ तो अविद्या तथा उसके कार्य अस्मिता, राग-द्वेष एवं अभिनिवेशका समूलोन्मूलन हो ही जाना चाहिए। यह नहीं हुआ तो जो भी रूप दीखा, वह भ्रम था। वह अपने मनका निर्माण हो या किसीकी मायाका।

'कोई देवता, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि-महर्षि मेरा रूप ग्रहण करके प्रभुका अपहरण करने नहीं आवेगा।' विभीषणने कहा—'दानवोंमें मय, दैत्योंमें बलि तथा बाणासुर समर्थ हैं, किन्तु इनमें कोई ऐसा कार्य कभी नहीं करेगा। राक्षसोंमें केवल दो मेरा रूप-ग्रहण करनेमें समर्थ हैं इस समय—स्वयं दशग्रीव तथा अहिरावण। दशग्रीव स्वयं लङ्का त्यागकर इस समय कहीं जा नहीं सकता और न पुरीमें प्रभुको ले जाकर गुप्त रख सकता है। अतः अवश्य यह कार्य अहिरावणका है। वह पातालपुरीका निवासी होनेपर भी दशग्रीवका मित्र है। उसीने यह अपकर्म किया है।

विभीषणने अब बिना पूछे वहाँ पहुँचनेका मार्ग निर्दिष्ट किया। उस पुरीका प्रवेश-पथ समझाया। मुझे सतर्क किया—'वह महामायावी परमशाक्त है—वीरशाक्त। उसके बलि-प्रधान पूजनने उसे अनेक वीर-सिद्धि सम्पन्न कर रखा है।'

'आप सब सावधान रहें। समस्त वानर-ऋक्षोंको सचेत करदें। मेरी तथा सानुज प्रभुकी अनुपस्थितिका कोई समाचार शिविरसे बाहर न जाय। सब ऐसे रहें, जैसे कुछ हुआ नहीं है। प्रतिदिनके समयपर ही पुरीके द्वारोंपर आक्रमण किया जाय। दशग्रीव भी आवे तो प्राणपणसे उससे युद्ध किया जाय!' मैंने जाम्बवन्तजीसे कहकर सबको मस्तक झुकाया और विदाली।

मैं भी तो महावीर हूँ। किसी वीर-सिद्धिसे मुझे क्या शङ्का? मैंने प्रस्थान किया। सागरके अतल गर्भमें अवस्थित अहिरावणकी पातालपुरी तक पहुंचने में मुझे कोई बाधा नहीं पड़ी। लेकिन जब मैं उस पुरी में

प्रवेश करने लगा तो एक महाकाय बलवान वानर मिला द्वार-रक्षकके रूपमें। मेरे जैसा ही स्वर्णवर्ण सुपुष्ट। उस कपिने मुझे डाँटा-'कौन है तू ? अमित पराक्रम अनिलात्मज हनुमानके पुत्रकी अवज्ञा करके जानेका साहस कैसे हुआ तुझे ?'

'मेरा पुत्र ?' मैं आश्चर्यसे उसे देखता रह गया। मैंने उस धृष्टको डाँटा'—धूर्त ! कौन है तू ? तू अपनेको मेरा पुत्र कैसे कहता है ? मैं जन्मसे ब्रह्मचा ी हूँ, इतना भी तुझे पता नहीं है ?

वह मेरे पैरोंमें साष्टाङ्ग पड़ गया। उठकर हाथ जोड़कर बोला—'मेरा नाम मकरध्वज है। आज आपके श्रीचरणोंका दर्शन करके मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ। कोई अपने माता-पिताको जान नहीं सकता। सबको इस विषयमें श्रद्धा ही करनी पड़ती है। मुझे जब चेतना प्राप्त हुई, मुझे इस पुरीके अधीश्वर अहिरावणके सम्मुख उपस्थित किया गया। उत्पन्न होनेके कुछ क्षण पश्चात् ही मैं युवा होगया था। मेरा नाम इस पुरीके स्वामीने ही रखा और मुझे इस दुर्गम पुरीका द्वार-रक्षक बना दिया।'

उसने आगे बतलाया—"देवर्षि नारदने मुझे सूचित किया—'लङ्का-दहन करके जब पवनपुत्र पूँछ बुझाने समुद्रमें कूदे, उनके शरीरसे टपकते स्वेद-बिन्दुको एक महामत्स्य पी गया। वह महाजालमें पड़ा और अहिरावणकी रन्धनशालामें पहुँचाया गया। उस मत्स्यका उदर चीरनेपर तुम्हारी उत्पत्ति हुई।' मैंने देवर्षिकी वाणीपर विश्वास कर लिया। मैं वानर हूँ, अतः मेरे पिता वानर ही होने चाहिए।"

'तब तुम सचमुच मेरे पुत्र हो।' इस समय मुझे प्रभुकी चिन्ता थी। हृदयमें उन धनुर्धरके अतिरिक्त किसी पिता या पुत्रके लिए मोहको स्थान नहीं था। मैंने पूछा—'अहिरावण यहाँ श्रीलक्ष्मणलाल सहित श्रीरघुनाथको ले आया है ?'

मकरध्वज बोला—'मैं नाम तो नहीं जानता; किन्तु स्वामी अभी कुछ ही काल पूर्व जटाजूटधारी दो अत्यन्त सुन्दर मानव-कुमारोंको ले आये हैं। उनमें-से एक श्यामवर्ण है, एक गौर। सुना है कि दोनोंको यहाँकी आराध्या महाकालीके मन्दिर पहुँचाया गया है और महापूजा प्रारम्भ होगयी है। प्रभातसे पूर्व ही दोनोंकी बलि देवीको देदी जायगी।'

'तब ठीक है। मैं प्रभुके दर्शन करूँगा। द्वारसे हटो।' मैंने उसे आज्ञा दी। वह अब तक द्वार रोके खड़ा था।

'आप आज्ञा दें तो मैं अपना मस्तक उतारकर आपके चरणोंपर अभी रख दूँ!' उसने नम्रतापूर्वक ही कहा—'किन्तु मैं इस समय द्वार-रक्षक हूँ। स्वामीकी अनुमतिके बिना शक्ति रहते किसीको पुरीमें प्रवेश करने देकर कर्तव्यच्युत नहीं होऊँगा। आपका यह आदेश मैं न माननेको विवश हूँ। आप मेरा वध करके पुरी-प्रवेश पा सकते हैं।'

मेरे पास विवाद करनेको समय नहीं था। मैंने उसे पटककर उसीकी पूँछसे बाँध दिया उसे। मैं स्वीकार करता हूँ कि उसने केवल आत्मरक्षाके लिए सङ्घर्ष किया। मुझपर उसने पूरी शक्तिसे आघात नहीं किया। मैं जब भीतर जाने लगा, उसने भरे कण्ठसे कहा—'मेरा अभाग्य कि प्रथम दर्शनमें ही पिताकी अवज्ञा करनी पड़ी मुझे और युद्ध करना पड़ा। मेरी अविनय क्षमा करेंगे!'

उसकी ओर ध्यान दिये बिना मैं पुरीमें प्रविष्ट हुआ। देवी-सदनका अन्वेषण नहीं करना पड़ा। वहाँसे वाद्यध्वनि आरही थी। संयोग अच्छा था, मैं जब मन्दिर पहुँचा; असुर अपनी आराधनाकी प्रस्तुतिमें व्यस्त थे। मुझे रोष-आवेश आगया। मैंने सक्रोध देवीकी ओर देखा—'तू परम-पुरुषोत्तमकी बलि लेगी? पहिचानती है मुझे?'

'मैं केवल उनकी चरण-वन्दनाकी प्रतीक्षा कर रही थी।' कालीके लिए न मुझे बोलना था, न मेरे लिए महाकालिकाको। देवता संकल्पकी भाषामें ही परस्पर बात करते हैं। वह कह रही थी—'अवैध बलि दी जाती हो, किसी महापुरुषकी बलि देनेका प्रयत्न होता हो तो मेरे अङ्गोंमें ज्वाला उठती है, यह आप जानते हो। बलिको उठा खड्ग छीनकर उन अपकर्मोद्यत पशुओंका मस्तक काटना, उनका शोणित पान करना, उनके मुण्डोंसे कन्दुक क्रीड़ा करना मेरा सनातन व्यसन है। श्रीसाकेताधीश श्रीरामकी सेवा मैं अपने इस व्यसनसे आज कर लेती; किन्तु लगता है कि आपको यह स्वीकार नहीं है तो मैं प्रस्थान करती हूँ। आपको जो प्रिय हो, करो!'

अदृश्य होनेसे पूर्व उसने कहा—'गौरी-अङ्ग-समुद्भवा मैं महाकालिका ही नहीं पहिचानूँगी कि आप कौन हैं? अपने भूतनाथ स्वामीके साक्षात् अंशको पहिचाननेमें मुझसे प्रमादकी आशा करते हैं आप?'

वह अदृश्य हुई और मैं उसीके रूपमें, वैसा ही करालरूप, उन्मुक्तकेशा, मुण्डमाली, लम्बजिह्वा, आलीढासना होकर उसी पीठपर खड़ा हो गया। जीवनमें प्रथम बार मैंने नारीका रूप ग्रहण किया।

असुरोंमें अपार उत्साह था। उनके वाद्य बज रहे थे। महापूजा सविधि सम्पन्न की उन्होंने। वे नाना मुद्राओंसे, मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित द्रव्योंसे मेरा पूजन कर रहे थे और मैं क्रोधसे जल रहा था। मुझे पता नहीं कि उन्होंने किन-किन द्रव्योंसे स्नान कराया, क्या-क्या लगाया और किन आभूषण, वस्त्र, माल्यादिसे मुझे मण्डित किया। उन्होंने कितना और क्या नैवेद्य अर्पित किया, मुझे यह भी पता नहीं। जो वे उठाते गये, मैं मुखमें डालता गया।

अहिरावण तथा उसके सब उपस्थित साथी हर्षमें बार-बार कह रहे थे—'आज भगवती महाकालिका परम प्रसन्न प्रत्यक्ष हो गयी हैं। समस्त अर्पित नैवेद्य इन्होंने ग्रहण कर लिया। आजकी महाबलिकी सम्भावनाने ही भगवतीको सुप्रसन्ना कर दिया है। अवश्य आज परासिद्धि प्राप्त होगी!'

राक्षस प्रसन्न हो रहे थे और मैं किसी प्रकार क्रोध रोके था—'इन्हें परमपद तो प्राप्त होगा ही। प्रभुके सान्निध्यमें मरेंगे ये; किन्तु इनकी परासिद्धि इस रूपमें आनेको आतुर है, इसका अनुमान इनको कैसे होता। अज्ञ प्राणी अपनी योजनाओंमें क्या कभी मस्तकपर मँडराती मृत्युका अट्टहास सुन सका है?'

पूजनका पूर्वार्ध समाप्त हुआ। महाबलिका अवसर आया। सानुज श्रीरघुनाथको असुर मेरे सम्मुख ले आये। मैंने मन ही मन पद-वन्दना की। श्रीलक्ष्मणलाल मुझे सतर्क, किञ्चित् सचिन्त दीखे। मैं उनके सङ्कल्पको जान सकता था। वे सोच रहे थे—'प्रभु आज यह कैसी लीला कर रहे हैं? न स्वयं कुछ करते हैं, न मुझे संकेत करते हैं। यदि ऐसी ही स्थिति रही तो इस पातालपुरीमें मर्यादा मानना आवश्यक नहीं है। मेरी एक हुङ्कारमें ये राक्षस भस्म हो जायँगे!'

अज्ञानी हैं जो श्रीरामकी रक्षाकी चिन्ता करते हैं। निखिल विश्वके ये परमरक्षक—मैं यहाँ न भी आता तो क्या होना था? श्रीरामानुज

समस्त भुवनोंको पलक मारते भस्म कर दे सकते हैं। महाकालिका सेवाको समुत्सुक ही थी। यह तो आराध्यका अनुग्रह कि उन्होंने इस जनको सेवाका सुयोग प्रदान किया।

अहिरावणने दोनों भाइयोंको स्नान कराया था। जटाएँ आर्द्र थीं। अयोध्यासे वनमें आनेके पश्चात् पहिली बार श्रीअङ्गोंपर अङ्गराग लगा था। भाल चन्दन तथा कुंकुम भूषित हुए थे। सुमन मालाओंसे शृङ्गार हुआ था। जटाओंमें सुमन सजे थे। श्रीरामानुजने पीछे बतलाया था कि उन्होंने कोई नैवेद्य ग्रहण नहीं किया था; किन्तु प्रभुने तो प्रसन्नतापूर्वक राक्षसोंके द्वारा अर्पित नैवेद्य भी ग्रहण किया था। वे ऐसे भोजन कर रहे थे जैसे अयोध्याके राजसदनमें आसीन हों।

मैं अपने स्वामीके सदा प्रफुल्ल मुखपर मन्दस्मित देखनेमें मग्न था। इस समय राक्षस शस्त्र-पूजनादिमें लगे थे। वह सब समाप्त करके अहिरावण पूजित, कुंकुमारुण खड्ग लिये आया और दोनों भाइयोंसे बोला—'अब तुम दोनोंकी बलि देवीको दी जायगी। अपने कालका स्मरण करना चाहो तो कर लो!'

'लक्ष्मण! आपत्तिमें समस्त प्राणी मेरा स्मरण करते हैं। सबका विपत्ति-विदारक परम रक्षक मैं हूँ। मेरे आपत्तिहर्ता तो पवनकुमार ही हैं। आओ, हम दोनों उनका स्मरण करें!' प्रभुने अनुजकी ओर देखकर कहा।

श्रीलक्ष्मणने अग्रजकी ओर देखा—'यहाँ पवनकुमार कहाँ?'

'तुम उन प्रकृतिके अणु-अणुमें व्यापक रुद्रको व्यक्ति मानते हो?' प्रभुने भाईको सस्नेह देखकर मानो छोटी झिड़की दी—'श्रीशम्भु भी देश-कालमें सीमित होते हैं? उन्हींके स्वरूप हनुमान कहाँ नहीं है? मुझे तो इस प्रत्यक्ष देवीके रूपमें वही उपस्थित लगते हैं।'

मैं एक क्षणको विभोर हो उठा—'मेरे स्वामी अपने सेवकको सर्वत्र, सब समय पहिचान लें, यह इन अनन्त कृपासागरका स्वभाव!'

श्रीलक्ष्मणलालने अब मेरी ओर देखा। अब तक तो उन्होंने देवीकी मूर्तिकी ओर देखा ही नहीं था। देखें और दासको पहिचान न लें, यह इन परमाचार्यके लिए भी सम्भव नहीं। अब तक वे अपनी चिन्तन-धारामें लगे

थे। भाव देखते ही उनकी दृष्टिने संकेत दिया—'तुम आगये तो अब विलम्ब क्यों ?'

अहिरावणने इसी समय खड्ग उठाया। मैं दाँत कटकटाकर गर्जना कर उठा। अपने वेशमें प्रकट होकर मैंने उसके हाथसे खड्ग झपटकर उसका मस्तक पहिले भूमिपर गिराया। उसका कबन्ध नाचता गिर पड़ा। फिर सानुज प्रभुको अपने कन्धोंपर बैठाकर महासंहारमें लग गया। कितने राक्षस मेरे पैरोंसे मसले गये, लांगूलमें लपेट कर पटके गये अथवा खड्गसे काटे गये, कोई गणना नहीं। वह पातालपुरी जब जनशून्य होगयी, कोई राक्षस दीखता ही नहीं था, तब मैंने प्रभुको सानुज लिये प्रस्थान किया। शव—कुचले, कटे शवोंसे रक्तसे परिपूर्ण वह पातालपुरी—सचमुच आज वहाँ मैंने भरपूर महाबलि दे दी थी।

'यह कौन है ?' द्वारपर अपनी ही पूँछमें बँधे वानरको देखकर प्रभुने पूछा।

'यह अपनेको मेरा पुत्र कहता है।' मैंने निवेदन किया।

'आपके कोई पुत्र भी है—कभी तो आपने बतलाया नहीं।' कुमार लक्ष्मणलालने कहा। मैंने उनको थोड़े शब्दों में परिचय दे दिया।

'इसे मुक्त करो !' प्रभुने आदेश दिया।

मैंने उसे बन्धनसे छुड़ाया। उसकी पूँछ सीधी हुई। सानुज प्रभु मेरे कन्धेसे उतर आये। उसने प्रभुके, श्रीलक्ष्मणके तथा मेरे भी पदोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया।

'वत्स ! अबसे तुम इस पुरीके अधीश्वर हुए।' श्रीरघुनाथने मेरे शरीरपर लगे राक्षस-रक्तसे उसके मस्तकपर तिलक करके आज्ञा दी—'तुम्हारे पिताने इसे राक्षस-रहित कर दिया है। केवल उनकी नारियाँ यहाँ हैं। तुम उनकी कन्याओंसे विवाह करके अपनी सन्तानोंकी वासभूमि बनाओ इसको। तुम्हें किसीका कोई भय नहीं होगा।'

मैंने फिर सानुज श्रीरघुनाथको स्कन्धारूढ़ किया। हमारे दलकी हर्षध्वनिने ही दशग्रीवको सूचित कर दिया होगा कि उसकी दुरभि सन्धि असफल हो गयी। मैं लङ्काकी समर-भूमिमें अपने शिविरमें अरुणोदयसे पूर्व ही पहुँच गया था।

—: ✲ :—

३५-भगवती भूमिजा आयीं

एकाकी दशग्रीव—उसकी सेना तो हम वानर-ऋक्षोंने ही समाप्त कर दी थी। जो बचे, श्रीरघुनाथके बाणोंकी भेंट हो गये। अन्तमें आहत दशग्रीव लङ्कामें यज्ञ करने बैठा। उसने देवी कालरात्रिकी आराधना आरम्भ की। मैंने विभीषणजीको खिन्न देखा तो उनकी उदासीका कारण पूछा। उन्होंने बतलाया—'यह दुर्गासप्तशतीका सम्पुट सहित पाठ पूर्ण हो गया तो दशग्रीव अजेय हो जायगा।'

'मैं देखता हूँ!' मैंने कह दिया।

बिभीषणने सावधान किया—'दुर्गाकी आराधनामें विघ्न करना भी विपत्तिका कारण बनेगा।'

मैंने पूछा—'आपको पता है कि अनुष्ठान स्वयं दशग्रीव करेगा या और कोई? सम्पुट क्या है?'

विभीषण—'दशग्रीवका गात्र तो आज आघात जर्जर है; किन्तु लङ्कामें उसने शैव-शाक्त तान्त्रिक ब्राह्मण बसा रखे हैं। वे सब मिलकर रात्रि भरमें ही सहस्र चण्डीपाठ पूर्ण कर देंगे। उनका सम्पुट मन्त्र है—

"जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्ति हारिणी।
जय सर्वगते देवि कालरात्रिर्नमोऽस्तुते ॥"

'रात्रिके प्रथम प्रहर तक शिविरकी सुरक्षाका आप सब ध्यान रखें।' विभीषणको कहकर मैं चल पड़ा। आराध्यको स्मरण करते ही मुझे क्या करना है, यह सूझ गया था। शिविरके लिए सचिन्त रहना आज आवश्यक नहीं था। जर्जर गात्र दशग्रीव अनुष्ठानके आयोजनमें लगा रहेगा। अब दूसरा शूर उसके समीप नहीं था।

मैं ब्राह्मणके वेशमें पुरीमें ब्राह्मणोंके समीप पहुँचा। मैंने उनके सब कार्य स्वयं प्रारम्भ कर लिये। उनकी सामग्री, मण्डल आदि तो बना ही दिये, उनके स्नानको जल प्रस्तुत कर दिया। उनकी पादुकाएँ उनके समीप धर दीं। उनके आर्द्र वस्त्र स्वच्छ कर दिये। उनके आसन बिछा दिये।

लङ्कामें ब्राह्मणोंके लिए ऐसा आदर पाना आश्चर्यकी बात थी। दशग्रीव कुछ कराता भी था तो केवल आदेश देता था। वेदज्ञ होनेका दर्प उसमें था। सभी ब्राह्मणोंको वह विधि-निर्देश कर सकता था। लङ्कामें दूसरा कोई भी ब्राह्मणोंमें श्रद्धा रखने वाला नहीं था। उन्हें सदा उपेक्षा ही मिली थी। मेरी सेवा, सम्मान-दानसे उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई।

उनमें जो वयोवृद्ध सबके अग्रणी थे, अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—'वत्स ! तुम कौन हो ? हमारी इतनी श्रद्धा, सहित सेवा क्यों कर रहे हो ?'

'आप जानते ही हैं कि सकाम व्यक्ति ही शरणागत होता है। सेवा करता है। मैं भी कुछ आशा लेकर आप सबके श्रीचरणोंके समीप आया हूँ।' मैंने हाथ जोड़कर कहा। लङ्काके ये ब्राह्मण सकामत्वको ही समझ सकते थे। न ये स्वयं निष्काम थे, न निष्कामसे इन्हें कभी काम पड़ा था।

'क्या चाहिए तुम्हें ?' उन वृद्धने पूछा।

'यदि आप सब वचन दें तो............।' मैंने वाक्य पूरा नहीं किया।

'हम सब वचन देते हैं। यदि हमारे वशका काम होगा, अवश्य कर देंगे।' सबने साथ ही कहा।

'केवल यह कि आजके अनुष्ठान सम्पुटमें आप सब एक अक्षर परिवर्तित करके पाठ करें।' मैंने प्रार्थना की—'आप सम्पुटके 'हारिणी' में 'ह' के स्थानपर 'क' कहते रहें।'

'एवमस्तु !' वृद्धके साथ सबने कह दिया। फिर वृद्ध बोले—'वत्स ! हमने वरदान दे दिया है। तुम निश्चय श्रीरामके ही सेवकोंमें-से ही कोई हो। कौन हो ? ब्राह्मण कोई कहीं नहीं है जो उन ब्रह्मण्यदेवकी विजय-वाञ्छा न करता हो। हम परिस्थिति-विवश हैं, यह दूसरी बात है।'

मैंने उन्हें प्रणाम किया, परिचय देकर विदा हुआ। पता लगा कि प्रातः जब पूर्णाहुतिपर भी देवी कालरात्रि प्रकट नहीं हुईं, दशग्रीवने पूछताछ की। ब्राह्मणोंने सत्यको स्पष्ट स्वीकार कर लिया। दशग्रीवने केवल इतना कहा—'वह वानर बहुत बुद्धिमान है। मुझे उसीने सर्वत्र विफल किया।'

दशग्रीव जब श्रीरघुनाथके शरोंकी आहुति बन गया, लङ्कामें अनिच्छा पूर्वक आरम्भ किया गया यह रक्षोमेघ-यज्ञ पूर्ण हो गया। प्रभुकी आज्ञासे श्रीलक्ष्मणलालने हम सबके साथ जाकर विभीषणजीको रक्षोगणाधिपके पदपर अभिषिक्त कर दिया। सागर-तटपर केवल जलसे किया गया राज-तिलक आज साङ्ग सार्थक हो गया।

यह विजय-सन्देश भगवती भूमिजाको सुनानेका गौरव प्रभुने मुझे प्रदान किया। मैंने ही लङ्कामें उनके प्रथम-दर्शन किये थे, अतः यह मेरा स्वत्व था और मर्यादा-पुरुषोत्तमसे तो किसी भी मर्यादाके पालनमें कभी प्रमाद हुआ नहीं। प्रभुने कहा—'तुम वैदेही-स्नेह-भाजन हो। उनको रावण-वधका समाचार तथा मेरी कुशल सुनाओ।'

'अम्ब ! दुर्दम दशग्रीवको अपने सहायक, परिकरोंके साथ प्रभुने रण-शय्या दे दी। सानुज सर्वथा अक्षत श्रीरघुवंश-मणिकी विजय हुई !' मैंने अशोक वाटिका पहुँचकर प्रणिपात करके सम्वाद सुनाया।

'वत्स !' अम्बा उसी शिंशुपा तरु-मूलमें आसीन थीं। उनका श्रीविग्रह समर-भूमिके समाचारोंने कुछ और कृश ही किया था। अब भी कपोलोंपर अश्रुधाराकी रेखाएं थीं; किन्तु मेरे शब्द सुनकर उनका सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्च कण्टकित होकर झञ्झावातमें अश्वत्थ-पत्रके समान कम्पित होने लगा। वे स्तम्भके कारण बोलने, उठने, नेत्र-पलकोंके सञ्चालनमें भी असमर्थ हो गयीं।

'वत्स !' आनन्दका वह अपार आवेग रुकनेपर—कुछ समय लगा था अम्बाको उसे सम्हालनेमें और तब भी उनका स्वर गद्गद था—'सीताके समीप इस सम्वादका पारितोषिक देने योग्य कुछ नहीं है। कभी कुछ होगा भी नहीं। यह सदा तुम्हारी ऋणी रहेगी। प्रभु तुमपर सदा प्रसन्न रहें और उनके पादपद्मोंकी अविचल भक्ति तुम किसीको भी प्रदान करनेमें सदा समर्थ रहो !'

'अम्ब !' मैं अबोध शिशुके समान उनके श्रीचरणोंके सम्मुख भूमिपर पड़ गया और फूटकर रो उठा। आनन्दका आवेग असह्य हो रहा था। किसी प्रकार अपनेको जब संयत कर सका, मैंने कहा—'सानुज श्रीरघुनाथको समर-विजयी स्वस्थ देखता हूँ, इससे महान पुरस्कार आज मुझे भला

क्या मिल सकता है। आप आशीर्वाद दो कि मैं प्रभुके श्रीचरणोंकी छायामें पड़ा रहूँ। आपकी सेवाका सुअवसर मिलता रहे।'

'पुत्र हनुमान ! ऐसा केवल तुम कह सकते थे। बल, शौर्य, पराक्रम, शास्त्रज्ञान, तत्त्वज्ञान, दक्षता, तेज, धैर्य, विनय आदि सब सद्गुण तुममें पूर्ण रहें। सानुज श्रीराघवेन्द्र तुमपर पूर्ण वात्सल्य रखें।' अम्बा द्रवित होती हैं तो उनके आशीर्वाद-उपहारकी सीमा कहाँ रहती है। वे वरदान देते सन्तुष्ट ही नहीं हो रही थीं।

कुछ क्षणोंमें जब मैं ठीक स्वस्थ हुआ, अम्बाके समीप उपस्थित कुरूप भयानकाकार राक्षसियोंकी ओर मेरा ध्यान गया। वे सब भय-कातरा थीं। सब अब अम्बाकी सेवा ही करती होंगी ; किन्तु उनको देखकर मुझे बहुत क्रोध आया—'ये अब यहाँ क्यों हैं ?'

'अम्ब !' मैं करबद्ध खड़ा हो गया।'

'वत्स ! बिना संकोच कहो, क्या चाहते हो तुम ?' अत्यन्त स्हनेपूर्वक उन वात्सल्यमयीने कहा।

'आप अनुमति दे दें ' मैंने प्रार्थना की—'आपको इतने दिनों तक अहर्निशि सन्त्रस्त करने वाली इन राक्षसियोंको मैं अङ्ग-भङ्ग करके नोच-नोच कर, पदोंसे प्रताड़ित करके इस प्रकार मारना चाहता हूँ कि अत्याचारी असुर आकल्पान्त किसी अनाश्रिता अबलाको उत्पीड़ित करनेका विचार करते समय इनकी यातनाका स्मरण करके संकोच करें।'

'हनुमान ! तुम सचमुच वानर हो।' अम्बाका अत्यन्त रोषपूर्ण स्वर सुनकर मैं काँप उठा। उन अनन्त करुणामयीके नेत्र अरुण हो गये थे। अधर काँप रहे थे। वे मुझे डाँटने लगी ; मेरी भर्त्सना करने लगीं—'तुम मर्यादा-पुरुषोत्तमके सेवक कहते हो अपनेको ? ये शब्द तुम्हारे मुखसे निकल कैसे सके ? यह श्रीरघुनाथके उज्वल यशके अनुरूप होगा ?'

मैंने जीवनमें प्रथम बार जाना कि भय क्या होता है। मस्तक झुकाये मैं उन महाशक्ति सर्वेश्वरीके सम्मुख खड़ा था और वे डाँटती जारही थीं—'तुम भी तो सेवक हो, सेवकका कर्त्तव्य समझते हो ? ये जिसकी सेविकाएँ थीं, उसकी इच्छा—उसके इंगितके अनुसार चलनेको ये विवश थीं या नहीं ?

अब इनको विनम्रता, दीनता, मेरी सेवा-तत्परता भी देख लेते ! तुम कहना क्या चाहते हो कि यही अपराधिनी हैं ?'

'न कश्चिन्नापराध्यति ।'— वाल्मीकीय रामायण

'सृष्टिमें ऐसा कौन है, जिससे अपराध नहीं हुआ ? इस सीतासे अपराध हुआ । यह अपने स्वामीके यशकी लुब्धा न बनती, दशग्रीवको शाप दे देती तो आज रक्षोकुलकी समस्त वधुएँ विधवा नहीं बनतीं । श्रीरघुनाथसे अपराध हुआ । उनके त्रोणमें अमोघ अस्त्र थे । वे प्रारम्भमें ही अकेले दशग्रीवको मार सकते थे । यही अपराध उनके अनुजसे हुआ और तुम निरपराध हो ? जब तुम समूची लङ्का भस्म कर रहे थे, तब तुम्हारे मनमें भी आशा थी कि कितने निरपराध पशु-पक्षी, अन्य छुद्र प्राणी तुम्हारे क्रोधसे मर रहे हैं ?'

'क्षमा अम्ब ! मैं अपराधी हूँ ; किन्तु आपका पुत्र हूँ, क्षमा !' मैं यमराजके सम्मुख खड़ा रह सकता हूँ ; किन्तु अम्बाके सम्मुख मेरा शरीर कम्पित होने लगा था । मैं कातर होकर उनके चारु-चरणोंपर गिरा ।

'उठो वत्स !' मेरे मस्तकपर अभय कर रखा अम्बाने—सदा सबके लिए अनन्त आशीर्वादकी वर्षाके व्यसनी अपार वात्सल्य स्निग्ध कर । हनुमान कृतकृत्य हो गया ।

मैं उठा ! मैंने बार-बार प्रणिपात किया । भय-विह्वला राक्षसियाँ अब आश्वस्त हो गयी थीं । वे भूमिपर मस्तक रखे, हाथ जोड़े अत्यन्त दीना लगती थीं ।

'वत्स ! अब ऐसी व्यवस्था करो कि मैं शीघ्र प्रभुके पादारविन्दोंका दर्शन प्राप्त कर सकूँ ।' यह कहकर अम्बाने मुझे अपने कर्त्तव्यके प्रति सावधान किया । मैं उनको प्रणाम करके प्रभुके समीप आ गया ।

लङ्कापति राक्षसेश्वर विभीषणने अभिषेक सम्पन्न होते ही जो प्रथम आज्ञा दी, वह थी जगदम्बाको भली प्रकार स्नान कराके, वस्त्राभरण सज्जिता करके ससम्मान प्रभुके समीप पहुँचानेकी व्यवस्था करनेके सम्बन्धमें ।

'मैं तपस्वीकी अर्धाङ्गिनी हूँ। मेरे स्वामी अभी तापसवेशमें हैं।' विभीषणने अत्यन्त खिन्न स्वरमें प्रभुके समीप निवेदन किया था कि उनके, मय-तनयाके तथा विभीषण—पत्नी सरमाके भी अनुरोधको यह कहकर जगदम्बाने अस्वीकार कर दिया था। उन्होंने स्नान कर लिया, किन्तु अङ्गराग, आभरण स्वीकार नहीं किये। केवल सादे स्वच्छ वस्त्र पहिने। आहारमें भी उन्होंने केवल कन्द-मूल-फल ही ग्रहण किये।

विभीषणने शिविकामें पहुँचानेकी व्यवस्था की थी; किन्तु जब वानरोंका समूह अम्बाके दर्शनको उत्सुक दौड़ा, प्रभुने उन्हें पैदल लानेका आदेश दिया।

नितान्त निष्करुण होती है मर्यादा। मर्यादा-पुरुषोत्तमके वे कटु—उपेक्षा वचन तथा उन परमपावना अम्बाकी अग्नि-परीक्षा स्मरण करते हृदय विदीर्ण होता है। लेकिन अल्पकालीन था वह अत्यन्त दारुण प्रसङ्ग। उसके अनन्तर प्रभुके वामपार्श्वमें आसीना अम्बा—श्रीसीतारामकी यह दिव्य प्रथम झाँकी लङ्काकी उस समर-भूमिमें करके हनुमानके नेत्र धन्य-धन्य हो गये।

३६—हनुमदीश्वर

श्रीरघुनाथने लङ्कासे प्रस्थानमें इतनी शीघ्रता की कि स्नान करके स्वेद—रक्त सीकर भी, जो श्रीअङ्गपर लगे थे, उनके प्रक्षालनका अवसर नहीं लिया। प्रभुकी श्रीभरतसे मिलनकी आतुरता मैं समझ सकता था। दशग्रीवने कुबेरसे जो पुष्पक विमान छीना था, उसका लङ्कामें रहना आज सफल हुआ। वानर एवं ऋक्ष सेना तो विदा कर दी गयी; किन्तु विभीषण तथा हमारे दलके सभी प्रमुख नायक विमानमें प्रभुके साथ थे। सबको अयोध्याके दर्शन करना था। दयामयने यह अनुरोध स्वीकार कर लिया था।

विभीषणजीका अनुरोध उचित था—'यदि सागरपर सेतु बना रहता है तो लङ्कामें कोई भी सामान्य मानव आ सकते हैं। राक्षस अपना स्वभाव ही त्याग दें—ऐसी आशा नहीं। ऐसी स्थितिमें ब्राह्मणोंकी, ऋषि-मुनियोंकी मर्यादा रक्षा—कठिन होगी। लङ्का असुरक्षित भी रहेगी।'

पुष्पक सागर-पार उतर गया। श्रीरघुनाथ सदासे जनकी सुनते आये हैं। विभीषणजीका अनुरोध सफल हुआ। सागरका सेतु श्रीरघुनाथने धनुषकी नोंकसे भङ्ग कर दिया। जिनके नामके बलपर वह स्थिर था, उन सत्यसङ्कल्पके सङ्कल्प करते ही शिलाओंको सागरकी तरङ्गें बहा ले गयीं।

स्वाभाविक था कि पुष्पकके उतरते ही समीपके कुछ मुनि आ जाते। श्रीराघवेन्द्रके दर्शनका सौभाग्य कोई छोड़ देगा ? सेतु समाप्त करके मर्यादा-पुरुषोत्तमने मुनियोंसे पूछा—'मुझे दशग्रीवको उसके कुलबान्धवोंके साथ मारना पड़ा। दूसरा कोई मार्ग नहीं रहा था; किन्तु यह राक्षसकुल पौलस्त्य था। इसलिए मुझे ब्राह्मण न सही, ब्रह्मबन्धुओंके वधका तो प्रायश्चित करना ही चाहिए। आप सब उचित प्रायश्चितका निर्देश करें।'

'आपका स्मरण महापातकीको पंक्तिपावन बना देता है।' मुनियोंने कहा—'किन्तु मर्यादा-पुरुषोत्तम ही तो लोकको मार्गदर्शन करेंगे। आप यहाँ शिवलिङ्ग-स्थापन करके अर्चा करलें।'

मुझे उत्तमलिङ्ग-विग्रह ले आनेका आदेश हुआ। मैं सीधे कैलास चला गया; क्योंकि त्रिपुरारिके करोंसे प्राप्त लिङ्ग-विग्रहसे उत्तम दूसरा हो ही नहीं सकता था। लेकिन कैलास पहुँचनेसे ही तो सदाशिवका साक्षात्कार नहीं हुआ करता। वे देश-कालातीत प्रभु स्वयं दर्शन देना चाहें, तभी देवता भी उन्हें देख सकते हैं। मुझे त्रिलोचनके दर्शन नहीं हुए। मैं एकाग्रचित्त स्तुति करने लगा।

थोड़ा समय लगा मुझे और तब पुरारि प्रकट हुए। उन्होंने मुझे देखकर हास्य किया। उन लीलामयके हास्यका मर्म तो लौटकर मैं समझ सका, जब मैंने देखा कि श्रीरघुनाथने स्थापना करदी है। मेरी प्रार्थनापर उन पार्वती-पतिने कहा—'तुम एकके स्थानपर दो लिङ्ग-विग्रह ले जाओ!'

मैंने दोनों विग्रहोंको सादर स्कन्धोंपर धारण किया और शीघ्रता पूर्वक चल पड़ा; किन्तु वहाँ सागर-तटपर पहुँचकर देखता हूँ कि मेरे स्वामीने अन्य लिङ्ग स्थापित कर दिया है। वे उसका अर्चन-सम्पन्न करके स्तवन भी कर चुके। मुझे क्षोभ हुआ। कुछ रोषसे मैंने पैर पटका। इससे मेरे पैर भूमिमें धँस गये।

श्रीरघुनाथ मेरे समीप आकर स्नेह पूर्वक बोले—'पवन-नन्दन ! दु:खी होनेकी बात नहीं है, मुहूर्त अतिक्रान्त हो रहा था। आज १. ज्येष्ठ मास, २. शुक्लपक्ष, ३. दशमी-गङ्गावतरण दिवस है, ४. बुधवार है, ५. वृषका सूर्य, तथा ६. कन्याका चन्द्र है, ७. हस्त नक्षत्र, ८. गद-करण, ९. आनन्दयोग था, १० अभिजित् मुहूर्त था। इन दस परमपुण्य योगोंमें गन्धमादनपर सेतु-सीमामें मुझे मुनियोंने शिव-स्थापनका आदेश दिया था। तुमको आनेमें विलम्ब हुआ। व्यतीपातयोग आरम्भ होनेवाला था, अतः मुनियोंने शीघ्रता करनेको कहा। सीताने सागर-रेणुकासे लिङ्ग-विग्रहका निर्माण कर दिया। उसीकी स्थापना करके मैंने अर्चा सम्पन्न की।'

मैंने कुछ खिन्न, रोषके ही स्वरमें कहा—'मैं तो आपके ही आदेशसे गया था। विलम्ब भी सकारण ही हुआ मुझे।'

स्वामीके अतिशय स्नेहने मुझे धृष्ट वना दिया था। मुझे प्रभुने फिर समझाया—'मैं तुमसे भिन्न तो नहीं हूँ। मेरा प्रत्येक कार्य तुम्हारा है और तुम्हारा कार्य मेरा है। इस स्थापनाको भी तुम अपनी मान लो।'

मुझे सन्तोष नहीं हुआ। मेरे नेत्रोंसे अश्रु-बिन्दु गिरने लगे। अब समझता हूँ कि तब मुझमें कितना कर्तृत्वाभिमान था। मैं कहाँ तब तक सम्पूर्ण समर्पण करनेमें सफल हुआ था ? कर्म मेरा था और मैं उस कर्मका फलार्पण करने वाला था। स्वामी वह फलार्पण स्वीकार करें तो कर्म सफल हो ; किन्तु मेरे उदार-चक्र चूड़ामणिको तो फलार्पण नहीं, कर्मार्पण भी नहीं ; कर्ताका ही आत्मार्पण अभीष्ट था। उन्होंने हँसकर कहा—'तुम रुदन क्यों करते हो ? तुम्हें मेरा स्थापित यह लिङ्ग अभीष्ट नहीं है तो इसे उखाड़कर सागर-समर्पित कर दो। मैं तुम्हारा लाया श्रीविग्रह स्थापित कर दूँगा।'

हाय रे हनुमान ! तूने सोचा ही नहीं कि इन लीलामयका हास्य ही जनोन्मादकरी माया है। अन्ततः मैं अज्ञ वानर ही तो हूँ। प्रसन्न होकर मैंने अपने लाये दोनों लिङ्ग विग्रह कन्धोंसे उतारकर भूमिमें धर दिये और दोनों हाथों स्थापित लिङ्गको उखाड़ने लगा। मेरे हाथोंकी शक्तिसे वह हिला भी नहीं। तब भी मैं समझ नहीं सका। मायाका महत्व ही यह है कि उससे मोहित जीव सम्मुखके प्रत्यक्ष सत्यको भी देख नहीं पाता। मुझे लगा कि लिङ्ग-विग्रह पञ्चामृत स्नानसे स्निग्ध हो गया है, अतः मेरे हाथ सरक जाते हैं। मैंने अपनी पूँछ भली प्रकार उसमें लपेटी और पूरा बल लगाकर उखाड़ने

लगा। फल यह हुआ कि पूँछका एक भाग टूट गया। मैं मुखके बल दूर जा गिरा। इतना आघात लगा कि मूर्छित हो गया।

भले शिशु अपनी ही अज्ञताके कारण गिरे, अम्बा तो देखती नहीं रह सकती थीं। मेरी अनन्त वात्सल्यमयी अम्बा श्रीमैथिली अपने अज्ञ वानर पुत्रको सम्हालने दौड़ पड़ी थीं। उन्होंने जल लेकर मेरा मुख धोया। अपने अञ्चलसे पोंछा। मेरी मूर्छा दूर हुई तो मैं उनके पादपद्मोंमें लेट गया।

प्रभु भी समीप आ गये। उन्होंने सस्नेह कहा—'हनुमान ! उठो और अपने लिए जो लिङ्ग-विग्रह ले आये हो उसकी स्थापना इस परमपावन मुहूर्तमें कर दो। तुमने भी तो युद्धमें मेरे लिए बहुत-से राक्षसोंको मारा है। इससे तुम्हारा भी प्रायश्चित हो जायगा। जो लिङ्ग-विग्रह मेरे लिए लाये हो, उसे पड़ा रहने दो। अभी वह अनर्चित रहेगा। मैं आगामी कल्पमें उसकी स्थापना करूँगा।'

मेरा अहङ्कार मिट गया था। उठकर मैंने आज्ञा-पालन किया। जब मैं लिङ्ग-स्थापन करके अर्चन कर चुका, प्रभुने आशीर्वाद दिया—'तुम्हारे द्वारा स्थापित इस हनुमदीश्वर लिङ्गका प्रथम पूजन होगा। इसकी अर्चा किये बिना मेरे द्वारा स्थापित रामेश्वर लिङ्गकी पूजा सफल नहीं होगी।

'तुम यहाँ गुप्तपाद, छिन्न-पुच्छ विग्रहरूपमें रहो।' प्रभुने पुनः आदेश किया। उन सर्वसमर्थके स्नेह स्पर्शसे मेरी पूँछ यथावत हो गयी।

जब श्रीसीताराम पुष्पकमें सिंहासनासीन हो गये, श्रीलक्ष्मणलाल पृष्ठ भागमें व्यवस्थित खड़े हुए, मैं प्रभुके श्रीचरण अङ्कमें लेकर बैठ गया, तब मैंने पूछा—'अपराध तो मैंने किया था; किन्तु मुझसे भूल कहाँ हुई ? मुझपर अनुग्रह हो तो मैं ऐसे अपराधसे आगे सावधान रहूँगा।'

प्रभुने कहा—'पवनपुत्र ! तुम जानते हो कि प्रमाद प्राणीको परम पीड़ाप्रद होता है। तुमने इस तथ्यपर ध्यान ही नहीं दिया कि जिनके संकेतसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंका सृजन होता है—उन पराशक्ति सीताने स्वकरोंसे वह रेणुका लिङ्ग निर्मित किया था और मैंने स्वयं सविधि उसकी स्थापना की है। तुम्हें सावधान करनेके लिए ही मैंने दस उत्तमोत्तम योगोंकी प्राप्तिका वर्णन किया; किन्तु कृतविद्य होनेपर भी तुमने इतने सबल मुहूर्तकी शक्तिपर ध्यान ही नहीं दिया। ऐसे मुहूर्तमें स्थापित, सीताके

करोंसे निर्मित, मेरे द्वारा बैठाये गये एवं अर्चित लिङ्गको हिला पाना भी किसीके लिए सम्भव कैसे हो सकता है ?'

'मेरे स्वामी ! आप मुझे अपने यन्त्रके रूपमें स्वीकार करलो !' अब मुझे सद्बुद्धि आ गयी थी । मैंने श्रीचरणोंपर मस्तक रखा—'अब कभी अपने कर्तृत्वका अहङ्कार मेरे अन्तरमें सिर न उठावे । आप दोनों वहाँ सदा विराजमान रहें ।'

मेरे मस्तकपर प्रसन्न प्रभुने अपना पद्मपाणि धर दिया ।

———

३७-जननीका अपनत्व

वानरेन्द्र सुग्रीवको प्रसन्न करनेके लिए ही प्रभुने पुष्पकको किष्किन्धा उतारा । इससे हमारी राज्ञी तारा एवं सुग्रीव-पत्नी रुमाको भगवती भूमिजाका पाद-स्पर्श प्राप्त करनेका सौभाग्य मिला । मैंने इस अवसरपर प्रार्थना की—'मुझे अपनी जननीका दर्शन किये बहुत दिन हो गये । यदि आज्ञा हो—मैं पुष्पकपर पथमें ही पहुँच जाऊँगा ।'

'हम सब इस सौभाग्यसे क्यों वञ्चित रहें ?' प्रभुने सस्नेह कहा और विमान काञ्चन गिरिकी ओर चल पड़ा । मेरे पिता बहुत संकोची प्रकृतिके हैं । वे किष्किन्धा ही रुक गये । माता-पुत्रके मिलनमें व्यवधान बनना उन्हें नहीं रुचा । वैसे भी जबसे सुग्रीव वानरेन्द्र हुए, मेरे पिता केसरीको उन्होंने सादर समीप रखनेका क्रम प्रारम्भ कर लिया था । अब तो उनपर वानर-राजधानीकी पूरी व्यवस्था छोड़ दी थी । मेरी तपस्विनी माता एकाकिनी रहती थी । वह एकान्त प्रिय थी । उसने तो प्रभुके अनुरोध करनेपर भी अयोध्या जाना स्वीकार नहीं किया, किष्किन्धा कहाँ रहने वाली थी ।

विमान उतरनेसे पूर्व ही मैंने माताके पदोंमें प्रणाम करके उल्लास पूर्वक कहा—'माँ ! मेरे स्वामी अयोध्यानाथ श्रीरघुनाथ छोटे भाई

श्रीलक्ष्मणलाल तथा अपनी अभिन्न शक्ति अम्बा सीताके साथ आरहे हैं। साथमें वानरेन्द्र सुग्रीव सपरिकर हैं।'

'पुत्र! तूने पवित्र किया मुझे। मेरा जीवन धन्य होगा आज। जननीने हृदयसे लगाया मुझे। उसके आनन्दाश्रुसे मेरा सिर आर्द्र हुआ; किन्तु तभी वह हड़बड़ीमें पड़ गयी।

'यह सब तू करेगी तो उन्हें बहुत संकोच होगा!' मैंने माँको अर्चाका उपक्रम करते देखकर मना किया—'मेरे स्वामी संकोचीनाथ हैं। तेरी पद-वन्दना करने पधार रहे हैं। आशीर्वाद देगी तभी आनन्दित होंगे। उन्हें अयोध्या अविलम्ब पहुँचना चाहिए। अन्यथा वहाँ महान अनर्थ हो जाना असम्भव नहीं है।'

माताको मैंने स्थिति समझा दी। उसने मान लिया कि वह अर्चन करने अथवा अल्पाहार करानेका आग्रह नहीं करेगी।' प्रभुने सानुज आकर पद-वन्दना की स्वयं अपना नाम पिताके नामोल्लेख पूर्वक। माँ तो विह्वला बन गयी। अम्बा मैथिली जैसे ही उसके पदोंमें झुकीं, उसने उन्हें अङ्कमें समेट लिया। अम्बाने ही सस्मित कहा—'आपके पुत्रको मैंने अपना बना लिया है।'

'वह तो तुम्हारा ही पुत्र है।' माँ किसी प्रकार रुद्ध कण्ठ कह सकी—'मैं इसकी धाय माँ मात्र हूँ। धन्य हुआ यह कि अपनी वास्तविक अम्बाका वात्सल्य पा सका और मैं भी इसे आपको देकर दायित्व मुक्त हुई।'

'ये वानरेन्द्र सुग्रीव हैं। ये ऋक्षराज जाम्बवन्त!' प्रभु सानुज प्रणाम कर चुके और श्रीमैथिली अम्बासे अवकाश मिला तब मेरा अपना वर्ग जननीको प्रणाम करने लगा। मैं परिचय करा रहा था। सबसे अन्तमें विभीषणजीने प्रणाम किया तो मैंने उनका परिचय दिया—'ये लङ्काधिप राक्षसेश्वर विभीषण हैं।'

'लङ्काधिप तो रावण है!' जननीने मेरी ओर देखा।

'रावण तो मेरे स्वामीसे शत्रुता करके सकुल समाप्त हो गया।' मैंने जननीको थोड़े शब्दोंमें सम्पूर्ण कथा सुना दी।

'तुझे लज्जा नहीं आती? तूने मेरा दूध पिया है?' जननीका मुख क्रोधसे अरुण हो उठा—'तेरे बलको धिक्कार है! तूने इन सुकुमार परम

सुन्दरको कष्ट दिया ? जिसे तू अम्बा कहता है, उन्हें रुदन करते देखता रहा और रावणको मार नहीं दिया तूने ? इनको लेने दौड़ा किष्किन्धा आया था, समुद्रपर इनको सेतु बनाना पड़ा, तू मेरा पुत्र है ? मेरा स्तनन्धय ?'

'मैं स्वतन्त्र नहीं था माँ !' मैंने बड़े संकोचसे प्रार्थना की—'तुम ऋक्षराज जाम्बवन्तजीसे पूछ लो। इन्होंने ही मुझे कुछ भी करनेसे वारित ·· ·········।'

जाम्बवन्तजी आगे आ गये। उन परम वृद्धका माताने संकोच किया था, जब उन्होंने प्रणाम किया। वे बोले—'देवि ! सेवककी शोभा, उसके शौर्य-प्रदर्शनमें नहीं है। स्वामीके सुयशको समृद्ध करनेमें सेवकको सतर्क रहना पड़ता है।'

'आप ठीक कहते हो।' माँ शान्त हुई। उन्होंने मेरी ओर देखा—'अन्यथा हनुमान—इसे मैंने अपना दूध पिलाया है।'

'कुमार ! तुम सन्देह कर सकते हो ?' माँने कुमार लक्ष्मणलालकी ओर देखा—'तुम सोचते हो कि यह वानरी तुम्हारे सर्वेश्वरेश्वर अग्रजके सम्मुख अपने दूधके सम्बन्धमें डींग मार रही है ?'

मैंने पीछे पूछा था तो श्रीलक्ष्मणलालने बहुत लज्जित होकर कहा था—'पवनकुमार ! सचमुच मेरे मनमें ऐसा कुछ आया था। मैं नहीं जानता था कि आपकी जननी अन्तर्यामी हैं।'

मैं जानता था कि मेरी माँ अन्तर्यामी भले न हों, वे अत्यन्त सूक्ष्म-दर्शिनी हैं। मुखपर आयी लेशमात्र भङ्गिमाका भी तात्पर्य वे तत्काल समझ लिया करती हैं। उन्होंने अपना दक्षिण वक्षस्थल अनावृत करते हुए कहा—'कुमार देखो ! मेरा यह दूध हनुमानने पिया है।'

अपनी जननीके वात्सल्यसे मैं परिचित था। मैं जब भी उनके समीप पहुँचा, मुझे हृदयसे लगाते ही उनके स्तनोंसे दुग्ध-बिन्दु टपकने लगते थे। लेकिन उनके दूधकी अपार शक्तिका अनुमान मुझे भी नहीं था। जननीने अपने करसे स्तन दबाया। दूधकी धारा सम्मुखके क्रौंच शिखरपर पड़ी।

इतना भयानक शब्द हुआ, मानो पर्वतपर वज्रपात हुआ हो। पर्वतका वह शिखर मध्यसे विदीर्ण हो गया। वानरोंने जयध्वनिसे गगन गुञ्जित कर दिया।

'माँ ! लक्ष्पण शिशु हैं। आप इन्हें क्षमा करें।' प्रभुने जननीके चरण पकड़ लिये। माँने उन्हें उठाया। कई क्षण वे आनन्द-विह्वल रहीं।

मुझे ही कहना पड़ा--'प्रभुको बहुत त्वरा है ! अयोध्या अत्यन्त शीघ्र पहुँचना आवश्यक है। आप अनुमति दो !'

'हनुमान ! श्रीराम तेरे पिता हैं और सीता तेरी माँ हैं।' जननीने विदा करते समय मुझसे कहा—'श्रद्धा सहित इनकी सेवा करके अपना और मेरा जन्म भी सार्थक करना।'

पुष्पकमें बैठनेपर भी प्रभु अम्बा मैथिलीसे, अनुजसे और वानर यूथपतियोंसे देर तक मेरी जननीके वात्सल्य, ओज तथा शक्तिकी अत्यन्त श्रद्धा-सम्मान सहित चर्चा करते रहे।

———

३८—श्रीरामदूत

अयोध्याके दर्शन हमें गगनमें दूरसे ही हुए। सानुज प्रभुने, श्रीअम्बाने और हम सबने उस पावनपुरीको अञ्जलि बाँधकर प्रणाम किया। पुष्पकको प्रयाग उतरना था। प्रभु वहाँ स्नान करने वाले थे जहाँ भगवती विष्णुपदी भानुजाका आलिङ्गन करती प्राणियोंके पाप-तापके हरणकी घोषणा करती प्रवाहित होरही हैं।

श्रीरघुनाथने मुझसे कहा—'पवनकुमार ! तुम अयोध्या चले जाओ। भाई भरत तुमसे परिचित हैं। उन्हें मेरे सकुशल लौटनेका समाचार दो और उनका भाव देखकर शीघ्र लौटो ! तुम्हारा सन्देश मिलनेपर मैं प्रयागसे प्रस्थानका विचार करूँगा।'

'श्रीभरतका भाव ?' मैं प्रभुका मुख देखता रह गया। स्वयं श्रीरघुनाथको क्या भाईका भाव अज्ञात था ? बार-बार भरतकी चर्चा करते हुए ये करुणानिधान विह्वल होते रहे हैं। लङ्कासे प्रस्थानमें इतनी आतुरता भरतकी प्रीतिने ही करायी और अब यह अकस्मात् आशङ्का ?

'मुझे पिताजीने चतुर्दश वर्षका वनवास दिया था।' श्रीरघुनाथका स्वर असाधारण गम्भीर हो रहा था—'चित्रकूटमें भाई भरतने कहा था कि यदि अवधि पूर्ण होते ही मैं अयोध्या न आगया तो वे शरीर नहीं रखेंगे। अवधि आज समाप्त हो जायगी। समस्या यह है कि राम अयोध्यासे प्रातःकाल नहीं निकल सका था। चाहता हूँ कि दिनकी वे घटिकाएँ भी पूर्ण करके पहुँचूँ ; किन्तु इस सम्बन्धमें भाई भरत ही प्रमाण हैं। यदि वे अवधिका अन्त रात्रि-व्यतीत होनेके साथ माननेका आग्रह करते हों तो पुष्पक सूर्यकी प्रथम किरणके साथ अयोध्याकी भूमिका स्पर्श करेगा। लेकिन यदि वे मेरे आगमनके समाचारसे सन्तुष्ट होकर कुछ घटिकाएँ प्रतीक्षा करनेकी स्थितिमें हों तो राम इन घटियोंको पूर्ण कर लेना चाहता है !'

मैंने श्रीचरणोंमें मस्तक रखा। मेरे मर्यादा-पुरुषोत्तमके ही उपयुक्त था यह शील और संकोच। भाईसे कहने-पूछनेकी बात नहीं थी। उनका

भाव देखकर सूचना देनी थी। श्रीरघुनाथ उस भावका सम्मान सर्वोपरि मानते थे—अपनी इच्छा अपने सङ्कल्पसे भी ऊपर।

मैं चलने लगा तो प्रभुने पुनः—'शृङ्गवेरपुरमें उतरना। वहाँ निषादराज गुह मेरे मित्र हैं। उन्हें भी मेरे सकुशल लौटनेका सन्देश देना। बहुत प्रसन्नता होगी मुझे।'

प्रभुको निषादराजका स्मरण आया—आश्चर्यकी कोई बात नहीं थी। दीनबन्धुके अतिरिक्त इस प्रकार कौन सबका स्मरण रखनेमें समर्थ हो पाता है।

मैं नन्दिग्राम पहुँचा तो वहाँ महामन्त्री सुमन्त्र, रघुकुलगुरु महर्षि बशिष्ठ, श्रीशत्रुघ्नकुमार तथा दूसरे सब पुरोहित, मन्त्री एकत्र थे। लगभग पूरी राजसभाके सदस्य ही वहाँ आगये थे। माता कौशल्या तथा सुमित्राको भी सायंकाल वहाँ देखकर मुझे अब प्रभुकी आशङ्काकी गम्भीरताका अनुमान हुआ। सुने हुए सत्यसे सम्मुखका सत्य सदा सहस्र गुणित होता है।

कृशकाय बहुत तापस देखे हैं मैंने; किन्तु इतना क्षीण शरीर श्रीभरतका? सञ्जीवनीके लिए समूचा गिरि-शिखर लेकर लौटते समय जब मैं यहाँ उतरनेको विवश हुआ था, मैंने किसीकी ओर बहुत कम ध्यान दिया था। अर्धरात्रिका अवसर था और मुझे एक-एक पल भारी होरहा था उस समय। मैं लङ्का पहुँचनेकी त्वरामें था; किन्तु आज सायंकालके प्रकाशमें श्रीभरतको देखकर लगा, तपस्याकी अधिदेवता भी कदाचित ही इतनी कृश, इतनी तेजोमयी हो। उनकी केश-राशि पिङ्गल जटाओंमें परिवर्तित हो चुकी थी और श्रीमुख आज अत्यन्त खिन्न-विषण्ण था।

श्रीरघुनाथके कहीं समीप भी आनेका समाचार नहीं मिला था। अवधि केवल रात्रि भर रह गयी थी। इसी समस्यापर विचार करने सब एकत्र हुए होंगे, मैंने यह समझ लिया। केवल कुछ शब्द मेरे श्रवणोंमें भरतलाल के पड़े—'श्रीरघुनाथ सर्वसमर्थ हैं। वे अयोध्या आना चाहें तो उन्हें अवरुद्ध करनेकी शक्ति सृष्टि में नहीं है। यदि उनके पादारविन्दोंका दर्शन कल भरतको यहाँ नहीं होता तो इसका एक ही अर्थ होगा कि प्रभु इस अपराधीको अपनाने योग्य नहीं मानते। तब इस अधम शरीरका भार-वहन किसी भी कारण भरतके लिए असम्भव होगा। मैंने आप

सबको इसीलिए कष्ट दिया है कि यदि अभाग्यवश ऐसी अवस्था आती है तो मैं अभी आप सबसे क्षमा माँग लेता हूँ । आप भाग्यहीन भरतको भूल जायँ और अपने आगामी करणीयका आज ही निर्णय करलें ।'

'वह तो निर्णीत है । सुनिश्चित है ।' महामन्त्री सुमन्त्रने कहा— अयोध्यामें केवल चिताओंकी भस्म तब रहेगी और उसकी चिन्ता कभी आवश्यक नहीं होती । यहाँ एक भी प्राणी—कोई पशु-पक्षी भी ऐसा नहीं मिलेगा जो ऐसी अवस्थामें दो घड़ी भी जीवन धारण कर सके ।'

मुझसे और सुना नहीं गया । मैं सीधे गगनसे श्रीभरतके सम्मुख उतरा । उनके सम्मुख प्रणिपातसे भी पूर्व मैंने सन्देश सुनाया— 'श्रीविदेह-नन्दिनी एवं अनुजके साथ श्रीरघुनाथ आरहे हैं । वे प्रयाग पहुँच चुके हैं !'

'श्रीरामदूत !' मुझे अपने पदोंमें पड़ते देखकर श्रीभरतजी उठे और भुजाओंमें भरकर हृदय से लगा लिया उन्होंने । मुझे उनके श्रीमुखसे मिली यह उपाधि सबसे अधिक प्रिय है । इस उपाधिसे मैं सदा ही अपनेको अलंकृत-उपकृत मानता हूँ ।

'प्रभु कल पुष्पक विमानसे अयोध्या पहुँच रहे हैं !' मैंने महर्षि तथा दोनों राजमाताजोंको, उपस्थित सुमन्त्रादि वृद्ध सम्मान्य जनोंको प्रणाम करके निवेदन किया—'प्रातःकालीन कृत्य प्रयागमें सम्पन्न करके प्रभु प्रस्थान करेंगे । श्रृङ्गवेरपुरमें निषादराजको सत्कृत करनेमें कुछ समय लग सकता है ।'

'वे श्रीरामसखा !' श्रीभरतलालने अत्यन्त आनन्दमग्न होकर उल्लासपूर्वक कहा—'प्रभु जब अयोध्यासे निर्वासित-प्राय निकले—निषादराज प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने सहज भावसे अपना सर्वस्व श्रीरघुनाथके चरणोंमें समर्पित कर दिया । उन महाभागसे स्पर्धाका साहस नहीं किया जा सकता । प्रभुके स्वागतका स्वत्व सर्वप्रथम उन्हें प्राप्त होना ही चाहिए । भरत प्रतीक्षा करेगा ।'

वहाँ उपस्थित सभीका मुख हर्षसे खिल उठा था । मैंने महर्षिके पदोंमें मस्तक रखकर, श्रीभरतलालका प्रणाम करके, माताओंका पाद-स्पर्श किया । उनका स्नेहाशीर्वाद मिला मुझे । मैंने सबसे अनुमति ली । प्रस्थान

करते-करते मैंने सुन लिया कि शत्रुघ्नकुमार शङ्खध्वनि कर रहे हैं ; किन्तु उनके शङ्खनादमें आज स्वागतका सन्देश गूँज रहा है ।

मैं अयोध्यासे विदा होकर शृङ्गबेरपुर उतरा । उस निषाद पल्लीमें जिस पहिले पुरुषसे पूछा —'निषादराज गुह कहाँ मिलेंगे ?' उसीने सविनय कहा —'इसी अधमका नाम गुह है । आप ?'

'आपके सखा अयोध्यानाथ श्रीरघुनाथ सानुज सपत्नीक सकुशल कल प्रातः पुष्पक विमानसे यहाँ पहुँच रहे हैं ।' मैंने सम्वाद पहिले देकर अपना परिचय दिया—'मैं उनका सेवक पवनपुत्र हनुमान हूँ । आप प्रणम्य हैं मेरे ।'

'पवनपुत्र !' निषादराजने मुझे प्रणाम नहीं करने दिया । अपने वक्षसे लगाये हुए ही बोले—'मैंने सुन लिया है कि आप रात्रिमें अयोध्या आये थे । मेरे स्वामी लङ्कामें दुर्दम दशग्रीवसे संग्राम कर रहे थे और कुमार लक्ष्मण........।'

'वह सब अतीत-कथा हो गयी । दशग्रीव श्रीरघुनाथके शरोंसे सकुल मुक्त हो गया । अब तो लङ्काधिप विभीषण हैं ।' मैंने संक्षिप्त समाचार दिया—'वे भी पुष्पकसे प्रभुके साथ ही कल प्रातः यहाँ आ रहे हैं। आपके स्वागतोपहारका लोभ वानरेन्द्र सुग्रीवको, उनके युवराज अङ्गदको, ऋक्षराज जाम्बवन्तको और मुझ जैसे बहुत-से वानरोंको है । सब कल प्रातराश यहीं करने वाले हैं ।'

'मुझ कङ्गाल, पतित निषादके समीप क्या है उन सर्वेश्वर श्रीराम तथा उनके सेवकोंका सत्कार करनेके लिए !' गुह विह्वल हो गये आनन्दके आवेगसे—'लेकिन वे पतितपावन सदा मुझ-से अधमोंको अपनाते रहे हैं। यह उनका स्वभाव—वे अपनी इस निषाद पल्लीमें पधारेंगे । यह तो उन्हींकी है । हम सेवकोंको सनाथ करेंगे वे ।'

'आप तो पधारें !' निषादराजने दो क्षण पश्चात् मेरा हाथ पकड़ा ।

'इस समय मुझे प्रभुको सन्देश देना है । कल प्रभुका प्रसाद ग्रहण करूँगा यहाँ !' मैंने आग्रह करके विदा माँगी ।

'अच्छा श्रीरामदूत !' निषादराजने भी मेरी उपाधिका समर्थन कर दिया—'सानुज सपत्नीक प्रभुके चरणोंमें इस नीच निषादका प्रणाम निवेदन करना । उनके समस्त सेवकोंको भी ।'

—×—

३९—अयोध्यामें आनन्दके दिन

आनन्दघन श्रीराघवेन्द्रका नित्य आनन्दधाम है अयोध्या। वे आनन्दघन नहीं थे उनकी पुरी विषाद-विह्वला, विगतोत्सवा, विषण्णा बन गयी थी। अपने अधीश्वरके आते ही नित्य नूतना, महामङ्गल महोत्सव-मण्डिता महोल्लासमयी हो गयी।

अयोध्याके सिंहासनपर अभिषेकके समय सर्वाभरण भूषित संसारैक सम्राट्, त्रिभुवन-चक्रवर्ती श्रीरघुनाथकी साम्राज्ञीके साथ जो शोभा—शेष भी उसका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं। अभिषेक सम्पन्न हुआ। लोकपालों, दिक्पालोंने भी उपहारार्पण करके श्रीसीतारामके पादपीठको अपने मुकुट-किरीट-कोटिसे स्पर्श करनेमें सौभाग्य माना।

त्रिभुवनेश्वरके प्रसादोपहार परिसीम नहीं हुआ करते। सब माण्डलीक महीपतियोंको—महेन्द्रादि भी माण्डलीक ही मानने लगे थे अपनेको अयोध्याका—उपहार प्राप्त हुए। ऋषि-महर्षि, विप्रवृन्द, सूत-मागधादि कला-जीवी, प्रजाके प्रधान, नागरिक, सेवक सत्कृत हुए। ऐसे अवसरोंपर जो अत्यन्त निकट होते हैं, उनका क्रम अन्तमें आता है। मेरे परमोदार प्रभुने हम वानरोंको यह सम्मान दिया। युवराज अङ्गद, वानरेन्द्र सुग्रीव, ऋक्षराज जाम्बवन्त, राक्षसाधिप विभीषण प्रभृत अयोध्यामें उपस्थित सब लङ्कासे साथ आये अन्तमें सत्कृत हुए। वस्त्र, आभरण, अकल्पनीय रत्न—सुर भी जिनकी स्पृहा करें, ऐसे उपहार प्राप्त हुए सबको।

सबसे अधिक सम्मान मुझे मिला था। मुझे सिंहासनके पादपीठके समीप बैठनेका स्थान प्राप्त हो गया था। सबसे महत्तम उपहार बिना कुछ कहे, बिना नामोल्लेख किये, बिना किसीकी दृष्टि आकर्षित किये, मेरे स्वामीने मुझे दे दिया। उन्होंने अपना दक्षिण पादारविन्द मेरी अञ्जलिमें स्थापित कर दिया था।

यह सब तो था; किन्तु अम्बाके असीम वात्सल्यको क्या कभी तुष्टि होती है? इस अवसरपर भी लगा उन्हें कि उनके वानरपुत्रको तो प्रभु विस्मृत ही हो गये। मैं चुपचाप प्रभुके श्रीचरणोंकी ओर ही देख रहा था। अम्बाने कब अपने कण्ठसे मुक्ताहार निकाला, मैंने नहीं देखा। अवश्य

उन्होंने करमें उसे लेकर प्रभुकी ओर देखा होगा। प्रभुको मैंने कहते सुना—'साम्राज्ञी यदि किसी स्नेह-भाजनको पुरस्कृत करना चाहती हैं तो संकोच करनेका कोई कारण नहीं है।'

मैं तो तब चौंका, जब अम्बाने वह महामूल्यवान अलभ्य हार मेरे कण्ठमें डाल दिया। मैं दो क्षण उन अत्युज्वल मुक्तामणिगणको मस्तक झुकाकर देखता रहा। मनमें आया—'अम्बाने इसे मेरे कण्ठमें डाला है। तो अवश्य इनमें कुछ विशेषता होगी।'

सृष्टिके सब पदार्थ पञ्चभूतात्मक हैं। मुक्ता हो, माणिक हो, हीरक हो या काष्ठ अथवा पाषाण—सृष्टिमें कहीं कुछ भी विशेषता नहीं है। सब पदार्थ सामान्य ही हैं। सब त्रिगुणात्मक, सब पञ्चभूत रचित। यहाँ केवल मेरे आराध्य इन सिंहासनासीन श्रीसीतारामका श्रीविग्रह और इनका नाम विशेष है। यही दो चिन्मय हैं। ये जहाँ हों, उसे वैशिष्ठ्य प्राप्त हो जाता है। मैंने कण्ठसे उस मालाको निकालकर ध्यान पूर्वक देखना प्रारम्भ किया कि उनमें यह विशेषता है अथवा नहीं।

मैं मालाकी एक-एक मुक्ताको घुमा-फिराकर देखनेमें लग गया। मुझे पता नहीं कि कौन किस दृष्टिसे मुझे देख रहा था। मुझे किसी मुक्तामें विशेषता—मैं जिसे विशेषता मानता हूँ, वह नहीं मिली। अब मनमें आया—'श्रीसीताराम सदा अन्तरमें रहते हैं। इनके भी भीतर यह दिव्य-छवि हो सकती है।'

मैंने मालाका एक मोती मुखमें लिया और दाँतोंसे फोड़ डाला। उसे हथेलीपर लेकर उलट-पुलटकर देखा; किन्तु उसमें कहीं न मेरे प्रभुका नाम था और न यह चिन्मय छवि। मैंने उन खण्डोंको वहीं भूमिपर डाल दिया। दूसरी मुक्ता मुखमें डाला। उसके टुकड़े भी मुझे देखनेपर व्यर्थ लगे। जैसे ही मैंने तीसरी मुक्ता मुखमें लेना चाहा, विभीषणजी बोल उठे—'पवनकुमार! आप इन देव-दुर्लभ रत्नोंको इस प्रकार क्यों नष्ट कर रहे हैं? आप नहीं जानते कि इनमें-से प्रत्येक कितना मूल्यवान है।'

'वही तो मैं भी इनमें देख रहा हूँ।' मैंने कह दिया—'सृष्टिमें केवल श्रीसीतारामकी यह झाँकी और इनका नाम ही मूल्यवान—महत्त्वशाली है। यह जहाँ न हों, वह तो व्यर्थ है। त्याज्य है। मुझे अब तक इन मोतियोंमें यह दिव्य-छवि अथवा राम-नाम नहीं मिला।'

'आपका इतना विशाल शरीर है, इसमें प्रभुकी छवि या नाम है ?' विभीषणजीके स्वरमें मुझे तो कोई व्यंग नहीं लगा । उनका पूछना स्वाभाविक था ।

'आपका प्रश्न उचित है। मैं विश्वास करता हूँ कि है।' मैंने अब माला भूमिमें डाल दी और उठकर खड़ा हो गया—'लेकिन मैंने भी कभी देखा नहीं। यह मेरा प्रमाद है। देखना चाहिए मुझे और आप भी देखें। यदि इस देहमें प्रभुकी छवि अथवा नाम नहीं है तो निश्चय व्यर्थ है यह। मैं क्षणभर भी इसे धारण नहीं करूँगा।'

मैंने अपने दोनों करके नख लगाये और वक्षका चर्म विदीर्ण कर दिया। मुझे संतोष हुआ कि मेरा विश्वास मिथ्या नहीं निकला। मेरे हृदयमें सिंहासनासीन श्रीसीतारामकी वही छवि थी जो बाहर सिंहासनपर। जो अंश दीखता था, उसके कण-कणमें राम-नाम अङ्कित था।

यह कोई अद्भुत बात तो थी नहीं। यह तो श्रीरघुनाथके प्रत्येक सेवककी ही स्थिति होगी। इससे उत्तम भी होनी सम्भवं है ; किन्तु लोग बहुत भावुक होते हैं। मेरे नामकी जयध्वनि करने लगे प्रभुके सम्मुख तो मैं संकोचसे बैठ गया।

मेरे दयाधाम स्वामीने मेरे वक्षपर अपना अमृतस्पन्दी कर फेरा और वहाँ व्रणका चिह्न भी नहीं रह गया। केवल थोड़े-से रक्त प्रवाहने वक्ष एवं उदरको आर्द्र कर दिया था। प्रभुने वह माला पुनः मेरे कण्ठमें डालते हुए कहा—'इसे पहिने रहो। तुम्हारे अङ्ग स्पर्शसे इसमें संस्कारिता आवे, यह विशेष बने, जानकीका यह मनोरथ पूर्ण होने दो।'

मैंने अम्बाकी ओर देखा। उनकी स्नेहमयी दृष्टि मुझपर ही थी। अतः मैंने वह उनका प्रसाद कण्ठाभरण बना लिया।

प्रभुने अभिषेकोत्सवके अनन्तर जब सब माण्डलीक महीपति तथा आगत अतिथियोंको विदा कर लिया, अन्तमें वानर यूथपोंको, जाम्बवन्तजी-को, विभीषणको भी विदा किया। श्रीरघुनाथका आग्रह टालनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? अन्यथा कोई भी उनके श्रीचरणोंसे पृथक् नहीं होना चाहता था।

युवराज अङ्गदका कातर भाव—वे किसी भी प्रकार अयोध्यामें रह जाना चाहते थे ; किन्तु वानरेन्द्र बालिने मरते समय जिन्हें प्रभुके करोंमें दिया था, प्रभुके ही आदेशसे जिन्हें श्रीलक्ष्मणने किष्किन्धाका युवराज बनाया था, उन्हें उनके राज्यसे, पदसे, स्वत्वसे वञ्चित करके अयोध्यामें रख लेना मर्यादा-पुरुषोतम स्वीकार कर नहीं सकते थे।

मुझे केवल वानरेन्द्र सुग्रीवसे स्वीकृति लेनी थी और वह सरलता-पूर्वक प्राप्त हो गयी। सुग्रीवका मैं क्रीतदास तो था नहीं, स्वेच्छासे उनका सचिव बना था। वे बाधा नहीं दे सकते थे। मेरे श्रीरघुनाथकी सेवामें रहनेको उन्होंने अपना सौभाग्य माना।

अयोध्यामें मैं किससे अनुमति लेता ? अम्बाका मैं अत्यन्त स्नेह-भाजन शिशु था और प्रभुसे पूछना उनके वात्सल्यपर अविश्वास करना था। मैं अयोध्याके राज-सदनमें रहने लगा। मुझे सर्वत्र अबाध प्रवेश प्राप्त हो गया। तीनों राजमाताओंकी अपार अनुकम्पा थी मुझपर और अम्बाकी तीनों अनुजाएं भी मुझे सुत जैसा स्नेह ही देती थीं।

अम्बाके असीम वात्सल्यने मुझे अत्यन्त धृष्ट बना दिया था। मैं चहे जैसे अटपटे प्रश्न उनसे असमयमें भी कर लेता था ; किन्तु उन स्नेहमयीने मुझे कभी तनिक भी झिड़का नहीं। ऐसे ही एक दिन मैं प्रातःकाल उनके समीप पहुँचकर बोला—'अम्ब ! आप ध्यान नहीं रखती हो कि यह आपका वानर पुत्र प्रभातमें ही क्षुधातुर होता है !'

अम्बाने कहा—'तनिक प्रतीक्षा कर लो। मैं स्नान करके तुम्हें मोदक देती हूँ।'

मैं स्वभावानुसार बैठकर 'राम राम राम' जप करता प्रतीक्षा करने लगा। अम्बाने स्नान किया। वे आर्द्रकेश स्नानागारसे निकलीं और सेविकाके करोंसे रत्नकी डिबिया हाथमें लेकर उससे अपने भालपर सिन्दूर-बिन्दु लगाया। मैं यह देख रहा था। अतः मैंने पूछा—'आपने सिन्दूर क्यों लगाया ?'

यह प्रश्न मुझे बहुत पहिले पूछना था। अम्बाकी अनुजाएं भी ऐसा ही बिन्दु भालपर लगाती हैं। अधिकांश कुलवधुएं लगाती हैं ; किन्तु तीनों माताएँ तो नहीं लगातीं ! क्यों लगाती हैं अधिकतर मानव स्त्रियाँ सिन्दूर-

बिन्दु ? मेरी जननी भी लगाया करती थीं। मुझे लगा कि मैं भी कितना मूर्ख हूँ कि अब तक मैंने किसीसे इसका कारण नहीं पूछा।

'इसके लगानेसे तुम्हारे स्वामीकी आयु-वृद्धि होती है।' अम्बाने हँसकर कहा और मुझे मोदकोंसे भरा रत्नथाल दे दिया।

'महिलाएँ उत्तम हैं। वे सब मेरे स्वामीकी आयुवृद्धिके लिए सिन्दूर लगाती हैं!' मैं मोदक खाते हुए सोचने लगा था—'पुरुषोंको अपना ही प्रपञ्च पर्याप्त रहता है। इसीसे भाइयोंमें भी किसीने ध्यान नहीं दिया। अथवा सम्भव है—सब भाई, स्वयं प्रभु और सभी पुरुष, जो भालपर तिलक करते हैं, उसका यही उद्देश्य हो।'

मैंने अपना प्रातराश समाप्त किया। सुगन्धित तेलका पूरा पात्र मैंने अपने सिरपर डालकर पूरे शरीरमें तेल लगाया और तब सर्वाङ्ग सिन्दूरसे अरुण कर लिया। मेरे प्रभुके समीप जानेका समय हो गया था। राजसभामें जब मैं आपादमस्तक सिन्दूरारुण पहुँचा, सभी मुझे देखकर हँसने लगे। प्रभुने भी सहास्य पूछा—'पवनकुमार! आज तुमने यह वेश क्यों धारण किया ?'

मैंने कहा—'अम्बा कहती हैं कि उनके तनिक-से भालपर सिन्दूर-बिन्दु धारणसे आपकी आयुवृद्धि होती है। अतः मैंने पूरे शरीरमें सिन्दूर लगाया है।'

मर्यादा-पुरुषोत्तमने गम्भीर होकर घोषणा कर दी—'आज मङ्गलवार है—मेरे आविर्भावका दिन। इस दिन जो हनुमानजीको तैल-सिन्दूर चढ़ावेगा, वह मेरा प्रीतिपात्र होगा। उसकी कामना पूर्ण होगी।'

× × ×

'यह बात कभी मेरी समझमें नहीं आयी कि मेरे उपस्थित रहते श्रीरघुनाथकी सेवा और किसीको भी करनी चाहिए। मेरा यह आवेदन मेरे स्वामीके किसी भाईने स्वीकार नहीं किया कि उनकी सेवाका भी अवसर मुझे मिले। मेरे लिए सब सेव्य; किन्तु पता नहीं क्यों, सब संकोच करते थे मुझसे सेवा लेनेमें। माताओंकी सेवा करनेमें मैं असमर्थ था; क्योंकि महिलाओंकी सेवा करना मुझे आता नहीं। प्रभुकी सेवासे ही मुझे सन्तोष करना पड़ा।

पता नहीं क्या हुआ, मैं एक दिन सरयू-स्नान करके आया और प्रभुके समीप जाने लगा तो शत्रुघ्नकुमारने मुझे रोक दिया—'पवनकुमार!

महाराज्ञीकी अनुमतिसे प्रभुकी प्रत्येक सेवाका दायित्व उनके सेवकोंमें विभाजित कर दिया गया है। प्रभुने स्वीकृति देकर इस योजनापर हस्ताक्षर कर दिये हैं। आप सब दूसरोंकी सेवामें बाधक मत बनें !'

'प्रभुने जो स्वीकार कर लिया है, वह इस सेवकको शिरोधार्य है।' मैं दूसरा कुछ कह ही नहीं सकता था—'सेवा-विभाजनकी यह सूची प्रभुके सम्मुख मुझे भी श्रवण करा दें तो मुझे सुविधा रहेगी।'

मुझे जब प्रभुके सम्मुख सूची सुनायी गयी तो लगा कि इस योजनाके पीछे कोई षड्यन्त्र है। पूरी सूचीमें मेरा कहीं नाम नहीं था। मुझे अपने स्वामीकी सभी सेवाओंसे वञ्चित कर दिया गया था। मैंने अत्यन्त कातर होकर मन ही मन अपने एकमात्र आधार श्रीरघुनाथका स्मरण किया। प्रतिभाकी देवी तो प्रभुके पादारविन्द स्मरणकी सदा संगिनी हैं। मुझे प्रकाश प्राप्त होगया।

मैंने प्रार्थना की— 'जो सेवा इस सूचीसे छूट गयी हो, वह मेरी।'

'वह सेवा आपकी।' भरतजीने सोत्साह कहा।

'प्रभुने जब सेवाओंपर स्वीकृति दी है, इसपर भी वह स्वीकृति आवश्यक है।' मैंने अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की।

जब श्रीरघुनाथने स्वीकर कर लिया, तब मैंने कहा—'प्रभुको जब जम्हाई आवे, तब चुटकी बजानेकी सेवा मेरी।'

मुझे लगा कि जो भी वहाँ थे, सबको आश्चर्य हुआ। किसीने इस सेवाकी ओर ध्यान नहीं दिया था। मुझे इस सेवाके निमित्तसे वह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि मैं प्रभुके सम्मुख ही बैठनेका अधिकार पागया। उनके श्रीमुखकी ओर निरन्तर देखते रहना मेरा कर्तव्य होगया।

मुझे बहुत आनन्द आया। सम्पूर्ण दिवस मुझे आहार तथा जल भी अम्बाको वहीं देना पड़ा। प्रभु अधिक प्रफुल्ल, सस्मित मुझे देखते रहे। उन्होंने भी आज अन्य किसीकी ओर दृष्टिपात नहीं किया। किसीसे कुछ कहा भी तो बिना उसकी ओर देखे।

रात्रिके प्रथम प्रहर तक कोई कठिनाई नहीं हुई। द्वितीय प्रहरमें जब प्रभु अन्तःपुरमें अपने शयनागारमें जाने लगे, द्वार-रक्षिकाने मुझे रोक दिया—'आप कक्षमें नहीं जा सकते !'

'क्यों ?' मैंने उसे डाँटा—'प्रभुको रात्रिमें जम्हाई नहीं आवेगी, इसका कोई भरोसा है ?'

द्वार-रक्षिका मुझे रोक नहीं सकती थी ; किन्तु अम्बाने द्वारपर आकर बाधा दी—'हनुमान ! इस कक्षमें स्वामीके समीप केवल मैं रात्रिको रह सकती हूँ। तुम इसमें प्रवेशका दुराग्रह करोगे तो मुझे तथा तुम्हारे स्वामीको भी बहुत असुविधा होगी।'

'अम्बाकी जैसी आज्ञा।' मैं कक्ष-द्वारसे लौट आया ; किन्तु सोचने लगा कि यदि रात्रिमें श्रीरघुनाथको जम्हाई आ जाय तो ? मैंने एक निश्चय कर लिया। मैं राजसदनके ऊपर चला गया शयन कक्षके कलशके समीप और वहाँ बैठकर चुटकी बजाते हुए 'राम राम राम' की ध्वनिमें मग्न हो गया। अब प्रभुको कभी भी जम्हाई आवे, मैं कर्तव्य-च्युत नहीं होने वाला था। रात्रि जागरण मेरे लिए कोई कठिन काम नहीं था।

पता नहीं क्यों, नीचे राजसदनमें थोड़ी ही देरमें दासियाँ दौड़ने लगीं। माताएँ तथा रघुनाथके तीनों अनुज अपने सदनोंसे आये। अन्तमें महर्षि वशिष्ठको शत्रुघ्नकुमार ले आये। मैंने यह सब देख तो लिया ; किन्तु अपनी चुटकी बजानेमें लगा रहा। सबसे पीछे शत्रुघ्नकुमारने मुझे पुकारा—पवन-नन्दन ! आप कहाँ हो ? गुरुदेव आपको स्मरण कर रहे हैं !'

मैं चुटकी बजाता हुआ ही नीचे उतरा। महर्षिके पदोंमें प्रणाम करते समय मैंने चुटकी बन्द की। प्रभु सम्मुख खड़े थे, अतः मुझे चुटकी बजाते रहनेकी आवश्यकता नहीं थी। अब महर्षिने प्रभुसे पूछा—'वत्स ! क्या हुआ था तुम्हें ?'

'कुछ भी तो नहीं।' श्रीरघुनाथने कहा।

'कुछ भी नहीं ?' अम्बाने आश्चर्यसे कहा—'आपने अपना श्रीमुख खोल लिया था। किसीके भी किसी प्रश्नका उत्तर नहीं दे रहे थे। मैं डर गयी। माताएँ व्याकुल हो गयीं। गुरुदेवको विवश अर्धरात्रिमें आह्वान करना पड़ा और आपको कुछ हुआ ही नहीं था ?'

अब मैं समझ गया कि राजसदनमें इतनी दौड़-धूप क्यों हो रही थी। प्रभुने कहा—'हनुमान चुटकी बजा रहे थे, अतः मुझे जम्हाई आनी चाहिए थी। इनकी चुटकी बन्द नहीं होती थी तो मेरा जम्हाईमें खुला

मुख कैसे बन्द हो जाता ? जम्हाई लेते समय कोई कुछ बोल कैसे सकता है।'

मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा। नेत्रोंसे अविरल प्रवाह फूट चला। मैं अपने करुणामयके चरणोंपर गिर पड़ा।

महर्षि वशिष्ठने हँसकर भरतजीकी ओर साभिप्राय देखा। श्रीभरतलालने संकोचसे सिर झुका लिया। महर्षि जैसे ही आश्रम जानेके लिए कक्षसे निकले, अम्बाने यहा—'हनुमान। अब तुम्हें चुटकी नहीं बजानी है। तुम जैसे पहिले सेवा करते थे, वैसे ही करो। यह सेवाकी सूची मैं फाड़ रही हूँ।

× × ×

मुझे स्मरण नहीं है कि उस दिन कोई पर्व था या नहीं। अयोध्यामें प्रतिदिन पर्व पड़ते ही रहते थे। अम्बा तो अपने इस वानर-पुत्रकी वर्षगाँठ बड़े उत्साहसे मनाया करती थीं। उस दिन कारण कुछ भी हो, अम्बाने स्वयं मुझे भोजन करानेके लिए रन्धन किया। वे प्रभात से लगी रहीं और मध्याह्न तक रन्धनशालामें रहीं। इतने पदार्थ बनाये उन्होंने कि उनकी संख्या कौन करे।

स्वयं अम्बाने मुझे आसन देकर मेरे भालपर कुंकुम तिलक किया और रत्नथाल सम्मुख रखकर परसना प्रारम्भ किया। मैं वानर हूँ। व्यञ्जनोंका स्वाद जिह्वा-रसिक जानते होंगे। मुझे तो उन सबमें अम्बाके स्नेहका, श्रमका, अमृतस्पर्शी करोंका अतिलौकिक स्वाद प्राप्त हो रहा था। मुझे लवण, तिक्त, मधुर, कटु, कषाय, अम्लका पता नहीं। मुझे पता है कि उन व्यञ्जनोंको निखिल ब्रह्माण्ड विधात्री मेरी अम्बाने प्रस्तुत किया था। उनके स्वादकी समता सुधामें सम्भव नहीं।

थालमें जो भी आता था, मैं दोनों करोंसे उठाकर—समेटकर एक ही बारमें मुखमें डाल लेता था। ऐसा रस—अम्बाके करोंसे प्रस्तुत आहार क्या बार-बार मिलना था। मैं यदि अत्यन्त लोलुप हो उठा था उस दिन—आहार लोलुप तो आश्चर्य क्या। ऐसा आहार प्राप्त होनेपर कौन लोलुप नहीं होगा।

'हनुमान ! तुमने तो मुझे बड़ी उलझनमें डाल दिया था।' पीछे अम्बाने कहा—तुम तो भोजन करने बैठे तो उठनेका नाम ही नहीं लेते थे। मैंने जो कुछ भी बनाया था, सब तुमने समाप्त कर दिया। मैं घबड़ायी कि अब क्या करूँ।'

'आपने संकल्प किया होता तो आपकी रसोईका अन्न अनन्त होजाता !' मैंने हँसते-हँसते कहा—'मुझे तो पता ही नहीं चला कि मैं कितनी देर बैठा रहा। आपने मुझे आज भरपेट खिलाया।'

'यहाँ अयोध्यामें कोई चमत्कार प्रकट करता है।' अम्बाने कहा—'मैंने तो घबड़ाकर तुम्हारे स्वामीका स्मरण किया। वे मध्याह्न सन्ध्या करके आरहे थे। मेरी स्थिति उन्होंने समझ ली। तुम्हारे पीछे खड़े होकर तुम्हारे मस्तकके पिछले भागपर अनामिकासे उन्होंने पञ्चाक्षर मन्त्र लिखा। तब कहीं तुमने तृप्तिकी डकार ली और हाथ रोका।'

'अच्छा !' अब मैं आजकी अपनी तृप्तिका रहस्य समझ सका। मैं जिनका अंश हूँ, उन महेश्वरका महामन्त्र मेरे मस्तकपर लिख दिया गया तो अंशी ही सन्तुष्ट होगये। अब उनका अंश अतृप्त कैसे रह सकता था।

× × ×

अयोध्यामें आनन्दके वे दिन—आनन्दके युग भी क्षणोंके समान व्यतीत होते हैं। अम्बाका अपार वात्सल्य, माताओंका परमस्नेह, प्रभुकी पराकाष्ठाहीन अनुकम्पा—सभी मुझपर प्रसन्न थे। सब मुझसे स्नेह करते थे। राज-सभामें, पुरीमें, अन्तःपुरमें सर्वत्र इस वानरको स्नेह, सम्मान प्राप्त था। प्रतिदिन नूतन महोत्सव—अद्भुत उल्लासपूर्ण थे वे दिन।

—×—

४०—आराध्यसे युद्ध

देवर्षि नारद श्रीहरिके मूर्तिमान मन हैं। मेरे लीलामय स्वामीको ही कोई अद्‌भुत लीला करनी होती है तो वे देवर्षिको निमित्त बना लेते हैं। काशीनरेश अयोध्या आ रहे थे प्रभुका दर्शन करने। मार्गमें देवर्षि मिल गये। नरेशने प्रणिपात किया तो देवर्षिने पूछ लिया—'कहाँ जा रहे हो ?'

नरेशने निवेदन किया—'अपने सर्वेश्वरेश्वर चक्रवर्ती सम्राट्‌का दर्शन करने अयोध्या।'

'एक काम करोगे मेरे कहनेसे ?' कुतूहली नारदजीको कौतुक सूझ गया। मेरे लीलामय प्रभुको अपने नामका प्रताप प्रकट करना था।

काशी-नरेशके स्थानपर कोई भी होता तो क्या वह देवर्षिका अनुरोध अस्वीकार करता ? नरेशने सिर झुकाकर कहा—'आपकी आज्ञा-पालनका सुअवसर सुरोंके लिए भी सौभाग्य है।'

'अयोध्याकी राजसभामें विश्वामित्रजी हों तो उनको प्रमाण मत करना। उनकी उपेक्षा कर देना।' देवर्षि आदेश देकर चले गये।

नरेशने पूछा भी था—'यह तो अनुचित है। ऐसा आदेश क्यों ?'

देवर्षि कहाँ कहीं रुका करते हैं ? उन्होंने जाते-जाते कह दिया—'चिन्ता मत करो ! परिणाम परम मङ्गल होगा।'

काशीनरेश अयोध्याकी राजसभामें पहुँचे तो महर्षि विश्वामित्र रघुकुल गुरुके समीप ही विराजमान थे। अब कोई ब्रह्मर्षि वशिष्ठका चरण-वन्दन करे, दूसरे सब ऋषि-मुनियोंको प्रणाम करे ; किन्तु वहीं बैठे एककी उपेक्षा कर दे तो जिसकी उपेक्षा होगी, उसको अपमान-बोध तो होगा ही। विशेषतः यह अपमान-बोध तब अधिक होता है—जब सन्देहका कारण होता है।

महर्षि वशिष्ठको प्रणाम न किया गया होता तो उन्हें अपमान-बोध न होता ; किन्तु विश्वामित्रजीको लगा होगा कि काशिराजने उनके उपार्जित

ब्रह्मर्षिपदकी अवज्ञा की है। उन्हें क्षत्रिय मानकर ही उसने प्रणाम नहीं किया।

'राम ! तुम्हारे सम्मुख ही तुम्हारे मण्डलाधिप मेरी अवज्ञा करने लगे हैं !' महर्षि विश्वामित्रने क्रोध पूर्वक अयोध्यानाथसे कहा।

'किसने ऐसा दुस्साहस किया ?' अन्ततः महर्षि श्रीरघुनाथके शस्त्रगुरु थे। उनके सम्मानकी सुरक्षा सुयोग्य शिष्यको करना ही था—'कब यह अपकर्म हुआ ?'

'अभी इसी सभामें काशिराज मेरी उपेक्षा कर गया है।' विश्वामित्रजीने आक्रोश प्रकट किया—'उसे क्षमा किया जा सकता था यदि वह सब ब्राह्मणोंका वन्दन न करता; किन्तु अकेलेकी उपेक्षा तो जानबूझ कर की गयी अवज्ञा है।'

'यह तो मेरा तिरस्कार है। शासनकी अवमानना है।' श्रीरघुनाथने त्रोणसे तीन बाण निकाले—'इन शरोंसे आज सन्ध्यासे पूर्व उसका वध करके तब राम जल ग्रहण करेगा।'

श्रीरघुनाथके त्रोणमें केवल पाँच बाण रहते हैं। तीन उन्होंने निकाल कर पृथक् रख दिये, इसका बहुत बड़ा अर्थ था। सम्राट्की—श्रीरामकी प्रतिज्ञाका समाचार पुरीमें तत्काल फैल गया।

सामन्त गण, मण्डलाधिप गण सामान्यतः सम्राट्को उपहार अर्पित करके तत्काल राजसभासे निकल जाते थे; क्योंकि अयोध्याके सम्राट्के श्रीचरणोंमें प्रणत होने देश-देशान्तरके नरपति ही नहीं, देवता भी आते रहते थे। काशिराज भी इसी नियमके अनुसार सम्राट्का पादाभिवादन करके अतिथि-गृह चले गये थे।

सम्राट्की प्रतिज्ञा अतिथि-गृहमें उनके श्रवणोंमें पहुँची। सब सशङ्क उन्हें देखने लगे। वे बेचारे व्याकुल हुए—'यह क्या हो गया ? अब कौन शरण देगा ?'

भला देवर्षिका अन्वेषण वे कहाँ करते ? उन नित्य परिव्राजकका कोई निश्चित पता कहाँ है। अतः प्राण ही जाने हैं तो सरयू तटपर शरीर छूटे, यह सोचकर काशीनरेश अतिथिशालासे निकले ही थे कि देवर्षि नारद उनके सामने पथमें प्रकट हो गये।

'श्रीमन्नारायण नारायण नारायण !'

वीणाकी ध्वनि श्रवणोंमें पड़ी। राजाने देखा और देवर्षिके चरणोंपर गिरकर फूटकर रो उठा--'मैंने तो स्वप्नमें भी आपका कोई अपराध नहीं किया था .... ।'

बड़ी अद्‌भुत गति है संत-महापुरुषोंकी। कब इनका हृदय नवनीत सुकुमार हो जायगा और कब ये नितान्त निष्ठुर बन जायँगे, कहा नहीं जा सकता। देवर्षिने अत्यन्त तटस्थकी भाँति कह दिया—'राजन् ! तुम अविमुक्त धामके अधिपति हो। सदाशिवके सेवकको संसारमें ही रहना शोभा नहीं देता। अतः श्रीरामके शायकसे मर कर तुम मुक्त हो जाओगे। तुम्हारा इसमें परम मङ्गल है।'

'मैंने आपके आदेशका पालन किया है। अब आप मेरी प्राण-रक्षा करें !' राजाको इस समय परम मङ्गलकी पड़ी नहीं थी। वह अत्यन्त आर्त हो रहा था।

'अच्छा !' तब तुम मेरी वीणापर बैठो।' देवर्षिने उसे अपनी वीणापर बैठाया और कुछ क्षणोंमें काञ्चन गिरिपर ले जाकर उतार दिया। मार्गमें ही समझा दिया था—'देवी अञ्जनाके चरण पकड़ लेना और जब तक वे वचन न दे दें, अपना कष्ट कहना मत। एकमात्र वही तुम्हारी रक्षा करा सकती हैं।'

'त्राहि माम् ! त्राहि माम् ! अम्ब त्राहि माम् !' राजाने दौड़कर मेरी जननीके चरण पकड़ लिए। देवर्षि चले गये थे।

स्वभावसे अत्यन्त दयामयी हैं मेरी जननी। किसीका भी दुःख उनसे देखा नहीं जाता। उन्होंने राजासे कोई परिचय पूछे बिना तत्काल कहा—'उठो वत्स ! तुम्हें कोई भय नहीं है। यहाँ तुम्हें कोई कष्ट देनेका दुस्साहस नहीं करेगा।'

'अम्ब ! महाभय उपस्थित है। प्राण-सङ्कटमें अन्यत्र अलब्ध-शरण यह आर्त आपकी चरण-शरण आया !' काशिराजने जननीके चरण नहीं छोड़े।

'तुम्हें कोई भय अब नहीं है।' मेरी माँने आश्वासन दिया।

राजाने आकुल नेत्र पूछा—'आप वचन देती हैं अम्ब ?'

माँने कह दिया—'मैं वचन देती हूँ। अञ्जनाने तुम्हें अभय दिया। स्वयं महाकाल भी तुम्हारा अहित नहीं कर सकेंगे।'

लेकिन जब उठकर नरेशने अपने भयका विवरण दिया, माँ स्तब्ध रह गयी—'श्रीरामने प्रतिज्ञा की है ?'

अब कुछ हो नहीं सकता था। माँ वचन दे चुकी थी। उसने शान्त गम्भीर होकर कहा—'उन सर्वेश्वरेश्वरका प्रण—प्रयत्न करूँगी।'

मुझे यह कुछ पता नहीं था। यह विवरण तो मुझे कुछ काशि-नरेशसे और कुछ अपनी जननीसे प्राप्त हुआ है। मैंने तो उस दिन प्रभातमें प्रभुसे प्रार्थना की थी—'जन्मदात्रीके दर्शन किये बहुत दिन बीत गये। यदि आज्ञा हो तो उनको प्रणाम कर आऊँ!'

'अवश्य।' प्रभुने आज्ञा देते कहा—'उनके श्रीचरणोंमें एक बार रामकी ओरसे भी मस्तक रखना। कहना कि यह भी उनका आशीर्वादाकांक्षी पुत्र है।'

अयोध्यामें मेरी अनुपस्थितिके कारण देवर्षिको यह अटपटी खटपटका अवसर मिल गया था। मैं यदि सुग्रीवसे मिलने मध्यमें किष्किन्धा न चला गया होता, काशिनरेशको अपनी जननीके समीप ही मिलता। मैंने माँके चरणोंमें मस्तक रखा तो सदाके समान उन्होंने उठाकर हृदयसे लगा लिया; किन्तु मैंने अनुमान कर लिया कि माँ आज कुछ गम्भीर, कुछ सचिन्त हैं। उन्होंने आशीर्वाद देनेके स्थानपर कहा—'मैं तुम्हारा ही स्मरण कर रही थी। मैं बहुत चिन्तित थी। तुम समयपर आये।'

'आज्ञा ?' जीवनमें पहिला अवसर था जब जननीने मुझे कोई आदेश देनेका उपक्रम किया था।

'बड़ा कठिन कार्य है!' माँ ने उसी गाम्भीर्यसे कहा।

'आप आज्ञा तो दें!' मैंने आग्रह किया। ऐसा कठिन क्या होगा जो मेरी जननी मुझसे कहनेमें हिचकें ?

'वत्स! बहुत कठिन कार्य है, अतः कहनेमें झिझक हो रही है।' अब भी माँने नहीं कहा।

मुझे आवेश आया। जो जननी मुझे दशग्रीवके न मार देनेपर झिड़क चुकी हैं, वे भी मेरे लिए कुछ इतना कठिन कार्य मानती हैं कि कहनेमें झिझकें ? मैंने प्रतिज्ञा की—'श्रीरघनाथके चरणोंकी शपथ करके कहता हूँ कि कार्य चाहे जितना कठिन हो, पूर्ण करूँगा।'

'तुमसे ऐसी ही आशा थी।' जननीने मेरी पीठपर कर फेरा—'इनकी प्राण-रक्षा करना है आज सूर्यास्त पर्यन्त।'

जब माँने काशिराजकी ओर संकेत करके विवरण दिया, मैं स्तब्ध रह गया। मैंने तो अब तक उनकी उपस्थितिपर ध्यान ही नहीं दिया। मेरे मुखसे निकला—'मेरे स्वामीकी प्रतिज्ञा—माँ ! तुम जानती हो.... ...।'

'जानती तो हूँ, किन्तु इनको वचन दे चुकी हूँ। मेरे कोई और पुत्र नहीं है और तुमने भी मुझे शपथ पूर्वक वचन दिया है।' माँका स्वर खिन्न हो उठा।

मैं माँको खिन्न नहीं देख सकता था। मैंने कहा—'अब मुझे अनुमति दें ! समय कम है। शक्ति भर प्रयत्न करूँगा।'

'सफल काम हो वत्स!' मैंने माँके पदोंपर मस्तक रखा तो उन्होंने आशीर्वाद दिया। मैंने पुनः मस्तक रखकर प्रभुका प्रणाम निवेदन किया तो हँसकर बोलीं—'श्रीरामसे मेरा आशीर्वाद कहना कि उनके सेवककी सदा विजय होती रहेगी।'

काशीनरेशको मैंने साथ लिया। अयोध्या पहुँचकर सरयू पुलिनपर उतार कर कह दिया—'कटि पर्यन्त सरयू जलमें खड़े रह कर अखण्ड राम नाम रटते रहो। कुछ भी हो जाय, जलसे मत निकलना और नाम-ध्वनि मत बन्द करना।'

मैं सीधे प्रभुके समीप पहुँचा। उनके पाद-पद्मोंमें प्रणाम करके अञ्जलि बाँधकर बैठा तो प्रभुने पूछा—'इतना शीघ्र आगये ?'

मैंने प्रार्थना की—'आज एक याचना करना चाहता हूँ।'

'पवनकुमार ! तुम्हारे लिए रामके समीप कुछ भी अदेय नहीं है।' प्रभुने प्रसन्न होकर कहा—'तुम क्यों संकोच करते हो ? राम तो सदाके लिए तुम्हारा ऋणी है। तुम्हें कुछ भी देकर मुझे अत्यन्त आनन्द होगा, यह तुम जानते हो।'

एक बार मनमें आया, कह दूँ—'काशिराजको अभयदान करदें।' किन्तु अनुचित थी यह प्रार्थना। मर्यादा-पुरुषोत्तमको उनका वचन-भंग

करनेको कहना सेवकके लिए सर्वथा ही अशोभनीय बात थी। मैंने प्रार्थना की—'मैं आपके नाम-जापकका रक्षक होकर रहना चाहता हूँ। आपके नाम जापकका कभी कोई कैसे भी अनिष्ट न कर सके !'

'तुम अबसे सदाके लिए मेरे नाम-जापकके रक्षक हुए।' श्रीरघुनाथने मुझे उठाकर हृदयसे लगाकर वरदान दिया—'मेरा नाम तो मेरा ही स्वरूप है। उसका जप करने वालेपर आपत्ति आ नहीं सकती। उसकी सब ओरसे तुम रक्षा करते रहो। उसपर प्रयुक्त ब्रह्मास्त्र, पाशुपत तथा मेरे वाण जैसे अमोघास्त्र भी उसका अनिष्ट करनेमें असमर्थ रहेंगे !'

मैं निश्चिन्त होगया। मेरा कार्य तो पूर्ण होगया। अब तो केवल मुझे दृश्य निमित्त मात्र बनना था। प्रभुको पुनः प्रणाम करके सरयू जलमें खड़े अविराम राम-नाम रटते काशीनरेशके समीप मैं गदापाणि जा खड़ा हुआ। मैंने पुनः राजाको सावधान किया—'कोई आवे, कुछ दीखे—किसी ओर ध्यान मत दो। मरना न हो तो राम-नामकी रटन रोकना मत !'

अयोध्यामें यह चर्चा भी शीघ्र फैल गयी कि 'जिस काशीनरेशके संहारकी सायंकालसे पूर्व श्रीअयोध्यानाथने प्रतिज्ञा करली है, उसकी रक्षाके लिए स्वयं पवनपुत्र गदापाणि उसके पार्श्वमें सरयू जलमें खड़े हैं।'

सरयू किनारे भीड़ बढ़ने लगी। अचानक प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित वाण आता दृष्टि पड़ा। मैं अपने स्वामीके शरोंको पहिचानता हूँ। राजाने कातर नेत्रोंसे मेरी ओर देखा। मैंने उसे नाम लेते रहनेका संकेत करके वाणको अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया। श्रीरघुनाथके शर जड़ तो नहीं हैं कि सन्धानकर्त्ताके करसे छूटनेपर लक्ष्यपर लगेंगे ही। उस चिन्मय-कालाधिदैवत बाणने आकर राजाके साथ मेरी भी परिक्रमा की और लौट गया। केवल कुछ क्षण गगनमें प्रतीक्षा की थी उसने।

एक घटी भी व्यतीत नहीं हुई कि दूसरा वाण आता दृष्टि पड़ा। काशीनरेशने आकुल होकर उच्चस्वरसे ध्वनि प्रारम्भ की—

'श्रीराम जयराम जय जयराम ! सीताराम सीताराम सीताराम ॥'

मैंने प्रसन्न होकर नरेशकी पीठ थपथपा दी। ऐसा सुयोग्य शिष्य मिले तो उसकी रक्षा करनेमें आनन्द ही आवेगा। इस वाणने भी हम

दोनोंकी प्रदक्षिणकी—प्रदक्षिणा ही करता रहा और लौटा। श्रीलक्ष्मणलालने पीछे बतलाया—'प्रभुने प्रथम शर-सन्धान किया तो मैं समीप ही था। मैंने समझा कि काशिनरेश समाप्त हुआ। मुझे भी उसपर रोष था। उसने हमारे शस्त्र-गुरुकी अवमानना की थी; किन्तु श्रीरघुनाथका अमोघ शर लौटा और अस्वाभाविक रूपसे उनके श्रीचरणोंका स्पर्श करके त्रोण-प्रविष्ट हुआ तब त्रोणमें-से स्वर उठा—"मैं आपके नाम-जापककी केवल परिक्रमा कर सकता था। उसका अनिष्ट करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। वहाँ तो गदापाणि आञ्जनेय भी उपस्थित हैं!"

'मैंने अग्रजकी ओर देखा।' श्रीलक्ष्मणलालने कहा—'मुझे हँसी आरही थी। पवननन्दन! तुमने जब उस हमारे मण्डलाधिपको आश्रय दे दिया तो हो चुका। अब वह प्रभुके नामका आश्रय न भी लेता तो उसका क्या अनिष्ट होना था? मैं अपने भक्तवत्सल अग्रजका स्वभाव भली प्रकार जानता हूँ। उनका सत्य, उनका श्रीविग्रह, उनकी मर्यादा, कुछ भी उन्हें अपने जनके सम्मुख स्मरण नहीं रहती। मुझे आश्चर्य यही था कि उन्होंने दूसरा शर-सन्धान भी किया। यदि तुम्हारे तनिक भी अनिष्टकी आशङ्का होती तो श्रीअयोध्यानाथ यह भी नहीं कर पाते।'

श्री लक्ष्मणलालने हँसते हुए कहा था—'दूसरा शर जब लौटकर त्रोण-प्रविष्ट हुआ, वहाँसे उपालम्भका स्वर आया—"आपने स्वय तो हनुमानको वरदान दे दिया है! अब आप क्यों हमारी अमोघता निष्फल कर रहे हैं।'

सरयूतटसे जब दूसरा शर भी परिक्रमा करके लौट गया, काशिराज मुझसे सटकर, लगभग मेरे अङ्कमें ही खड़ा होकर रटने लगा—

'श्रीराम जयराम जय जयराम। सीताराम सीताराम श्रीहनुमान!"

दूसरे वाणके विफल लौट जानेपर मेरे स्वामी स्वयं अपने कोविदारध्वज रथपर बैठ सरयूतट पधारे। उनके साथ उनके तीनों अनुज अपने रथोंमें बैठे आये थे। प्रभुने धनुष ज्यासज्ज कर रखा था; किन्तु उसपर वाण चढ़ाया नहीं था।

लगभग साथ ही महर्षि विश्वामित्र भी श्रीरघुकुल-गुरु महर्षि वशिष्ठके साथ पधारे। मैंने और काशीनरेशने भी मस्तक झुकाकर सबको वहींसे वन्दन किया। जलमें-से बाहर आकर पादस्पर्श करना इस समय सम्भव नहीं था।

'हनुमान ! श्रीरामका प्रण पूर्ण होजाने दो ! महर्षि वशिष्ठने सर्वथा जलके समीप आकर मुझसे कहा—'रामके शरसे शरीर नष्ट होनेपर यह भूपति तो भव-बन्धनसे मुक्त हो जायगा। स्वामीके सम्मुख तुम्हारा इस प्रकार गदापाणि खड़े होना अशोभन है।'

'मैं तो आपके सर्वभौम शिष्यका तुच्छ सेवक हूँ।' मैंने अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की—'प्रभुने मुझे मध्याह्नके समय अपने नाम-जापककी रक्षाका आदेश दिया, इसलिए यहाँ खड़ा हूँ। आप आदेश दें कि मैं स्वामीकी उस आज्ञाका इस समय पालन न करूँ तो मैं अभी आपके श्रीचरणोंमें आरहा हूँ।'

मैंने अनुभव किया कि मेरे अङ्कसे सटा नरेशका शरीर भय कम्पित होरहा है। मैंने महर्षिसे कहा—'किन्तु आप पूछ लें श्रीराघवेन्द्रसे कि मेरे यहाँसे हट जानेपर भी क्या उनका वह वरदान जो मुझे आज ही प्राप्त हुआ है, व्यर्थ होगा ? उनका शर फिर उनके नाम-जापकका संहार करनेमें समर्थ होगा ? इससे राम-नामकी महिमा-प्रभाव मिटेगा तो नहीं ?'

'तुम ज्ञानियोंमें अग्रगण्य हो हनुमान ! तुमसे प्रमाद सम्भव नहीं।' महर्षि गम्भीर होगये। दो क्षण शान्त सोचते रहे। फिर काशिराजसे बोले—'वत्स ! तुम ब्रह्मर्षि विश्वामित्रके चरण पकड़कर क्षमा माँगलो।'

श्रीरघुकुल-गुरुके साथ ही महर्षि कौशिक भी सरयूजलके समीप आ गये थे। मैंने राजाकी पीठका स्पर्श करके संकेत किया। वह एक पद बढ़कर जलमें ही इस प्रकार गिरा कि उसका मस्तक महर्षिके श्रीचरणोंपर पड़ा। उसने पुकार की—'अपराध क्षमा करें प्रभु !'

'रामभद्र ! अपना तृतीय वाण त्रोणमें रखलो।' महर्षि विश्वामित्रने आदेश दिया। वे स्वयं इस परिस्थितिको देखकर खिन्न थे। कोई मार्ग समाधानका पाना चाहते थे। उन्होंने कहा—'इसने अपराधका मार्जन कर लिया। क्षमा किया मैंने इसे।'

श्रीरघुनाथने वाण त्रोण में रखा। काशी-नरेशको अपने चरणोंमें प्रणत देखकर उठाया। मुझे सुप्रसन्न आशीर्वाद दिया—'पवननन्दन ! तुम इसी प्रकार मेरे नाम-जापकके सदा रक्षक रहो।'

—×—

४१-तत्त्वोपदेश

अध्यात्मज्ञान गुरु-दर्शित पथसे ही प्राप्त करने योग्य है। वैसे तो सभी विद्या पुरुष किसी न किसीके द्वारा ही प्राप्त करता है, किन्तु शब्द-ज्ञान तथा आत्म-ज्ञान श्रवण-परम्पराके बिना प्राप्त नहीं होते। इनमें भी शब्द-ज्ञान अनेक मुखोंसे श्रुत सफल हो जाता है, परन्तु आत्मज्ञानके लिए गुरु-वरण अनिवार्य है। यह स्वयं शोधका पथ नहीं है; क्योंकि अहंकारका समूलोच्छेद हुए बिना व्यक्तित्वका विलय सम्भव नहीं है। कथञ्चित् कोई किसी प्रकार अध्ययन एवं प्रतिभाके प्रभावसे, विवेककी विशुद्धताके कारण प्रकृष्ट परवैराग्य प्राप्त करले और तब श्रुतिकी पराविद्या उसके चित्तमें प्रकाशित भी होजाय, तब भी 'यह सब मैंने स्वयं किया' इस अहंकारका उच्छेद कैसे होगा ? इसके उच्छेदके बिना तो कैवल्य सम्भव नहीं है।

मुझे कैवल्यकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं सदा-सदा श्रीरघुनाथके चारु चरणारविन्दोंका चञ्चरीक ही रहना चाहता हूँ। लेकिन अम्बाके आशीर्वादसे मुझे पराविद्या प्राप्त होगयी थी। उसे सफल होना चाहिए था। गुरुमुखसे श्रवणके बिना वह सफल नहीं होसकती और श्रीसीताराम ही मेरे त्राता-पिता, त्राता-पालक, गुरु-आराध्य सर्वस्व हैं। मैं अन्य किसीको स्वप्नमें भी गुरु स्वीकार नहीं कर सकता।

मैंने स्वयं अपने लिए तो कभी कुछ कामना नहीं की। मेरे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, परम सदय स्वामी मेरे सिरपर हैं तो मैं क्यों अपने सम्बन्धमें सोचनेका सङ्कट उठाऊं। उन्हें मेरी चिन्ता, उन्हें मेरी लज्जा, उन्हें मेरी वेदना। उनको जैसा रखना हो, रखें। जो देना हो, दें। जो बनाना हो, बनादें। मैं उनका—उनके करका क्रीडनक।

एक दिन अपने निज सदनमें स्वामी अम्बाके साथ सिंहासनपर आसीन थे। मैंने पादपद्मोंमें प्रणाम किया तो मुझे बैठ जानेका संकेत हुआ। मैं अञ्जलि बाँधकर बैठ गया। स्वामीके संकेतसे समस्त अन्तरङ्ग सेविकाएं भी कक्षसे बाहर चली गयीं। तब श्रीरघुनाथने अम्बाकी ओर देखा—'हनुमानको हमारा स्वरूप समझाओ !'

बिना किसी भूमिकाके अम्बाने कहना प्रारम्भ किया—'तुम्हारे ये स्वामी कैसे हैं, क्या हैं, मैं भी नहीं जानती। इसके स्वरूपका वर्णन न वाणी से किया जा सकता, न मनसे कल्पनामें आता और न बुद्धिका विवेचन इनकी छायाका स्पर्श करता। तुम जो कुछ देखते हो—देख सकते हो, भूत-भविष्य-वर्तमानका दृश्य-मात्र मेरा विलास है। जो देखा या सुना जाता है, जो मन अथबा बुद्धिमें आसकता है, सब मेरी क्रीड़ा है–मैं हूँ।'

'वत्स ! मत सोचो कि मैं क्या हूँ।' अम्बाने मेरी ओर स्नेह पूर्वक देखा। 'यद्यपि मैं अपने इन आराध्यसे अभिन्न इनकी शक्ति हूँ; किन्तु इन्हींके समान मैं भी मन, बुद्धि, वाणीका विषय नहीं हूँ। मैं ही पराविद्या योग-माया हूँ। माया अथवा प्रकृति मेरा विलास है। स्वामीको सच्चिदानन्द मेरे कारण कहा जाता है। मैं चिच्छक्ति हूँ, मैं आनन्दात्मा हूँ। इसीसे मुझे सन्धिनी, संवित, आह्लादिनी कहते हैं। मेरी सत्ताकी छाया तमोगुण, चित्ता रजोगुण, आनन्द सत्वगुण होकर प्रकृतिको स्वरूप प्रदान करता है।'

मैं अम्बाके श्रीमुखको अपलक देख रहा था। वे कह रही थीं—'सीता जीवको प्रभुके पादपद्मोंमें पहुँचाने वाली पराभक्ति है। यही जगत्पालिका महालक्ष्मी, जगत्कर्तृ महासरस्वती और प्रलयङ्करी महाकालिका है। ब्रह्माण्डोंमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इससे शक्तिप्राप्त, इसीकी संतान हैं। यही योग माया है और इसीकी छाया है वह माया, जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंकी इन मेरे अद्वितीय स्वामीमें प्रतीति करा रही है। जीव अनन्त कालसे मायाकी गोदमें ही सोया है और जगतका—जन्म-मरणका स्वप्न देख रहा है। उसे मैं ही जागृत कर सकती हूँ—करती हूँ, जब वह मेरे इन स्वामीका स्मरण अपने अनन्त स्वप्नमें करने लगता है।'

'हनुमान ! मैंने प्रारम्भमें कहा है कि तुम्हारे ये स्वामी मन, बुद्धि, वाणीमें नहीं आते। ये अद्वितीय हैं, अतः अविकारी, निष्क्रिय परिपूर्ण हैं। इनका यह श्रीविग्रह भी मेरा विलास है। मेरे आश्रयसे ये साकार हैं। इनका सगुण- निर्गुण अभय स्वरूप, इनके अनन्त नित्यधाम—वत्स ! सब मेरा विलास है। इनकी यह अवतार लीला, यह अयोध्यामें आविर्भाव, मिथिलामें मेरा पाणि-ग्रहण, वन-यात्रा, मेरा अपहरण, लङ्काका युद्ध, दशग्रीव-वध और यह राज्य सञ्चालन—सब मेरी क्रिया है। इन अक्रिय परिपूर्णमें यह आनन्दोल्लास लहरिका जीवोंके कल्याणके निमित्त मैंने उठायी

है। मैं अभी क्रीड़ा-लग्ना हूँ। अत्यन्त अप्रिय भी मेरी क्रीड़ा हो सकती है, केवल आनन्ददात्री ही मैं नहीं हूँ। विषादकी वह्नि-ज्वाला भी जगाती हूँ; किन्तु प्रचण्ड तापके बिना पूर्ण परिशोधन, सम्यक् परिपाक नहीं हुआ करता।'

मैं तनिक भी नहीं समझ सका कि अम्बा कोई अत्यन्त अप्रियके सम्बन्धमें मुझे सावधान कर रही हैं। मुझे यह उपदेश-सम्बल दिया जा रहा है आनेवाले अत्यन्त दारुण दिनोंके लिए, इसका स्वप्न भी मैं नहीं देख देख सकता था। अम्बाने अपना उपदेश समाप्त करके मेरे स्वामीकी ओर देखा।

'प्रभञ्जन-पुत्र! तुम स्वयं साक्षात् वैराग्य हो।' अब प्रभुने प्रारम्भ किया—'प्रबुद्ध विवेकोद्भव सम्यक् वैराग्य सम्पन्न हुए बिना यदि आत्म-विद्या प्राप्त भी हो जाय तो वह अनर्थकारिणी ही होती है; क्योंकि देहासक्त—इन्द्रिय-भोगासक्तकी बुद्धिमें जो ज्ञानाभास आता है, वह उसे देहात्मवादी बनाकर अधःपतित ही करता है।'

'तुम जानते हो कि समष्टि इन सर्वसञ्चालिकाकी क्रीड़ा है।' प्रभुने अम्बाकी ओर संकेत किया—'इस सृष्टिमें इनके अनुग्रहके बिना कोई परा-विद्या प्राप्त करके मुक्त नहीं हुआ करता। अतः इनका—इन भक्तिदेवीका अनुग्रह आवश्यक है अतःकरणकी निर्मलताके लिए। इनका अनुग्रह ही मेरा अनुग्रह है। हम दोनोंके आकार ही दो हैं।'

'जहाँ तक मेरे स्वरूपकी बात है, वह तुम्हारा अपना स्वरूप है। जब चित्त लयको प्राप्त न हुआ हो, उसमें किसी प्रकारका विक्षेप भी न हो, कोई विषय आभासित न होता हो तो उस शान्त, स्थिर, आभासहीन चित्तमें प्रकाशित सन्मात्र, चिन्मात्र तत्त्व मैं हूँ और वही तुम्हारा अपना स्वरूप है।'

'श्रुतिका उद्घोष सुना है तुमने कि मैं सर्व व्यापक हूँ; किन्तु सर्व-व्यापक कोई कैसे हो सकता है, यदि उसमें कोई अन्य सत्ता भी हो। सर्व-व्यापकमें सर्व तो प्रतीतमात्र होता है। सर्वकी सत्ता पृथक् नहीं है। अतः उस सर्वमें व्यापक भी औपचारिक शब्द मात्र है। मैं अद्वितीय हूँ, अतः निर्विकार हूँ। सगुण मेरा विलास है—विनोद है।'

'मेरा निर्विकार निर्गुण स्वरूप बोधगम्य है। इस अद्वितीय तत्त्व की अनुभूति 'अहं' के रूपमें ही शक्य है; क्योंकि अन्यरूपमें इसकी अनुभूति करेगा कौन ? लेकिन जब सृष्टि है, सृष्टिका बोध एवं संवेदन है—यह है, इस प्रत्यक्ष सत्य की अस्वीकृतिका कोई अर्थ ही नहीं है। यह प्रत्यक्ष प्रपञ्च परिवर्तनशील है, विनाशी है, विकारी है; किन्तु अनाधार नहीं है। इसका आधार है। वह आधार है मेरा सगुण स्वरूप।'

'मैं सगुण-निर्गुण उभय रूप हूँ। निर्गुण निर्विशेष निर्विकार है। अनुभवैक-गम्य—बोध-गम्य है। लेकिन सगुण तो लीलामय होगा ही। अनन्त रूप, अनन्त नित्यधाम, अनन्त लीला—यही इन योगमायाकी छाया प्रकृतिमें प्रतिबिम्बित होकर प्रपञ्चके स्वरूपमें प्रतिभात होता है। ये सगुण स्वरूप श्रद्धैक-गम्य है।'

'मैं सगुण-निर्गुण उभयरूप हूँ; किन्तु मेरे ये दोनों रूप परस्पर अभिन्न हैं। इसीलिए सगुण, सर्वसंचालककी अनुकम्पाके बिना निर्गुण रूपका बोध-आत्मरूपमें अनुभव भी अशक्य है।

'देश, काल, पदार्थ ये सब सापेक्ष हैं—परस्पर सापेक्ष हैं ये। इनकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं; क्योंकि ये मेरे सगुण स्वरूपमें स्वप्नके समान प्रतिभात है। जो सर्वव्यापक है, उसमें दिग्भेद, वाह्याभ्यन्त भेद बन ही नहीं सकता। शाश्वतमें काल कल्पित ही होता है। मेरा सगुण साकार स्वरूप देशमें या कालमें है, यह जीवका अज्ञान है। इसीसे वह अपने शरीरके समान इसे परिसीम अथ-च परिच्छिन्न माननेके भ्रममें पड़ता है। मेरे सगुण साकार स्वरूपमें देश-काल कल्पित होते हैं।'

'श्रद्धैक-गम्य सगुणकी उपलब्धि होती है भक्तिसे। भक्तिसे ही सगुणके अनुग्रहको उपलब्ध करके निर्गुणका भी बोध होता है। राम नित्य-निष्कल, निर्गुण, निरञ्जन, निर्विकार, अद्वितीय चिन्मात्र है; किन्तु जब किसीकी श्रद्धा समन्वित प्रीति—किसी व्यक्तिकी—भक्तकी प्रीति इसमें प्रतिफलित होती है तो उसकी श्रद्धा—उसके भावके अनुरूप राम सगुण साकार हो जाता है। यह श्रद्धा क्योंकि नित्य है, राम नित्य सगुण साकार है निर्गुण निराकार रहते भी। श्रद्धा—ये भागवती भक्ति सीता रामसे नित्य अभिन्न हैं। अतः इन आह्लादिनी समन्वित राम नित्य सगुण सच्चिदानन्द साकार हैं।'

'जीव श्रद्धा समन्वित विवेकके द्वारा वैराग्य प्राप्त करके बोधका अधिकारी होता है। यह ब्रह्मात्मैक्य-बोध उसके अविद्यान्धकारको दूर करके निर्गुण निरञ्जन अद्वितीय तत्त्वसे एक कर देता है। वह कैवल्य प्राप्त करता है।'

'जीव श्रद्धा समन्वित प्रीतिका प्रश्रय प्राप्त करके मेरे सगुण साकार स्वरूपका प्रीति-भाजन बनता है। वह मेरे अनुग्रहसे मेरे नित्यधाममें अपने परिकर रूपको पहचान लेता है। यह उसका अपने स्वरूपका ज्ञान भी उसके अविद्यान्धकारका नाश कर देता है। उसके प्राकृत नाम-रूपके मोहका समूलोन्मूलन कर देता है। अतः उसका कर्म-परवश परिभ्रमण समाप्त हो जाता है। वह मायाके मण्डलसे जन्म-मरणसे मुक्त होकर मेरे नित्यधाममें मेरा शाश्वत सान्निध्य प्राप्त कर लेता है।'

प्रभुने अपने उपदेशका उपसंहार किया। अब तक मैं शरीरकी सुधि भूल कर सुन रहा था। हनुमान अब तक केवल श्रोत्र-श्रवण वृत्ति मात्र रह गया था। अब मैंने उन मुनि-मन-मानस-मराल चारु-चरणोंमें मस्तक रखा।

इस उपदेशके अनन्तर दूसरे दिन प्रातःकाल जब मैं आह्निक कृत्यसे निवृत्त प्रभुके पादारविन्दोंमें प्रणाम करने पहुँचा, मेरी ओर देखकर उन्होंने पूछा—'कस्त्वम् ?'

एक बार तो मेरे हृदयको ही धक्का लगा। प्रभु अब अपने इस सेवकको ही नहीं पहिचानते ? इसीसे पूछते हैं कि 'तुम कौन हो ?' इससे भी अपेक्षा है कि यह पिताके नामोच्चारणके साथ गोत्र एवं स्वनाम बोलकर प्रणाम करे ?

मैंने नेत्र उठाये तो देखा कि प्रभुके वदनारविन्दपर विनोदपूर्ण स्मित है। अम्बा भी सस्मित सस्नेह ही अपने इस सुतको देख रही हैं। समझ गया कि मेरे इन परमाश्रय परम गुरु-युगलने मुझे जो कल पराविद्याका पाठ पढ़ाया है, उसकी परीक्षा ले रहे हैं। अन्ततः शिक्षक शिष्यसे प्रश्न किये बिना कैसे जानेगा कि उसने उपदेशका कितना अंश हृदयंगम किया है। मैंने हाथ जोड़कर सविनय अपना पाठ सुना दिया—

'देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
वस्तुतस्तु त्वमेवाहं इति मे निश्चिता मतिः॥'

यह शरीर समष्टिका अङ्ग है। इसका एक कण भी व्यक्तिका अपना नहीं है। इसमें जो भी पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश है, वह प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहा है। इसका अणु-अणु कुछ दिनोंमें नूतन हो जाता है। जैसे श्वास किसीकी नहीं है, एक शरीरकी श्वास दूसरे किसीके भीतर जानेको स्वतन्त्र है, वैसे ही पृथ्वी, जलादि भी प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहे हैं। पार्थिव शरीरधारी प्राणीका आकार ही पृथक् है। इन शरीरोंके पदार्थ-तत्त्व तो अनुक्षण आ रहे हैं—जा रहे हैं।

केवल प्रभुका श्रीविग्रह—सगुण साकार परमात्माका स्वरूप चिन्मय है। यह अवतार शरीर हो अथवा नित्य-धामस्थ, केवल यही अपार्थिव अथच चिन्मय है। यही ध्येय है। यही स्मरणीय है, आराध्य है।

व्यक्तिका शरीर—वह कोई भी हो, कैसा भी हो, कितना बड़ा महापुरुष हो; किन्तु शरीर तो महापुरुष होता नहीं। शरीर तो पञ्च-भूतात्मक है और जिसका दीख रहा है, उसका नहीं है; क्योंकि शरीरके अणुओंकी उत्पत्ति-विनाशका तो उसे पता भी नहीं लगता। सामान्य सभी शरीरोंके परमाणुओंसे उसके देहके परमाणुओंका प्रतिक्षण विनिमय चल रहा है। अतः शरीर किसी व्यक्तिका नहीं, वह समष्टिका है। अत-एव वह समष्टि सञ्चालकका यन्त्र है। दास है—नित्यदास है देह सृष्टिके सञ्चालकका।

देहकी दृष्टिसे सर्वेश्वरके सब दास हैं। देहका पालन-पोषण, देहकी सब दशा एवं क्रिया उस सर्व सञ्चालककी इच्छापर निर्भर है। अतएव न केवल देहासक्त, मुक्तात्मा महापुरुषका भी देह तो इस सृष्टिके सञ्चालकका दास ही है। इस सत्यको आस्तिक मात्रको स्वीकार करना है।

जीव—चेतन नहीं, चेतन तो केवल श्रीरघुनाथ हैं। इन अद्वितीय अविकारीमें अंश सम्भव नहीं है। जीवका अर्थ ही है चिदाभास। त्रिगु-णात्मक अन्तःकरणमें जो अन्तर्यामी चेतनका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है वह जीव। जीव अर्थात् जन्म-मरणको अपनेमें स्वीकार करके एकसे दूसरे शरीरमें जाने वाला, एक लोकसे लोकान्तरमें जाने वाला।

बहुत स्पष्ट शब्दोंमें कहूँ तो मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार समन्वित अन्तःकरण, पञ्च कर्मेन्द्रिय तथा पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चतन्मात्राएँ—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन उन्नीस तत्त्वोंका पुञ्जीभाव सूक्ष्मशरीर व्यापक चेतनाका प्रतिबिम्ब ग्रहण करके उस चिदाभाससे युक्त जीव बन गया है। सूक्ष्म शरीरसे परिच्छिन्न, प्रति शरीर पृथक्-पृथक् स्थित यह जीव क्या है? जिसका प्रतिबिम्ब है, उसके अंशके अतिरिक्त इसकी स्वतन्त्र सत्ता क्या?

जब कोई व्यक्ति बन बैठता है, अपने नाम-रूपके पृथकत्वको स्मरण करता है—दूसरी कोई वासना न हो तब भी वह उस समय जीव होता है। जैसे शरीरका प्रत्येक अङ्ग पूरे शरीरका अंश है, प्रत्येक शरीर विराट्का अंश है और शरीरस्थ चेतन विराट्के सञ्चालक ईश्वरका अंश है। इसे भी सबको स्वीकार करना है।

अब वस्तु सत्य?—वस्तु सत्य दो नहीं हो सकता। मेरे स्वामी श्रीरघुनाथ अद्वितीय हैं, सर्वव्यापक हैं तो इनसे पृथक् मेरी सत्ता सम्भव ही नहीं है। ऐसी अवस्था में 'त्वमेवेदं सर्वम्' सिर झुकाकर कहते समय कहना पड़ता है—'नाहं न मे।'

इसका फलितार्थ हुआ—

'सकलमिदमहं च वासुदेवः।'

अपने श्रुत पाठका मनन करके जो निष्कर्ष मैंने सुनाया था, वह प्रभुके--अम्बाके साथ आसीन प्रभुके पादारविन्दोंमें मैंने निवेदन कर दिया। अपने इस अबोध वानर शिशुके इस पाठ-श्रवणसे मेरे स्वामी सन्तुष्ट हुए। वे नित्य सुप्रसन्न—हनुमान तो उनकी अनन्त कृपासे ही परिपुष्ट हुआ है। यह जो कुछ है, उनका मूर्तिमान प्रसाद है।
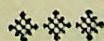
४२—कथा-लेखन

श्रीरघुनाथने ग्यारह सहस्र वर्ष राज्य किया ; किन्तु अन्त तब तक अयोध्यामें आनन्दघनके सिंहासनासीन रहते भी उल्लास स्थिर नहीं रह सका। अत्यन्त कठिन है प्रजा-पालकका कर्तव्य। आदर्श प्रजापालकको समस्त प्रजाके प्रति सदय रहना है। सबको अपने सुनिश्चित पथपर स्थिर रखना है। सबको वात्सल्य-वितरण करना है ; किन्तु अपने प्रति नितान्त निष्ठुर हो जाना है—हाय री मर्यादा !

प्रजामें किञ्चित् भी भ्रम अल्पप्राण वर्गको पथच्युत कर सकता है, इस आशंकासे मर्यादा-पुरुषोत्तमको महान् त्याग करना पड़ा। अपनेको ही दण्डित करना पड़ा उन्हें और ऐसा दण्ड जिसकी वेदनाका कहीं अन्त नहीं था। भगवती भूमिजाका अयोध्यासे जाना क्या हुआ, अयोध्या सब कुछ होते हुए श्रीहीन होगयी। सब था—सब कार्य सविधि सम्पन्न हो रहे थे ; किन्तु ऐसे जैसे श्मशानोन्मुख शवके साथ वाद्य बज रहे हों।

अम्बाकी अनुपस्थितिमें मैं वैसे ही अर्धजीवित रह गया था, मेरे स्वामीने भी मुझसे सेवा लेना प्रायः त्याग दिया। वे अपने सुख, अपनी सुविधा, अपने श्रीअङ्गसे उदासीन हो गये। मैं कुछ भी करनेको उठता तो आज्ञा हो जाती—'हनुमान ! कम-से-कम तुम तो रामको अवसर दो कि वह कुछ क्षण अपनी आवश्यकताओंको लेकर व्यस्त रहे !'

व्यस्त—प्रभु व्यस्त रहना चाहते थे। प्रभातसे—ब्रह्ममुहूर्तसे रात्रिके प्रथम प्रहरान्त तक व्यस्त रहते थे। किसी सेवकको, अनुजोंको कोई छोटी सेवा करनेका अवसर ही कहाँ था, जब मुझे ही कोई अवसर नहीं प्राप्त होता था। मेरे स्वामी सदा प्रबुद्ध ज्ञानघन हैं ; किन्तु लीलापूर्वक भी रात्रि-शयन अब समाप्त हो चुका था। अपने प्रभुकी यह अवस्था मुझे असह्य थी ; किन्तु कुछ करना, कुछ कहना सम्भव नहीं था।

ऐसी अवस्थामें मैंने भी कालक्षेपका साधन निकाला। स्वामीके समान व्यस्त रहकर ही मैं स्वामीकी स्थिति, उनकी सर्वत्रसे उदासीनता

भूला रह सकता था। अतः मैं प्रातः चला जाता था अयोध्यासे। दक्षिण समुद्र-तटपर सेतु-बन्धके समीप शिलाओंका बहुत बड़ा समूह था। सेतु-निर्माणके समय हमारे वानर इन्हें दूर-दूरसे उठा लाये थे। सेतु-निर्माण सम्पूर्ण हो जानेके कारण इन्हें एकत्र ही डाल दिया था उन्होंने। मैंने इन शिलाओंको अपने उपयोगका पाया। वहाँ जाकर मैं बैठ जाता था और सायंकाल अन्धकार होने तक वहीं रहता था।

इन शिलाओंको मैंने एक क्रमसे सजा लिया था। ऐसे क्रमसे कि इनका समतल अंश ऊपर रहे। इनको उठाना—रखना मेरे लिए ऐसे ही सरल था, जैसे भूर्जपत्र अथवा ताड़पत्रके ऊपर लिखे ग्रन्थोंके पृष्ठ साधारण जन उपयोगके समय उठाते हैं। शिलाएँ अनगढ़ थीं, अनेक आकार एवं अनेक रंगोंकी थीं। मुझे इससे कोई अड़चन नहीं पड़ती थी। मैंने उन्हें एक आकार देनेका कोई प्रयत्न नहीं किया। केवल कुछ थोड़ी शिलाओंको एक दूसरीके ऊपर पटककर मैंने फोड़ लिया। इससे उनका एक ओरका भाग समतल-प्राय हो गया। वे मेरे लिए उपयोगी हो गयीं।

मैं उनपर श्रीरामचरित लिखने लगा। जैसा श्रीरामचरित मैंने सुना था, देखा था—उसे जिस दृष्टिकोणसे मैंने समझा था, मेरे इस काव्यमें वही आ सकता था। मैं काव्य लिखनेमें लगा था—एक वानरको श्रीरघुनाथके लोकोत्तर चरितने कवि बना दिया था। शिलाएँ मेरे लिए लेखन-पत्र थीं। मेरे दक्षिण हस्तकी मध्यमा अँगुलीका नख मेरी लेखनी था। मैं श्रीराम काव्य लिखनेमें लग गया था।

मेरा वह काव्य मेरे उदासीनता-भरे उन दिनोंमें कालक्षेपका साधन था। मैं उसे लिखते समय अपने आपको भूला रहता था। शिलातल मेरे अश्रु-बिन्दुओंसे आर्द्र होता रहता था और मैं लिखता रहता था। प्रातः लिखना प्रारम्भ करदेनेपर मुझे समयका ध्यान तब आता था, जब सूर्यके अस्ताचल पहुँच जानेसे अन्धकारके कारण लेखन असम्भव हो जाता था।

शीत अथवा आतप मुझे कभी कष्ट नहीं देता। क्षुधा अथवा पिपासाने भी कभी बाधा नहीं उपस्थित की। मैं उन दिनों रात्रिमें अयोध्या आकर ही जल तथा अल्पाहार ग्रहण करता था। यद्यपि अब अपने वानरपुत्रकी पल-पल चिन्ता करनेवाली अम्बा राजसदनमें नहीं थीं; किन्तु उनकी तीन

अनुजाएँ थीं वहाँ, और उनका मुझपर किञ्चित् भी कम वात्सल्य नहीं था। लेकिन तीनोंको प्रभुके वनवासके पूरे चतुर्दश वर्षका अनुभव था कि व्यथित-मानस व्यक्तिके लिए आहारके प्रति कैसी अरुचि हो जाती है। प्रतिदिन ही उनमें-से प्राय: सब सायंकाल मेरी प्रतीक्षा करती मिलती थीं। उनके स्नेहाग्रहके कारण रात्रिके प्रथम प्रहरमें मुझे कुछ पेटमें पहुँचाना ही पड़ता था।

मुझे मेरा यह लेखन कितना आनन्द देता था, चाहूँ तो भी वर्णन नहीं कर सकता। कला एवं काव्यकी अधिदेवता भगवती भारती अन्त:-करणके अधिष्ठाता ब्रह्माजीकी संगिनी हैं और मेरे अन्तर्यामी स्वामीके श्रीचरणोंके सदा समीप ही रहती हैं। अत: हृषीकेशका चिन्तन करते ही वे स्वयं सेवा-समुत्सका हो उठती हैं। मुझे कभी कुछ सोचना नहीं पड़ा। उन्होंने स्वत: मेरे मानसमें मञ्जु शब्दावली, अद्भुत भाव सजाना प्रारम्भ कर दिया। मैंने जो कुछ लिखा अथवा लिख रहा था, उसमें कुछ भी मेरा नहीं था। अन्तस्तलमें आसीन मेरे स्वामीकी कृति थी वह। यह वानर हनुमान केवल अपने नखसे उसे शिलातलपर अङ्कित मात्र कर रहा था। इस अङ्कनका पारिश्रमिक आशासे अत्यधिक आनन्दके रूपमें इसे प्राप्त हो रहा था।

मैं केवल अपने लिए लिख रहा था। किसीको दिखलाने, सुनानेकी मेरी कोई इच्छा नहीं थी; किन्तु मैं उसे छिपा भी नहीं सकता था। समुद्रके किनारे वे शिलाएँ बिखरी थीं। देवता, गन्धर्व, सिद्ध—कोई भी उन्हें रात्रिमें पढ़ सकता था। दिनमें भी कोई पढ़ते हों तो मुझे पता नहीं है; क्योंकि शिलाएँ बहुत दूर तक बिखरी थीं और लिखते समय तो मैं इतना अपनेको विस्मृत रहता था कि कोई मुझसे सटकर भी खड़ा रहता तो मुझे पता नहीं लगता। अयोध्यामें मेरी निरन्तर दिनभरकी अनुपस्थितिसे भी कुछ अनुमान लोगोंने लगा लिया था।

'आजकल श्रीआञ्जनेय कुछ लिखनेमें लगे हैं।' प्रभुके सम्मुख ही श्रीलक्ष्मण लालने एक रात्रिको प्रथम प्रहरमें मेरे दाहिने हाथकी मध्यमाका स्पर्श करके किञ्चित् घिसे उसके नखकी ओर संकेत कर दिया।

'स्वामीके देखे-सुने चारु चरितोंके चिन्तनका प्रयत्न कर लेता हूँ।' मैंने मस्तक झुकाकर संकोच पूर्वक स्वीकार कर लिया—'अन्यथा वानरकी क्या बुद्धि और क्या उसका लेखन।'

प्रभु गम्भीर बने रहे। लेकिन लगता है कि अयोध्याकी यह चर्चा व्यापक बन रही थी। हो सकता है कि किसी देवता, गन्धर्व, सिद्ध आदिने इस समाचारका प्रसार किया हो। आश्चर्य नहीं कि देवर्षि नारद ही हेतु हों। उन्हें समाचारोंके प्रसारमें बहुत उत्सुकता रहती है। कारण कुछ भी हो, एक प्रातःकाल जब मैं सरयू-स्नान करके प्रयाण ही करने वाला था, महर्षि वाल्मीकि सम्मुख मिले। मैंने प्रणिपात करके प्रार्थना की—'राजसदन पधारें! प्रभु आपका पादार्चन करके प्रसन्न होंगे।'

महर्षिने कहा—'पवनपुत्र! सुना है कि आप कोई रामकथा काव्य लिख रहे हैं?'

मुझे बहुत संकोच हुआ। मैंने कहा—वानर क्या काव्य-रचना करेगा। किसी प्रकार कालक्षेप करनेका एक बहाना बना रखा है।'

'आञ्जनेय! आप जानते होंगे कि मैंने भी एक रामकथा काव्यकी रचना की है।' महर्षिने आग्रह पूर्वक कहा—'आज मैं श्रीरामसे नहीं, आपसे मिलने आया हूँ और आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लें तो आपके काव्यका दर्शन करना चाहता हूँ।'

मैंने सम्मुख बैठकर प्रार्थना की—'आप मेरे स्कन्धपर आरूढ़ होनेका अनुग्रह करें।'

महर्षिको मैंने ले जाकर अपनी लिखी शिलाओंके समीप उतार दिया। वे अविलम्ब आरम्भिक शिलासे अत्यन्त एकाग्रता पूर्वक उन अंकित शिलाओंको देखने लगे। मैं क्रम सूचित कर देता था। यद्यपि महर्षिको ऊँची शिलाओंपर चढ़ने-उतरनेमें श्रम हो रहा था; किन्तु उन्होंने संकेतसे ही इसमें मेरी सहायता अस्वीकार कर दी।

अपेक्षाकृत शीघ्र देख लिया महर्षिने उन शिलाओंको। सबको देखकर जब वे श्रान्त बैठ गये, मुझको उनका श्रीमुख खिन्न लगा। मैंने उन आदि-कविसे पूछा—'आपके श्रीमुखपर मैं विषाद देखता हूँ। मेरी इस रचनामें कोई दोष? कोई च्युति? कोई प्रमाद हुआ प्रभु?'

महर्षिने शिथिल स्वरमें कहा—'हनुमानजी! आपकी रचना इतनी उत्कृष्ट है कि यदि यह लोकमें प्रसिद्ध हुई तो मेरी कृतिको कोई देखना नहीं चाहेगा। मैं बड़ी आशा रखता था अपनी कृतिसे।'

'मैं कोई सेवा कर सकता हूँ ?' मैंने हाथ जोड़कर पूछा।

'कर सकते हो।' महर्षि सोत्साह बोले—'वचन दो तो कहूँ।'

मैंने निवेदन किया—'मैं तो सेवक हूँ, आज्ञापालन करूँगा।'

महर्षिने कहा—'अपनी इस रचनाको कहीं इस प्रकार छिपा दो कि इसे देवता भी देख न सकें। अब लेखन मत करो और दूसरी भी कोई रचना प्रारम्भ मत करो।'

मैंने चुपचाप अङ्कित सब शिलाओंको एक दूसरीके ऊपर रखा। सबको कन्धेपर उठाया और आकाशमें ऊपर उठा। कुछ दूर जाकर मैंने शिलाएँ समुद्रको समर्पित कर दीं। ऐसा करनेमें मुझे तो महर्षिका अनुग्रह प्रतीत हुआ। मैंने अपने वानर-स्वभाव, प्रमादके कारण कभी सोचा ही नहीं था कि शिलाओंपर अंकित श्रीरघुनाथका दिव्य नाम एवं चरित इस प्रकार गगनके नीचे पड़ा रहे, यह योग्य नहीं है। उसपर बैठकर पक्षी उसे अपवित्र कर सकते थे। वन्य पशु उसपर पादक्षेप करते। गगन-चर उसका उल्लंघन करते। महर्षिने मुझे अपराधसे बचाया ही था। मैं उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ था।

शिलाओंको सागर-गर्भमें समर्पित करके मैं लौटा तो मैंने देखा कि महर्षि मस्तकपर हाथ रखे रुदन कर रहे हैं। मुझे देखते ही उठे। मुझे आलिंगित करके उनका रुदन वेग बढ़ गया। कठिनाईसे बोल सके—'पवन-कुमार ! मैंने अपने यशके लोभमें आज अत्यन्त अनर्थकारी कार्य कर लिया। मैंने मानवोंको श्रीरघुनाथके इतने मञ्जु महाकाव्यसे वञ्चित कर दिया। अब मेरा आशीर्वाद है कि आपका सुयश संसारमें सदा उज्वल रहेगा।'

'सुयश ?' मैंने तो इस महत्वहीन बातको कभी मनमें आने ही नहीं दिया। सुयश तो मेरे स्वामी श्रीरघुनाथका—वही सुयश सदा प्राणीका मङ्गल-विधायक है। वह सुयश तो महर्षिके महाकाव्यमें है ही।

किसी प्रकार मैंने महर्षिको शान्त किया। उनको अपने कन्धेपर बैठाकर उनके आश्रम पहुँचाया मैंने। इसमें केवल इतना हुआ कि मैं राम-कथा लेखनके आनन्दसे वञ्चित हो गया; किन्तु इस लेखनने मुझे राम-कथाके अवर्णनीय रससे परिचित करा दिया। तबसे जहाँ भी श्रीराम-कथा होती हो, मैं उपस्थित रहने लगा। अब मैं जानता हूँ कि कथाके वर्णन अथवा लेखनमें वह रस—वह आस्वादन नहीं है, जो उसे श्रद्धासहित श्रवण करने में है।

—×—

४३–अश्वमेधीय अश्वके साथ

श्रीरघुनाथने अश्वमेध-यज्ञ करनेका सङ्कल्प किया, यह उनकी मर्यादाके अनुरूप ही था। समर्थ सम्राट् ही अश्वमेध-यज्ञ कर सकता है। जिसमें शक्ति है, सामर्थ्य है, वह इस महायज्ञका उद्योग करे। वह केवल भोगलिप्सु न बने, यह महीपतिवर्गकी मर्यादा भी मर्यादा-पुरुषोत्तमको स्थापित-अनुमोदित करनी थी।

इस महायज्ञका संकल्प मैं इसलिए भी उत्तम मानने लगा; क्योंकि मेरे स्वामी इसमें निरन्तर व्यस्त रहकर अम्बाके शोकको विस्मृत रख सकेंगे। स्वर्णकी प्रतिमा अम्बाके उनके वामाङ्गमें बैठाकर भले यज्ञ-विधि हो सकती हो, किन्तु अश्व-परिचर्या तथा अश्व-परिभ्रमणके समयकी यजमान-पत्नीकी समग्त चर्या तो इस समय स्वयं श्रीरघुनाथको ही करनी थी। इसमें तो उनके अनुज सहायक नहीं हो सकते थे। अतः अहर्निशि श्रीरघुनाथको लगे रहना था यज्ञीय कार्यमें। उनका दायित्व—व्यस्तता द्विगुण होगयी थी। यह उनकी वर्तमान मनःस्थितिके लिए अच्छी बात थी।

मेरे लिए भी स्वामीका यह सङ्कल्प सुखद था। मैं अम्बाके अभावमें अत्यन्त खिन्न था। कालक्षेपका मेरा साधन कथा-लेखन भी नहीं रहा। अतः अश्वमेधीय अश्वकी रक्षाका दायित्व लेकर उस अश्वके साथ अहर्निशि सतर्क रहनेका कर्तव्य मुझे भी व्यग्त रखनेवाला था। इस समय मुझे ऐसे ही कार्यकी आवश्यकता थी जो मुझे बहुत व्यस्त रख सके।

अश्वकी रक्षामें जो सेना नियुक्त हुई, उसके अधिपति मनोनीत हुए श्रीशत्रुघ्नकुमार। श्रीरघुनाथने अश्वके साथ मुझे भेजते समय आदेश किया—'महावीर हनुमान! तुम्हारे पराक्रम और प्रसादसे ही मैंने यह राज्य प्राप्त किया है। राम अश्वमेध करनेका साहस ही तुम्हारे अप्रमत्त पौरुषके भरोसे कर सका है। अतः तुम अश्वके साथ सम्पूर्ण रक्षक-सेनाके संरक्षक होकर जाओ। मेरी ही भाँति मेरे सबसे छोटे भाई शत्रुघ्नकी सुरक्षाके प्रति सतर्क रहना। शत्रुघ्नकी बुद्धि कठिन अवसरपर विचलित हो सकती है; किन्तु जहाँ अवसर उपस्थित हो, समझाकर उन्हें कर्तव्यज्ञान

कराना। यह केवल तुम्हीं कर सकते हो। राम अपना अत्यन्त प्रिय अनुज तुम्हें सौंपता है।'

यह श्रीरघुनाथका औदार्य ! वे सदासे सेवकको श्रेय देते रहे हैं। उनका नाम महत्ताम विपत्तियोंसे परित्राण देने वाला है। मुझ वानरके पास बल-बुद्धि कितनी ? किन्तु सर्वेश्वरेश्वरका सङ्कल्प जिससे चाहे जो करा सकता है। जो तृणको वज्रपर विजय दिला सकते हैं, वे मेरे स्वामी सानुकूल हैं तो यह सेवक, वे जो चाहते हैं, करेगा—निश्चय सम्पन्न कर सकेगा।

अश्व-रक्षणमें हमारे सब वानर यूथप भी मेरे साथ थे। ऋक्षराज जाम्बवन्त, वानरेन्द्र सुग्रीव, राक्षसाधिप विभीषण, किष्किन्धा-युवराज अङ्गद, नल-नील प्रभृति सब सदल श्रीअयोध्यानाथके अश्वमेध यज्ञका आमन्त्रण प्राप्त करके आगये थे। सब अश्वरक्षक सेनामें सम्मिलित होगये ; क्योंकि हम वानरोंके दलके आहार, आवासकी भी किसीको चिन्ता नहीं करनी थी।

हमको यज्ञीय अश्वका अनुगमन ही करना था। अश्वमेधीय अश्व साक्षात् यज्ञेशका स्वरूप होता है। उसकी सेवा तथा सुरक्षा—जहाँ-जहाँ वह मूत्र-पुरीषोत्सर्ग करे, वहाँ हवन—वह रुके तो रुकना और वह जिधर चले, उसके पीछे चलना—इस क्रममें अश्व प्रायः कुछ आगे ही रहता है। अश्वने यात्राका शुभारम्भ किया। वह सर्वप्रथम च्यवनाश्रम जाकर रुका। महर्षि च्यवनने अश्वके साथ कुमार शत्रुघ्नको भी अर्घ्य देकर सबका स्वागत किया।

कुमार शत्रुघ्नने महर्षिसे प्रार्थना की—'आप अयोध्या यज्ञमें पधार कर हमें कृतार्थ करें। श्रीरघुनाथका यज्ञ आपसे तपोधनको यज्ञीय सदस्य पाकर सफल हो।'

महर्षि ने कहा—'कुमार ! यह मेरा सौभाग्य कि मैं श्रीरामके यज्ञमें सदस्य बन सकूँगा।'

महर्षि तो पैदल अयोध्या जानेको प्रस्तुत थे ; किन्तु ! यह हमारे योग्य नहीं था। रथसे महर्षिको भेजा जासकता था ; किन्तु इसमें भी बहुत विलम्ब होता। कुमारने मुझे महर्षिको अयोध्या पहुँचानेका आदेश

दिया। इसी समयसे मार्गमें मिलनेवाले ऋषि-मुनियोंको स्कन्धारूढ़ करके अयोध्या पहुँचाना मेरा कार्य होगया । यह मेरे लिए कुछ क्षणोंका कार्य था ।

श्रीरघुनाथके अश्वको सर्वत्र अर्घ्य ही प्राप्त होगा—यह आशा हमने नहीं की थी । यद्यपि अधिकांश स्थानोंमें उन सर्वेशको सार्वभौम सम्राट् स्वीकार करके राजाओंने अश्वको अर्घ्य दिया, सेना सहित कुमार शत्रुघ्नका सत्कार किया, किन्तु अश्वको अवरुद्ध करनेवाले भी थे और वे उपेक्षणीय नहीं थे । उनमें सब असुर भी नहीं थे। अनेक हमारे आदरणीय मानधनी भी थे। अद्‌भुत भक्त भी थे ।

अश्वको सर्वप्रथम अवरुद्ध किया एकचक्रा-नगरीके एकपत्नीव्रती अनन्य विष्णुभक्त नरेश सुबाहुके युवराज दमनने । युद्ध अनिवार्य होगया । संग्राममें जब भरतलालके पुत्र पुष्कलके प्रहारसे वहाँके युवराज दमन मूर्च्छित होगये, स्वयं सुबाहु युद्धमें आये । मुझे स्वीकार करना पड़ा कि सुबाहु विकट योद्धा निकले । उन्होंने वाणोंसे मेरा अङ्ग-प्रत्यङ्ग विद्ध कर दिया । मैंने उनके सहित उनके रथको लांगूलमें लपेटकर पटक दिया और उनके वक्षपर पाद-प्रहार किया । सुबाहुकी शक्ति धन्य ! वे इतनेपर भी मरे नहीं, केवल रक्तवमन करते मूर्छित हुए ।

मूर्छासे उठते ही सुबाहुने अपने पुत्र दमनको पुकारा—'मूर्ख ! संग्राम विरमित कर ! मूर्छामें मैंने अयोध्या तथा अयोध्याके दूर्वादलश्याम अधीश्वरके दर्शन किये हैं । यज्ञ दीक्षित मृगशृङ्गधारी उन श्रीरामकी मूर्तिमान वेद एवं ऋषिगण स्तुति कर रहे थे ।'

युवराज दमन युद्ध रोककर पिताके पास आये। आनन्दाश्रु बहाते राजा सुबाहु कह रहे थे—"महामुनि असिताङ्गने 'दशरथ-नन्दन श्रीराम परमब्रह्म हैं ।' यह मुझसे कहा था ; किन्तु मुझे विश्वास नहीं हुआ । मैंने तर्क किया तो मुनिने शाप दे दिया कि मुझे तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं होगा । मेरे अत्यन्त दीन होकर अनुनय करनेपर कह दिया कि 'जब तेरे वक्षपर श्रीपवन-पुत्र पाद-प्रहार करेंगे, तब तुझे श्रीरामके स्वरूपका बोध होगा ।' आज मैं आञ्जनेयकी पादरेणुसे पवित्र होगया । युद्ध नहीं, अर्चा करनी है हमें अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके अधीश्वर अयोध्यानाथके अश्वकी । वे हमारे स्वामी, हमारे सम्राट्, यह हमारा सौभाग्य । उनके अनुज मुझे क्षमा करें ।"

सुबाहुने उत्साह पूर्वक सबका साकार किया। मुझे वहाँ बहुत संकुचित होना पड़ा ; क्योंकि बार-बार वह नरेश मेरे पद पकड़ लेता था—'मेरे परमगुरु आप ही मेरे उद्धारक हैं।'

× × ×

अश्वके नर्मदा-तटपर पहुँचनेपर परम श्रीरामभक्त आरण्यक मुनिके सबने दर्शन किये। मुझसे तो वे सहोदर भ्राताके समान भुजा भरकर मिले। उनको भी मैंने सादर अयोध्या पहुँचाया।

अश्व जब देवपुर पहुँचा, वहाँके महाकालके आराधक नरेश वीरमणिके कुमार रुक्माङ्गदने अश्वको बाँध लिया। राजा वीरमणिने अपनी आराधना तथा तपसे भगवान आशुतोषको प्रसन्न करके उनसे प्रार्थना की थी—'आप मेरे समीप रहकर सदा मेरी रक्षा करें।'

सदाशिवने वरदान दे दिया—'श्रीरामके अश्वमेधीय अश्वके आगमन पर्यन्त मैं तुम्हारी रक्षा करता हुआ यहाँ निवास करूँगा।'

यहाँ अश्व अवरुद्ध हुआ तो युद्ध प्रारम्भ हुआ। युद्धमें नरेशके भाई वीरसिंह युद्धमें प्रथम आये ; किन्तु मेरी मुष्टिकाके प्रहारसे वे मूर्छित हो गये। राजा वीरमणिके दोनों पुत्र रुक्माङ्गद एवं शुभाङ्गदको मैंने रथ सहित लांगूलमें लपेटकर पटक दिया। रथ, अश्व, सारथि समाप्त हो गये। दोनों राजकुमार मूर्छित हो गये। इससे भक्तवत्सल पुरारि स्वयं अपने गणोंके साथ युद्धमें उतरे।

प्रलयङ्कर पिनाक धारण करके युद्धमें आखड़े हों तो युद्धकी भयानक स्थितिका वर्णन कैसे सम्भव है। उन महाकाल तथा उनके गणोंके सम्मुख अयोध्याके शूर कुछ काल भी टिके रहे तो उनके शौर्यकी स्तुति ही की जानी चाहिए। उद्भट भट वीरभद्रने त्रिशूलसे भरतलालके पुत्र पुष्कलका मस्तक ही काट दिया। उनकी गर्जनासे उत्तेजित शत्रुघ्नकुमार समरमें आगे बढ़े ; किन्तु साक्षात् रुद्रसे रणमें क्या करते वे ? शीघ्र मूर्छित हो गये। हमारी सेनामें हाहाकार मच गया।

मैं भगवान रुद्रका अंश—उनका सेवक हूँ, यह सत्य होनेपर भी इससे अधिक श्रेष्ठतम सत्य यह है कि मैं श्रीरघुनाथका किङ्कर हूँ। मेरा

कर्तव्य अपने आराध्य अयोध्यानाथकी सेवा हैं। इस विकट स्थितिमें मुझे अत्यन्त क्रोध आया। मैंने महाकालकी भर्त्सना करते कहा—'रुद्र ! सुना तो यह था कि आप श्रीराघवेन्द्रके आराधक हो, फिर श्रीरघुनाथके सेवकोंके विरुद्ध आपने अस्त्र कैसे उठाया ? आपने तो अपने आराध्यके अनुजका ही वध किया !'

भक्तवत्सल भूतनाथ भरित कण्ठ बोले—'हनुमान ! तुम्हारी वाणी असत्य नहीं है। श्रीराम ही मेरे स्वामी, मेरे हृदयधन हैं; किन्तु भक्त अपना स्वरूप होता है। वीरमणि मेरा अनन्य भक्त है, अतएव मुझे उसकी रक्षा करनी ही है।'

विश्वनाथके इस उत्तरने मुझे बहुत उत्तेजित कर दिया। मैंने एक विशाल शिला उनके रथपर पटक दी। उनका रथ अश्वोंके साथ चूर्ण होगया। तब वे वृषभध्वज अपने वृषभपर आरूढ़ हुए। मैंने लांगूलमें उनके नन्दीको लपेटकर कसना प्रारम्भ किया तो वह पर्वतोत्तुङ्ग हिमश्वेत महावृषभ भयके कारण डकराने लगा। अब त्रिलोचन बोले—'मैं तुम्हारे पराक्रमसे परम सन्तुष्ट हूँ। वरदान माँग लो !'

युद्धमें वरदानके रूपमें विजयकी कामना कापुरुष ही कर सकते हैं। मैंने कहा—'मेरे पक्षमें कुमार पुष्कल मृत हैं। शत्रुघ्नदो मूर्छित हैं। मैं इन्हें जीवनदान करनेवाली औषधि लेने जाता हूँ। जब तक मैं लौट नहीं आता, आप अपने गणोंके साथ इन सबकी रक्षा करें।'

शङ्करजीने वचन दिया—'तुम्हारे लौटने तक मैं तुम्हारे पक्षके जीवित, मूर्छित, मृत—सबकी रक्षा करूँगा।'

हिमालयका द्रोणाचल तो मैं ही लङ्काकी संग्राम भूमिसे युद्ध समाप्त होनेपर समुद्रमें डाल आया था। अतः अब दिव्य द्रोणगिरिसे सञ्जीवनी लेने मुझे क्षीरसागर जाना पड़ा। वहाँ उस दिव्य गिरिके रक्षक देवताओंने पूछा—'तुम इस पर्वतको क्यों ले जाना चाहते हो ?'

मैंने कह दिया—'मुझे पर्वतसे कोई प्रयोजन नहीं है। मुझे सञ्जीवनी चाहिए। तुम सब पूरा पर्वत दो या औषधि, अन्यथा मैं बाधा देने वालोंका अवश्य वध करूँगा।'

देवताओंने औषधि दे दी। उसे लेकर मैं लौटा तो उसकी गन्धमात्रसे सब मूर्छित उठ बैठे। उनके व्रण मिट गये। कुमार पुष्कलका मस्तक मैंने कबन्धसे जोड़ा तो वे भी जीवित हो गये।

युद्ध पुनः प्रारम्भ हुआ। राजा वीरमणि जब संग्राममें कुमारशत्रुघ्नके शरोंसे मूर्छित होगये, शूलपाणि शङ्कर पुनः युद्ध करने आगे आगये। मैं जानता था कि सर्व-संहारक शिवको अपने पराक्रमसे सन्तुष्ट ही किया जा सकता है, पराभूत नहीं किया जा सकता। अतः जब मैंने देखा कि कुमार शत्रुघ्न श्रान्त हो रहे हैं, मैंने उन्हें सम्मति दी—'अपने अग्रजका स्मरण करें। अन्य कोई मार्ग इस समय नहीं है।'

कुमार शत्रुघ्नने मेरी सम्मति स्वीकार करली। उन्होंने जैसे ही स्मरण किया, मेरे स्वामी श्रीरघुनाथ मृगशृङ्गधर यज्ञदीक्षित रूपमें प्रकट हो गये। अब जहाँ एक ओर मैं शत्रुघ्नकुमारके साथ उनकी स्तुति करने उपस्थित हुआ, दूसरी ओर सदाशिव भी राजा वीरमणिको लेकर आगये। उन्होंने राजाको श्रीराघवेन्द्रके चरणोंमें डालकर कहा—'यह अपना सम्पूर्ण जीवन आपके श्रीचरणोंमें समर्पित करता है, इसे स्वीकार करें।'

श्रीरघुनाथ सुप्रसन्न बोले—'आपमें और मुझमें तो अन्तर नहीं है। आपके भक्त मेरे ही भक्त हैं। जिसे आपने स्वीकार किया है, जो आपका प्रिय है, वह मेरा परम प्रिय है।'

राजा वीरमणि अब तक मूर्छित थे। भगवान सदाशिवने उन्हें अब कर-स्पर्शसे सचेत किया। राजाने उठते ही सम्मुख श्रीराघवेन्द्रको देखा तो साष्टाङ्ग भूमिपर गिरे—'त्राहि माम्!'

प्रभुने उन्हें उठाया। उन्होंने अपना सर्वस्व प्रभुके चरणोंमें अर्पित कर दिया। प्रभु अन्तर्हित हो गये; किन्तु वीरमणिने अपने युवराजका अभिषेक किया और स्वयं छोटे राजकुमारको भी साथ लेकर हमारे साथ अश्व-रक्षक सेनामें सम्मिलित हो गये।

× × ×

हम सभी अत्यन्त विस्मित हुए जब हमारा अश्वमेधीय अश्व हेमकूटके शिखरपर एक उद्यानमें पहुँचकर ऐसा निश्चल होगया, जैसे पाषाण मूर्ति हो। वह अपनी पूँछ भी हिला नहीं पारहा था। केवल उसके नेत्रोंका कातर भाव कहता था कि वह जीवित है। उसे हिलाने-चलानेके हमारे सब प्रयत्न व्यर्थ हो गये।

शत्रुघ्नकुमारने साथके सब श्रेष्ठ शूरोंको, मन्त्रियोंको बुलाकर पूछा—'अब हमें क्या करना चाहिए ! श्रीरघुनाथके परमपावन यज्ञीय अश्वका गात्र स्तम्भ किस प्रभावसे है ?'

'कोई सर्वज्ञ ही इस प्रश्नका उत्तर दे सकते हैं।' सबने कहा—'अतः किसी योग्य सिद्ध मुनिका अन्वेषण करना चाहिए।'

पता लगा कि महर्षि शौनक इन दिनों समीप ही निवास करते हैं। मैंने मार्ग-दर्शन किया। सभी मेरे साथ महर्षिके समीप गये। महर्षिने हमारा स्वागत किया। हमने प्रणाम किया तो पूछा—'आप सब मेरे समीप कैसे पधारे ?'

'हम विपत्तिसे परित्राणका उपाय जानने आपके श्रीचरणोंमें आये हैं।' कुमार शत्रुघ्नने अश्वके गात्र-स्तम्भका वर्णन किया।

महर्षिने नेत्र बन्द कर लिये। कुछ क्षण मौन ध्यानस्थ रहे। नेत्र खोलनेपर उन्होंने बतलाया—"एक विप्रके अपराधपर ऋषियोंने उसे राक्षस होनेका शाप दे दिया। ब्राह्मणने बहुत अनुनय-विनय की तो शापानुग्रह करके कह दिया कि 'श्रीरामके यज्ञीय अश्वका गात्र स्तम्भ कर लेना। उस समय रामकथा श्रवणसे शापमुक्त हो जाओगे।' यह उसीका उत्पात है।"

महर्षिको प्रणाम करके हम लौटे। अश्वके समीप श्रीराम-कथाका वक्ता बनना पड़ा मुझे, यद्यपि यह कार्य मुझे प्रिय नहीं है। धन्य हैं वे जो रामकथाका सादर श्रवण करते हैं। कथा-श्रवणके समय अश्व हर्षसे हिन-हिनाता रहा। कथा-समाप्तिपर उसका गात्र-स्तम्भ मिट गया। वह आगे चल पड़ा।

× × ×

आशाके सर्वथा विपरीत युद्ध करना पड़ा हमें कुण्डलपुरमें। हमें पता था कि कुण्डलपुरके स्वामी सुरथ अनन्य राम-भक्त हैं। वे नियमपूर्वक नित्य अश्वत्थ तथा तुलसीका पूजन करते हैं। प्रतिदिन रामकथा-श्रवण करते हैं। उनके यहाँ हमारा अश्व पकड़ा गया तो हमें आश्चर्य हुआ। पूछनेपर यह भी ज्ञात हो गया कि यह किसीका प्रमाद नहीं है। अश्व राजाके आदेशसे पकड़ा गया है। नरेशने निश्चय कर लिया है—'श्रीरघुनाथका दर्शन होगा, तभी अश्व छोड़ूँगा।'

उन भक्तश्रेष्ठका कहना था—'मेरे प्रभु मुझे कृतार्थ करने अवश्य पधारेंगे। उनके अनुज आर्त होकर उन्हें पुकारेंगे तो उनसे आये बिना रहा नहीं जा सकता।'

बड़ी अटपटी होती हैं भक्तोंकी भावनाएँ। कुमार शत्रुघ्नने वानर-युवराज अङ्गदको दूत बनाकर भेजा। अङ्गदने राजासे शत्रुघ्नके प्रभावका, मेरे पौरुषका वर्णन करके कहा—'राजन्! भावुकतामें मत पड़ो। सोच-समझकर निर्णय करो।'

सुरथ हँसे—'अङ्गद! मैं जानता हूँ कि व्यक्तिका बल कितना तुच्छ है। मेरे प्रभु करुणावरुणालय हैं। मेरे समीप उनकी कृपाका ही सहारा है। मैं क्यों अपना क्षत्रियधर्म त्याग करूँ? जब तक वे स्वयं नहीं पधारते, मैं अश्व नहीं दूँगा। मैं भी आप सबके समान उनके पादपद्मोंका दास हूँ। वे पधार कर मुझे कृतार्थ करेंगे, यह मेरा विश्वास है। वैसे आप, श्रीआञ्जनेय बलवान हैं। मुझे पराजित करके बाँधकर या मारकर अश्व ले जायँ।'

यह उत्तर सुनते ही मैं समझ गया कि कुछ करो, यहाँ पराजय सुनिश्चित है। जब कोई भावुक हृदय श्रीरघुनाथके चरणोंके सहारे अड़ जाता है, उसे पराजित कर पाना कभी सम्भव हो नहीं सकता। बहुत अप्रिय कार्य करना था यहाँ—अपने आराध्यके ही अनन्य भक्तसे युद्ध करना। मैं कर्तव्य-विवश था; किन्तु प्रारम्भमें ही कह दूँ कि इस संघर्षके किसी भी क्षणमें मुझमें पूरा उत्साह नहीं आया। मैं विवश ही युद्ध करता रहा।

युद्ध आरम्भ हुआ। मैं वहाँके राजकुमार चम्पकसे युद्ध कर रहा था। चम्पक निपुण धनुर्धर निकला। उसने अपने बाणोंसे मेरी फेंकी शिलाओंको चूर्ण कर दिया। मैंने उसका पैर पकड़ा और आकाशमें ले गया। फिर पैर पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया तो वह मूर्छित हो गया।

पुत्रके मूर्छित होते ही पिता मेरे सम्मुख आये। उन राजा सुरथने आते ही ललकारा—'हनुमान! तुम श्रीराम-चरण-चिन्तक हो; किन्तु मैं भी उन्हींका दास हूँ। मैं आज तुम्हें बाँधकर अवश्य नगरमें ले जाऊँगा।'

मैंने हँसकर कह दिया—'राजन्! तुम ऐसा कर भी लो तो मेरे करुणानिधानको अपने सेवकोंको मुक्त करना आता है। तुम अपनी प्रतिज्ञा

सत्य करो। अपनी इच्छा पूर्ण करो। श्रीरघुनाथका स्मरण समस्त सङ्कटोंसे परित्राण देनेवाला है।'

मुझ वायुपुत्रको बन्दी बना लेना किसीके लिए सरल नहीं है। मैंने संग्रामके प्रारम्भमें ही सुरथका रथ उठाकर अस्सी धनुष दूर फेंक दिया। उसके अश्व-सारथि सब समाप्त हो गये; किन्तु इस स्थितिके सम्बन्धमें नरेश सावधान थे। अविलम्ब दूसरा रथ उनके लिए आ गया। इस प्रकार उनके ऊनचास रथ मैंने नष्ट किये। राजाके करोंसे झपटकर अस्सी धनुष तोड़ फेंके; किन्तु सुरथका उत्साह अदम्य था। जब उनके दिव्यास्त्रोंका भी मुझपर प्रभाव नहीं पड़ा, उन्होंने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। मैंने लङ्कामें मेघनादके ब्रह्मास्त्रका सम्मान सकारण रखा था। सर्वदा मैं उसे सम्मानित ही करूँ, यह आवश्यक नहीं है। मैंने उसे हँसकर मुखमें रख लिया।

ब्रह्मास्त्रके व्यर्थ हो जानेपर भी सुरथ हताश नहीं हुए। उन्होंने रामास्त्रका सन्धान किया। अब मेरे समीप उपाय नहीं था। इस अस्त्रसे प्रकट हुए पाशने मुझे बाँध लिया। मैंने सुरथसे कहा—'राजन्! तुमने मेरे स्वामीके अस्त्रसे ही मुझे आबद्ध किया है। मैं इसका सम्मान करूँगा।'

रामास्त्रका सम्मान करके मैं मूर्छित हो गया। मेरे मूर्छित हो जानेपर जो भी सम्मुख आया, सुरथने सबको मूर्छित कर दिया। पुष्कल, सुग्रीव, अङ्गद. जाम्बवन्त, शत्रुघ्नादि सबको मूर्छित करके उनको रथमें लेकर सुरथ अपने नगरमें लौट गये।

वहाँ राजसभामें जब मुझे बन्दी रूपमें उपस्थित किया गया, मेरी मूर्छा दूर हो चुकी थी। राजा सुरथने कहा—'हनुमान! अब अपने मुक्ति-दाताका स्मरण करो।'

मैंने इधर-उधर देखा। हमारे पक्षके सभी प्रधान योधा वहाँ बन्दीके रूपमें खड़े थे। मैंने प्रभुका स्मरण किया—'मेरे स्वामी! आपने सबको बन्धन-मुक्त किया है। अपने स्वजनोंकी आज सुधि लें!'

मैं प्रार्थना कर ही रहा था कि आकाशमें प्रणव-ध्वनि करता प्रकाश-पुञ्जके समान पुष्पक विमान प्रकट हुआ। विमान उतरा तो उससे लक्ष्मणलाल, श्रीभरत एवं ऋषिगणोंके साथ श्रीरघुनाथ उतरे।'

मैंने सुरथसे कहा—'राजन्! मेरे मुक्तिदाता आ गये।'

राजा सुरथने हम सबको बन्धन-मुक्त करनेका आदेश दिया और स्वयं दौड़कर प्रभुके सम्मुख पृथ्वीमें गिरा । भक्तवत्सल रघुनाथने उसे उठाया । सुरथने पीछे मुझसे कहा था—'श्रीराघवेन्द्रने मुझे चतुर्भुज रूपमें दर्शन दिये ।'

सुरथने क्षमा माँगी तो प्रभुने सस्मित कहा—'राजन् ! तुमने क्षत्रिय धर्मका ठीक पालन किया है । धर्मका मैं परमप्रभु हूँ । प्राणी स्वधर्मका सम्यक् पालन करके मेरी आराधना ही करता है । मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ ।'

यहाँके संग्राममें जो मारे गये थे, दोनों पक्षोंके शूर प्रभुकी अमृत दृष्टिके पड़नेसे जीवित हो गये । आहत स्वस्थ हो गये । राजा सुरथका सत्कार स्वीकार करके श्रीरघुनाथ अपने साथ आये लोगोंके साथ पुष्पकमें बैठकर अयोध्या पधारे ।

× × ×

कुण्डलपुर-नरेशका अभिनन्दन ग्रहण करके जब अश्व चला, उसे सब कहीं सत्कार ही प्राप्त होता रहा । हमने समझ लिया कि अब कहीं कोई अश्वको अवरुद्ध नहीं करेगा । अश्व लौट रहा था । अयोध्या बहुत दूर नहीं रह गयी थी । लेकिन महर्षि वाल्मीकिके आश्रमके समीप अश्वको एक कुमारने पकड़ लिया । हम सबको आश्चर्य हुआ । वही नवदूर्वादिल श्याम अङ्ग, विशाल बाहु, पद्मदलापतेक्षण—जटाजूट देखकर हम सबने उन्हें मुनिकुमार समझा था । मुनिकुमार भी धनुष, त्रोण रखते देखे गये हैं । हमारे सेवक ने उन अल्पवयस्कको देखकर समझा कि इन्होंने बाल-चापल्यवश अश्व पकड़ा है । वे आगे बढ़े तो उन कुमारने, जिनका नाम पीछे पता लगा कि लव है, चेतावनी दी—'इस अश्वको मैंने बाँधा है ! इससे दूर रहो ! इसे छुड़ानेका प्रयत्न करने वाला मारा जायगा !'

सेवकोंने इस चेतावनीकी ओजस्वितापर ध्यान नहीं दिया । वे आगे बढ़े तो बालक लवके बाणोंने उनकी भुजाएँ काट दीं । अब सबको उस बालकके शौर्यपर ध्यान देना पड़ा । शत्रुघ्नकुमारने सेनापति काल-जितको भेजा । लवने स्पष्ट कह दिया—'अश्व मेरे लिए अनुपयोगी है । हम अरण्यवासी अश्वारूढ़ नहीं होते । किन्तु इसके मस्तकपर जो स्वर्ण-पत्र बंधा है, जिसमें शूरोंके शौर्यको चुनौती दी गयी है, उसके रहते मैं अश्व नहीं छोड़ूँगा । स्वर्णपत्र खोल दो और अपना अश्व ले जाओ !'

ऐसी अवस्थामें युद्ध अनिवार्य हो गया। लवके साथ युद्धमें ही हमारे बहुत-से शूर मारे गये। पीछे तो उनके ही समान वय, वर्ण वाले उनके अग्रज कुश भी अनुजकी सहायता करने आ पहुँचे। कुमार शत्रुघ्न तक जब मूर्छित हो गये, तब मैंने लवको लांगूलमें लपेटा और गगनमें उड़ा। मैं दूसरे युद्धोंमें यह कर चुका था; किन्तु गगनमें लवने कहा—'माँ' और मेरी पूँछपर मुष्टि-प्रहार किया। मेरे वक्षपर कुम्भकर्णने तथा दशग्रीवने भी लङ्काके युद्धमें पूरी शक्तिसे घूसा मारा था; किन्तु उससे मैं वैसा व्याकुल नहीं हुआ था जैसा बालक लवकी मुष्टिका पूँछपर लगनेसे हुआ। मुझसे छूट गये लवने मेरी व्याकुलताका लाभ उठाया और उनके शराघातसे मैं मूर्छित हो गया।

इस युद्धका वर्णन कर पाना मेरे लिए भी कठिन है। स्वयं भगवान पिनाकपाणि प्रलयङ्कर भी दो बालक बनकर संग्राम करते होते तो इतने अविसह्य कदाचित नहीं होते। लव या कुशमें किसी एकको मूर्छित करके भी हमारे दलको केवल दूसरे भाईकी प्रचण्ड वाणवृष्टि ही प्राप्त होनी थी। शत्रुघ्नकुमारके मूर्छित होनेपर अयोध्या समाचार भेजना पड़ा। वहाँसे ससैन्य लक्ष्मणलाल आये और जब वे भी रणभूमिमें मूर्छित होकर गिरे, श्रीभरतको आना पड़ा। उनकी भी दोनों बालकोंने यही अवस्था करदी। अन्तमें स्वयं श्रीरघुनाथ पधारे; किन्तु मर्यादा-पुरुषोत्तम यज्ञ दीक्षित थे। उन्होंने धनुष नहीं उठाया। वे केवल बालकोंको देखते रहे, फिर अपने रथपर ही उत्तरीय ओढ़कर सो गये। यह दूसरी बात है कि बालकोंने उन्हें भी मूर्छित मान लिया।

मैं अपनी क्या कहूँ? मैंने संग्राममें बहुतोंको उठाकर आकाशमें ले जाकर पटक दिया था। मुझे अपने पौरुषपर गर्व था; किन्तु दोनों भाईयोंने वाण मारकर मुझे और वानरेन्द्र सुग्रीवको भी ऊपर उछाल दिया। वे बराबर वाण मारते रहे। हमारे अङ्ग-अङ्ग विद्ध होगये। हम ऊपर ही चक्कर काटनेको विवश थे। नीचे प्रयत्न करके भी हम नहीं आ पाते थे। अन्तमें जब वानरेन्द्र सुग्रीवके मुखसे आर्तनाद निकला, दोनों भाइयोंने दया करके प्रहार बन्द किया। हम दोनों भूमिपर गिरकर मूर्छित हो गये।

दोनों भाई सम्यक् विजय प्राप्त करके मुझे बाँधकर अश्वके साथ जब आश्रमको ले चले, मुझे मार्गमें चेतना प्राप्त हो गयी; किन्तु मेरा

समस्त शरीर आघात जर्जर था। मुझे भली प्रकार बाँधा गया था। मैं कुछ करने या बोलनेमें असमर्थ था। दोनों भाई जब आश्रम पहुँचे, कुमार कुश अश्व तथा मुझे लेकर खड़े रहे। लव दौड़ गये एक उटजमें। उन्हें मैंने उत्साह भरे स्वरमें कहते सुना—'माँ! कोई अयोध्याका नरेश राम है। उसने गर्वमें आकर अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया है। समझता है कि संसार शूर-शून्य हो गया है। तुम स्वयं चलकर उसके यज्ञीय अश्वके सिरपर बँधा स्वर्ण-पट्ट पढ़ देखो!'

'तुमने उस अश्वको पकड़ा है?' उटजमें-से जो स्वर आया, वह भी क्या पहिचाननेकी अपेक्षा करता है? मेरा हृदय मचल उठा—'मेरी अम्बाका स्वर? तो अम्बा यहाँ हैं? ये दोनों कुमार उनके हैं? मेरे स्वामी श्रीरघुनाथके कुमार? इनकी अङ्ग-छवि, इनका शौर्य, इनका स्वर—हनुमान तुझे धिक्कार है कि तूने इन्हें देखते ही पहिचान नहीं लिया।'

मुझे अब अपनी पराजयका कोई खेद नहीं था। मेरी वेदना लुप्त हो चुकी थी। मेरे अङ्ग बन्धनमें न होते तो मैं अम्बाके चरणोंमें पड़ जानेको दौड़ गया होता; किन्तु अब तो स्वयं उनको आकर मुझे मुक्त करना था। मुझे हर्ष था—हम अयोध्याके पार्श्वमें आकर पराजित हुए—सम्पूर्ण पराजित भी हुए तो ऐसे करोंसे हुए कि हमारी पराजय विजयसे शत गुणित श्रेष्ठ है।

'हम दोनों भाइयोंको डटकर युद्ध करना पड़ा है।' कुमार लव उत्साहमें उच्च स्वरसे कह रहे थे—'हमने रामकी सब सेना तथा उसके तीन भाइयोंको मार दिया है। वह स्वयं रथमें मूर्छित पड़ा है या मर गया—कह नहीं सकता। उसकी सेनाके सबसे उपद्रवी कपिको हम अश्वके साथ बाँध लाये हैं।'

'हाय! तुमने मुझे विधवा बना दिया! वह तुम्हारे पिताका अश्व है!' अम्बाने आर्तनाद किया। सम्भवतः वे मूर्छित हो गयीं। सम्भवतः कुमार लव किंकर्तव्यविमूढ़ स्तब्ध नीरव खड़े रह गये। कुछ क्षणोंमें अम्बाका स्वर पुनः सुनायी पड़ा—वेदना विह्वल स्वर—'वह कपि कहाँ है?'

अत्यन्त शिथिल पद अम्बाको मैंने उटजसे निकलते देखा। लव अब शान्त, उदास उनके आगे आ रहे थे। अम्बाने आकर स्वयं मेरे बन्धन

खोले। दोनों कुमारोंने उनकी सहायता की। मैंने छूटते ही उनके पावन पदोंपर मस्तक रखा तो वे अत्यन्त व्यथित स्वरमें बोलीं—'हनुमान ! इन बालकोंने जो अपराध किया, उसे क्षमा कर दो ! अब तो इन्होंने मुझे भी अनाथ बना दिया है।'

'अम्बा !' मैं उठ खड़ा हुआ—'कौन कहता है कि समस्त सृष्टिकी आश्रयदात्री मेरी अम्बा अनाथ हैं। संग्राममें मूर्छित अथवा मृत तो क्षणोंमें जीवन प्राप्त करेंगे। यदि शक्र सुधावृष्टि करके यह नहीं करते तो उनको सन्मार्गपर लानेकी शक्ति रखने वाले तो आपके तीन पुत्र आपके सम्मुख हैं।'

'माँ ! इन्द्रके पास अमृत है न ?' कुमार लवने धनुषपर ज्या चढ़ा ली।

'अब किसीसे युद्ध नहीं !' अम्बाने रोका—'महर्षिको सूचना दे दो। वे उचित कार्यका निदेश करेंगे।'

आदिकवि प्राचेतस महर्षि वाल्मीकि सूचना पाते ही आ गये। वे स्वयं मेरे साथ युद्ध भूमिमें पधारे। श्रीरघुनाथ महर्षिके आनेपर उठ गये। उनकी दृष्टिने ही मूर्छितोंको सचेत तथा मृतोंको जीवित कर दिया। सुधाकी हमें कोई आवश्यकता नहीं हुई ; किन्तु अम्बा एवं उनके दोनों कुमार हमारे साथ अयोध्या नहीं आये। उन्हें महर्षि ले आने वाले थे। अश्वमेधीय यज्ञका अश्व लौट आया। यज्ञ उसके आगमनसे आरम्भ हो गया। उसे पूर्ण होना था—हुआ।

———

४४—मेरा वरदान

अयोध्याका अभाग्य—अम्बा अयोध्याके नागरिकोंके अपराधसे ही उन्हें पुनः प्राप्त नहीं हुई । महर्षि वाल्मीकि उनको दोनों कुमारोंके साथ ले आये थे । अश्वमेध यज्ञके विशाल मण्डपमें कुमारोंके मुखसे आदिकाव्य रामायणका गान सबने सुना—सबने साश्रुलोचन विमुग्ध सुना ; किन्तु जब उस काव्यके प्रणेता परम तापस प्राचेतसने खड़े होकर दोनों भुजाएँ उठाकर अपने तप एवं व्रतकी शपथ लेकर भगवती-भूमिजाकी शुचिता सूचित की, एक भी उन अमिततेजाका अनुमोदक नहीं उठा । एकके कण्ठसे नहीं निकला—'हमारी महाराज्ञी परम पावन हैं ।'

मर्यादा-पुरुषोत्तमके अनुज एवं मुझ-से सेवक कैसे बोलते ? हम तो सम्राट्के अभिन्न अङ्ग—हमारे बोलनेका अर्थ था कि स्वयं श्री रघुनाथ बोलते हैं । बोलना चाहिए था प्रजाके प्रतिनिधियोंको, मन्त्रियों को, ऋषि-मुनियोंमें-से किसीको । प्रजा-प्रतिनिधियोंको साँप सूंघ गया था । पता नहीं, भगवान प्राचेतसके प्रतिज्ञापूर्वक किये गये प्रवचनके उपरान्त और किस बातकी आशा सब कर रहे थे ।

शपथ—भगवती भूमिजासे सबके सम्मुख अपनी शुचिताकी शपथ करनेको कहा गया ? उनका कोई सम्मान नहीं था ? श्रीरघुनाथकी अभिन्न सहचरी, पावनताकी अधिदेवतासे आशा की गयी कि वे अपनी पवित्रता शपथ द्वारा सिद्ध करें ?

उन्होंने शपथ की—अपनी पावनता सिद्ध की सबके सम्मुख; किन्तु जैसे, जिस रूपमें सिद्ध की, वह उन महिमामयीके ही अनुरूप था । अब सब सिर धुनो ! अपनी पावनताका प्रमाण समेटो ! उन पृथ्वी-पुत्रीके पाद-पद्मोंकी छायाको छूनेका भी अधिकार किसीको कहाँ रह गया था ?

अम्बाने जब प्राचेतसाश्रममें मुझे अपने कुमारोंके बन्धनसे मुक्त किया था, तभी आशीर्वाद दिया था—

[तमाह जानकी प्रीता] यत्र कुत्रापि मारुते !
स्थितं त्वामनुयास्यन्ति भोगाः सर्वे ममाज्ञया ॥

(अध्यात्मरामायण ६.१७.१५-१६)

'मारुति ! वत्स ! तुम अब जहाँ कहीं भी रहोगे, तुम्हारे लिए आवश्यक सब भोग तुम्हारी सेवामें तुम्हारे पीछे वहीं पहुँचेंगे, यह प्रकृतिके क्षेत्रमें मेरा आदेश है।'

उन वात्सल्यमयी सर्वेश्वरी सर्वज्ञाको अपने इस वानरपुत्रका उस समय भी इतना ध्यान था। वे चिन्मयी—वे जानती थी कि अब इस धरापर अपने आराध्यके साथ उनके रहनेका समय समाप्त हो गया है।

अपनी नित्यशक्ति, अपनेसे सर्वथा अभिन्ना श्रीमैथिलीके अन्तर्हित होनेपर श्रीरघुनाथ अपने व्यक्त रूपसे धरापर रह सकते थे ? उनको अवतार-लीलाका उपसंहार करना था। उन्हें जो अभीष्ट था, उसके निमित्त उनकी इच्छासे, उनके ही सङ्कल्पसे उपस्थित हुए।

वे अनन्त करुणावरुणालय—उन्होंने किसीका अपराध देखना कभी जाना ही नहीं। मेरे स्वामी इसीलिए उत्तमश्लोक हैं कि जीवका कुछ अपराध कोई अपकर्म भी है, इसपर उनकी दृष्टि ही नहीं जाती। वे देखने लगें—अनन्त काल भी जिनकी दृष्टिका आवरण बननेमें सफल नहीं होता, वे सर्वज्ञ देखें तो कोई जीव कभी निरपराध, निष्कलमष, उनकी कृपाका अधिकारी सिद्ध होगा ? किसीका उद्धार कभी सम्भव हो सकेगा ?

उन्होंने तो भगवती भूमिजापर लाञ्छन लगाने वाले, उसका मौन अथवा शाब्दिक अनुमोदन करने वालोंके भी अपराधपर दृष्टि नहीं डाली। उन्हें भी उन्होंने अपने सङ्ग अपने उस स्वधाम-गमनमें रखा, जो दिव्य साकेतधाम शत-सहस्र जन्मकी साधनासे भी योगियोंको अगम्य रहता है।

पृथ्वीपर श्रीरघुनाथके इस अवतार-कालमें जिन्होंने भी उन आनन्दकन्दके दर्शन किये थे, उनकी पादरेणुका स्पर्श प्राप्त किया था, किसी भी प्रकारसे—द्वेष, ईर्ष्यादि किसी भी प्रकारसे उनके संसर्गमें

आये थे, उन सबको—पशु, पक्षी, कीटादि सचर प्राणियोंको ही नहीं, लता, पादप, क्षुप, तृणादि अचरको भी अपने साथ ले लिया। सब उनके साथ उनके धाम गये।

केवल कुछ रह गये कारण विशेषसे। वे रह गये जिन्हें उन सर्वेश्वरेश्वरने कोई आदेश दिया था अथवा जिन्होंने उनसे कुछ माँगा था। जैसे—

श्रीरघुनाथके दोनों कुमार लव-कुश तथा तीनों भाई भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्नके भी दो-दो कुमार रह गये। इन्हें प्रभुने विभिन्न राज्योंपर अभिषिक्त कर दिया। इनको प्रजाका पालन करना था।

इन कुमारोंकी सहायता, संरक्षणके लिए रघुकुल-गुरु महर्षि वशिष्ठके पौत्र महर्षि पराशरको धरापर रहना पड़ा। महर्षि वशिष्ठ तो कारक पुरुष हैं। वे सृष्टिकर्ताके साक्षात् पुत्र पृथ्वी अथवा ब्रह्मलोकमें कहीं भी कल्प पर्यन्त रहनेको स्वतन्त्र ही है। मन्त्रि प्रवरसुमन्त्रके पुत्रको भी कुमारोंकी सहायतार्थ रहना पड़ा।

ऋक्षराज श्रीजाम्बवन्तजी रह गये। लङ्काके युद्धमें भी उनको अपना उचित प्रतिद्वन्द्वी नहीं मिला था। उन्होंने प्रभुसे प्रार्थना की भी तो भक्त वाञ्छा कल्पतरुने कह दिया था—'आप प्रतीक्षा करें! द्वापरान्तमें अवतीर्ण होकर मैं स्वयं आपको द्वन्द्व-युद्धसे सन्तुष्ट करूँगा।'

अपनी उच्छ्रृङ्खलतासे द्विविद श्रीलक्ष्मणलाल द्वारा प्रशप्त होचुका था लङ्काकी रणभूमिमें युद्धान्तके अवसरपर। जैसे इस रूपमें श्रीरघुनाथका अपने सेवक जाम्बवन्तसे द्वन्द्व-युद्ध अशोभनीय होता; वैसे ही श्रीलक्ष्मण स्वयं द्विविदका वध करते, यह भी अशोभन था। अतः उसे भी रहना पड़ा। भगवान अनन्त द्वापरमें अपने हाथसे मारकर उसे मुक्त करने वाले थे।

मैं स्वेच्छासे ही रह गया। मेरे परमोदार स्वामीने इस सेवकसे कुछ छिपाया नहीं था। भगवती भूमिजाके भू-प्रविष्ट होनेके पश्चात् एकान्तमें उन्होंने मुझसे कहा—'पवन-नन्दन! तुम ज्ञानियोंके अग्रगण्य हो। कोई शोक-मोह तुम्हारा स्पर्श नहीं करता। तुम समझते ही हो कि अब मेरे इस व्यक्त स्वरूपसे धरापर रहनेका काल समाप्त होगया। मैं चाहता था

कि मेरे भक्तोंका, मेरे नामका जप करने वालोंका संरक्षक बनकर, उनके विघ्न-विपत्तिके विदारक बनकर तुम धरापर रहते ; किन्तु तुम स्वयं जैसा चाहो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है ।'

अपने संकोचीनाथ स्वामीका स्वभाव, शील मैं जानता हूँ । उनकी इच्छा ही मेरे लिए परमकरणीय है। वैसे भी अब उनकी साक्षात् सन्निधिकी अपेक्षा मैं उनकी कथा-श्रवणमें ही पर्याप्त समयसे रहने लगा था । मुझे इस कथा-श्रवणका रस प्राप्त हो गया था । मैंने प्रार्थना की—

"यावद्राम कथा वीर चरिष्यति महीतले ।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः ।।"

[वाल्मीकीय रा० ७.४०.१०]

स्वामी ! जब तक आपकी भुवनपावनी कथा पृथ्वीपर रहे, तब तक मेरे इस शरीरमें भी प्राण निवास करें ! आपकी कथा-सम्बलके सहारे मैं भूमिपर बना रहूँ ।

मेरे दयाधाम प्रभुने मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करली । अतः मैं पृथ्वीपर ही रह गया ।

४५—मैं निमित्त बना गर्व-हरणमें

'हनुमानजी ! आप तो अमर हैं । द्वापरमें भी रहे हैं । द्वापरमें भी आपने कुछ किया ही है, और किया तो है इस कलियुगमें भी । आप अपन द्वापरकी, कुछ कलियुगकी कथा भी तो हमको सुनावेंगे ?' रघुवंशमें उत्पन्न बालकोंको केवल अपने कुल-पुरुष मर्यादा पुरुषोतमके समयका ही चरित नहीं सुनना था । वे तो आज मुझे वानरका चरित सुननेको समुत्सुक थे । अतः मुझे समाप्तिका उपक्रम करते देखकर उन्होंने बाधा दी । जब इन बालकोंके आग्रहसे मैं इतना सुना गया तो कुछ और सही । नेमैं द्वापरान्तकी कथाएँ भी प्रारम्भ कीं ।

मेरे स्वामी श्रीरघुनाथ रूपमें अयोध्यानाथ रहें अथवा यदुनाथ रूपमें श्रीद्वारिकाधीश बनें, वे गर्वहारी हैं। उन्हें अपने जनोंमें, अपने आश्रितोंमें गर्वकी गन्ध भी सह्य नहीं है। जब उन्होंने कुमार लवको निमित्त बनाकर मेरे बलगर्वको नष्ट करनेमें ही कुछ उठा नहीं रखा तो दूसरेका दर्प भला वे कैसे सहन कर सकते हैं। द्वारिकेश बननेपर उन्होंने एक दिन मुझे ही निमित्त बनाया अपने अत्यन्त अन्तरङ्ग परिकरोंके गर्वहरणमें।

साक्षात् यज्ञेश वाहन पक्षिराज गरुड़को गर्व होगया था कि मेरी शक्ति, मेरे पराक्रम तथा मेरे वेगकी समता नहीं है। वे द्वारिकामें प्रायः कह देते थे—'मैंने समस्त सुरोंको पराजित करके सुधा-कुम्भका आहरण किया था। शक्रका वज्र मेरे शरीरपर व्यर्थ होगया। उस अमोघास्त्रका सम्मान करनेके लिए मैंने अपना एक पंख स्वेच्छासे गिरा दिया था। स्वयं भगवान विष्णु संग्राम करके सन्तुष्ट हुए मुझसे। वरदान मैंने दिया उनको और वरदानके कारण मैं उनका वाहन हूँ। अन्यथा वे मुझे अपना सखा समझते हैं।'

अपनोंको सम्मान देना मेरे स्वामीका सहज स्वभाव है। यही वे अयोध्यामें करते थे। हम कपियोंको, जो उनके श्रीचरणोंकी सेवाके भी सचमुच अधिकारी नहीं थे, राससभामें भी सबके सम्मुख सखा ही कहते थे। उनका स्वभाव मयूरमुकुट धारण मात्रसे तो परिवर्तित नहीं होता था। यहाँ श्रीद्वारिकाधीश बनकर भी वे वैसे ही थे। गरुड़को वे सखाका सम्मान देते थे। इस प्रकार सर्वेशसे सम्मानित होकर अज्ञ-जीव भ्रान्त हो उठे, उसे गर्व हो जाय तो अपने उस आश्रितको सत्पथपर लाना वे गर्वहारी जानते हैं। यह उन करुणा-वरुणालयका कृपापूर्ण दायित्व है, जिससे जीव भटक न जाय।

यही गर्व होगया था चक्रको भी। वे भी कहने लगे थे—'महर्षि दुर्वासा भले शिवांश सम्भूत हों और परम तापस हों, मैं जब उनके पीछे दौड़ा तो उन्हें सृष्टिकर्ता तो क्या शरण देते, स्वयं दुर्वासाजी जिनके अंश थे, वे प्रलयङ्कर शिव भी शरण देनेका साहस नहीं कर सके। मैंने दुर्वासाका अमरत्व समाप्त कर दिया होता—वे समझते नहीं कि चक्रकी शक्ति अनन्त है। उस दिन अम्बरीष मेरी स्तुति करने लगे, तब मैं शान्त होगया।'

अब यदि मेरे लीलामय स्वामीने इन अपने अत्यन्त प्रिय परिकरोंका गर्वहरण करनेके लिए मेरा स्मरण किया तो यह उनके स्वभावके सर्वथा

अनुकूल था। मुझे गरुड़ तथा चक्रके गर्वकी बात इसी दिन उद्धवजीने बतलायी। उद्धवजीने हँसते हुए एक महारानीके गर्वकी बात भी सुनादी। उसे मैं आगे सुना रहा हूँ। मैं तो मन्दराचलपर था। अचानक लगा कि मेरे अन्तर्यामी स्वामी मेरा स्नेहपूर्वक स्मरण कर रहे हैं, अतः मैं द्वारिका आगया।

द्वारिका पहुँचते ही लगा कि मेरे हृदयमें ही स्थित वे हृषीकेश कह रहे हैं—'पवनपुत्र ! बहुत दिन हो गये तुम्हें मेरे अपने उद्यानमें स्वच्छन्द आहार किए। द्वारिकाका मेरा फलोद्यान कब सफल होगा ? तुम इसे कृतार्थ करो।'

मैं उद्यानमें प्रविष्ट होगया। स्वच्छन्द रूपसे फल खाने लगा। उद्धवजीने मिलनेपर कहा था—'उद्यानके प्रहरी श्रीद्वारिकाधीशके समीप पहुँचे थे। उन्होंने कहा था—कहींसे एक स्वर्णरोमा विकटाकार विशाल कपि आगया है। हमने रोकना चाहा; किन्तु वह अत्यन्त भयानक है। हम समीप जानेका साहस नहीं कर पाते। वह फलोद्यानके फलोंको आधा, चौथाई खाकर फेंक देता है। कूद-कूदकर शाखाएँ ध्वस्त कर रहा है। फलोद्यान नष्ट हो रहा है।'

उद्धवजीका कहना था—'उद्यान-रक्षकोंकी बात सुनकर भगवान वासुदेव बहुत उल्लसित दीखे। मन्दस्मितके साथ ही उन्होंने गरुड़को कह दिया—एक वानर राजोद्यानमें आकर उद्यान-विटप नष्ट कर रहा है। उसे पकड़ लाओ। इन लीलामयका हास्य उन्मादकारी माया है, यह मैं जानता हूँ। मायाका प्रभाव न होता तो गरुड़ इतना अवश्य जानते थे कि द्वारिकाका फलोद्यान नष्ट नहीं हो सकता और न यहाँ श्रीद्वारिकाधीशके विद्यमान कोई रहते दुस्साहस करेगा। जिसके उपद्रवको सुनकर स्वामी उल्लसित हैं, उसे पकड़ने नहीं, केवल प्रणाम करने जाया जा सकता है।'

उद्धवजीकी बात ठीक है। यह कोई लङ्काकी दशग्रीवकी अशोक वाटिका नहीं थी कि मेरे कूदनेसे ध्वस्त होजाती। क्या अन्तर पड़ता था मेरे फल खाने अथवा कुछ शाखाओंके टूट जानेसे। अयोध्याके राजोद्यानके समान यहाँ भी तो सब कल्पतरुका प्रभाव रखने वाले पादप ही थे। वे मेरे खा लेने, कुतरकर फल फेंक देनेके दूसरे ही क्षण स्वतः फलोंसे लदते जारहे थे। टूटी शाखाओंका स्थान उनसे सुन्दर सुडौल शाखाएँ तत्काल ले रही थीं। उद्यानकी चिन्ता अकारण थी। मेरे प्रभुने मुझे स्वतन्त्र आहारका आमन्त्रण दिया था।

गरुड़ आये। मुझसे डाँटकर बोले—'वाटिका क्यों नष्ट कर रहा है ?'

गरुड़का स्वर मुझे अप्रिय लगा। मैंने उपेक्षापूर्वक कह दिया—'मैं वानर हूँ। अपने स्वभावके अनुसार आहार कर रहा हूँ।'

'चल, तुझे महाराज बुलाते हैं।' गरुड़ने आदेश दिया।

आदेश किसीका—अपने स्वामीके अतिरिक्त किसीका सुनना मेरा स्वभाव ही नहीं है। मैंने कहा—'महाराजसे मुझे क्या काम ? मैं नहीं जाता तुम्हारे महाराजके समीप।'

मुझे गरुड़का गर्व नष्ट करना है, यह अपने अन्तर्यामीका संकेत मैं समझ गया। अतः जब उन्होंने कहा—'चलता है या नहीं ! जानता नहीं कि मेरा नाम गरुड़ है !' तब मैंने भी कह दिया—'मैंने बहुत चिड़िया देखी हैं।'

गरुड़ कुछ ऊटपटांग बकते हैं, इसपर ध्यान देनेकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं थी। कुछ क्षण मैं उनके झपटनेको भी बचाता रहा, फिर मैंने उन्हें अपनी पूँछमें लपेटकर कसा तो छटपटाने लगे। पूँछका बन्धन मैंने तनिक कड़ा किया तो गरुड़के लिए वह असह्य हो गया। नम्रतापूर्वक बोले—'मेरी धृष्टता क्षमा कर दो !'

मैंने गरुड़को छोड़ दिया। वे नम्रतापूर्वक बोले—'श्रीद्वारिकाधीश श्रीकृष्णचन्द्रने तुमको स्मरण किया है। मेरे साथ चलो।'

'मेरे स्वामी श्रीराम हैं। श्रीकृष्णसे मेरा क्या काम ?' मैंने जाना स्वीकार नहीं किया।

गरुड़ने कहा—'श्रीराम और श्रीकृष्ण दो नहीं हैं। श्रीराम ही इस युगमें श्रीकृष्ण बने हैं, इतना जानते हो ?'

'जानता हूँ।' मैंने स्वीकार करके भी जाना स्वीकार नहीं किया—'तुम्हारी बात ठीक होनेपर भी, ठीक यह है कि मेरा मन धनुर्धर श्रीराममें लगा है। अन्यथा तो समस्त चराचर वे ही हैं। मैं उनके अन्य रूपकी सेवामें नहीं जाऊँगा।'

'चलना तो तुम्हें पड़ेगा ही !' गरुड़ क्रोधपूर्वक बोले।

'झगड़ा मत करो।' मैंने उन्हें समझाया—'मुझे फल खाने दो। तुम पक्षी होकर भी यह क्यों नहीं समझते हो कि फलोंपर पक्षियोंका और वानरों, गिलहरियोंका सहज नैसर्गिक स्वत्व है !'

गरुड़ अब मुझे पकड़नेका यत्न करने लगे। मैंने फिर कहा—'तुम मानोगे नहीं ?' जब वे फिर भी नहीं माने तो मैंने उन्हें पकड़कर फेंक दिया धीरेसे। वे समुद्रमें जाकर गिरे।

उद्धवजीने ही बतलाया था—"गरुड़ भली प्रकार भीगे आये तो हमारे लीलामय भगवान वासुदेवने हँसकर कहा—'गरुड़जी ! आप तो उस उद्यानमें आये वानरको पकड़ने गये थे ? देखता हूँ कि आप समुद्र-स्नान करके लौट आये हैं ?' गरुड़का बलगर्व समाप्त हो गया था। वे काँपते हुए बोले—'प्रभु ! वानर बहुत विकट है। मैं उसे बलपूर्वक लानेमें समर्थ नहीं।"

"अच्छा, उससे कहो कि तुम्हें श्रीरामने स्मरण किया है।' श्रीद्वारिकाधीशने यह कहकर गरुड़को विदा कर दिया। तब अपने स्वरूप धारी चक्रसे बोले—'तुम द्वारपर रहो। किसीको भी भीतर मत आने देना।' जब चक्र द्वारपर चला गया, तब महारानी सत्यभामासे कहा—'मैं श्रीरामके समान मुकुट तथा धनुष धारण करता हूँ। तुम श्रीजनक-नन्दिनीका रूप धारण करके शीघ्र मेरे समीप आ जाओ।"

उद्धवजीने जब यह सुनाया तब मैंने उनसे पूछा—'उद्धवजी ! मेरे स्वामी अयोध्यामेंएक-पत्नी व्रतधारी थे। यहाँ उन्होंने अनुग्रह करके बहुत अधिकको अपना लिया है ; किन्तु यह किङ्कर तो केवल एक अपनी अम्बासे ही परिचित है। इस अज्ञानके कारण इसके द्वारा एक महारानीका अपमान हो गया ; किन्तु मेरे स्वामी तो सर्वज्ञ हैं, वे मेरे अज्ञानसे परिचित हैं। उन्होंने ऐसा अवसर क्यों दिया ?'

उद्धवजीने हँसकर कहा—'हनुमानजी ! आज आपको निमित्त बनाकर हमारे गर्वहारी श्रीहरिको जिनका गर्व-हरण करना था, उनमें केवल गरुड़ और चक्र ही नहीं थे। महारानी सत्यभामाजीकी गणना भी उन्हींमें आ गयी।'

'महारानीको गर्व ?' मुझे आश्चर्य नहीं था ; किन्तु मैं कारण तो जानना ही चाहता था। उद्धवके समान श्रीद्वारिकाधीशका अन्तरङ्ग कौन मिलना था।

'एक दिन अन्तःपुरमें अपनी पट्टमहिषी सत्यभामाजीको श्रीकृष्ण-चन्द्र अपने त्रेतायुगकी अवतार-कथा सुनाने लगे।' उद्धवने बतलाया—"जब

प्रभुने सीता-हरणकी कथा सुनाकर श्रीरामकी व्याकुलताका वर्णन किया तो सत्यभामाजीने ध्यान नहीं दिया कि इस समय भी उस श्रीमैथिली-वियोगका स्मरण करके उनके स्वामी कातर हो उठे हैं। महारानी बोल उठीं—'सीता क्या मुझसे अधिक सुन्दरी थीं, जिनके पीछे इस प्रकार श्रीराम वन-वन भटकते फिरे ?' उसी समय श्रीद्वारिकाधीश गम्भीर हो गये। पूर्वकथा अवरुद्ध हो गयी।"

'यह गर्व—यही स्पर्धा आज महारानीके अपमानका हेतु बनी।' मैंने इस तथ्यको समझकर हाथ जोड़ा—'मेरे नाथ ! आपकी अनुकम्पा अपार है।'

यह सब तो उद्धवजीने पीछे बतलाया। मैं उस समय उद्यानमें फलाहार करके तृप्त होकर बैठा ही था कि गरुड़ पुनः मेरे पास आये। इस बार नम्रतापूर्वक बोले--'आपको आपके स्वामी श्रीराम, अपने द्वारिकाके राजसदनमें बुलाते हैं।'

मैंने भी सम्मानपूर्वक कहा—'आप आगे चलोमैं आ रहा हूँ।'

गरुड़को सम्भवतः अब भी अपनी गतिका गर्व था। वे विनयपूर्वक ही बोले—अच्छा होता कि आप मेरी पीठपर बैठ जाते। अन्यथा आपको पहुँचनेमें पर्याप्त विलम्ब होगा।'

'आप पधारें ! मैं वाहन स्वीकार नहीं किया करता। प्रयत्न करूँगा कि कम-से-कम आपके साथ पहुँच सकूँ।' मैंने गरुड़की प्रार्थनाको अस्वीकार किया। सचमुच मुझे कभी किसी वाहनकी आवश्यकता नहीं हुई। गरुड़ भगवान यज्ञेशके—श्रीद्वारिकानाथके वाहन हैं। मैं उनकी पीठपर बैठनेकी धृष्टता कैसे कर सकता था।

गरुड़को बुरा लगा, यह उनकी भंगिमा सूचित करती थी ; किन्तु वे मुझसे भयभीत हो चुके थे। चुपचाप चले गये। मैं द्वारिका पहुँचा तो चक्रने मुझे द्वारपर रोका। यह भी कोई बात है कि मेरे सूचित करनेपर भी कि मुझे स्वामीने गरुड़के द्वारा सन्देश देकर बुलाया है, द्वारपर अड़ा रहे ! मैंने चक्रको उठाकर मुखमें रख लिया।

मैंने प्रवेश करके अपने धनुर्धर स्वामीके श्रीचरणोंपर मस्तक रखा। मुझे आश्चर्य था कि उनके साथ वामपार्श्वमें मेरी अम्बाके स्थानपर कोई और आसीन हैं। मैंने सहज पूछ लिया—'मेरी अम्बा कहाँ हैं ? आज प्रभुने यह किस दासीको गौरव दिया है ?'

प्रभुके पार्श्वमें आसीना वे पट्टमहिषी सत्यभामाजी थीं, यह मुझे पता नहीं था। मेरी बात सुनते ही वे उठकर लगभग भाग कर अन्तःपुरमें चली गयीं। मैंने सुना कि वे रुदन जैसी ध्वनिमें किसीसे कह रही हैं—'तुम्हारा वानर पुत्र है। तुम्हीं उसे सम्हालो !'

'कहाँ है वह ?' मैंने अपनी अम्बाका स्वर सुना। कितना उमड़ता वात्सल्य था उसमें। मुझे पता नहीं था कि अब यहाँ उनका नाम महारानी रुक्मिणी हो गया है। मैंने उनके चारु-चरणोंमें सिर रखा तो उनका स्नेह-शिथिल कर मेरे मस्तकपर घूमने लगा।

'हनुमान ! तुम्हें यहाँ आनेमें किसीने द्वारपर रोका तो नहीं ?' मेरे प्रणाम करके उटते ही सिंहासनासीन प्रभुने कुछ स्मित पूर्वक पूछा।

मैंने मुखसे निकाल दिया चक्रको—'यह एक था तो सही द्वारपर, जो आपके द्वारा मैं आहूत हूँ, यह सुनकर भी धृष्टता कर रहा था।'

चक्र लज्जा-ग्लानिसे भागा या उसे स्नान करके शुद्ध होनेकी शीघ्रता थी, कह नहीं सकता; किन्तु प्रभुने पुनः पूछा—'तुमको बुलाने मैंने गरुड़को भेजा था।'

मैंने कहा—'आपने व्यर्थ ही इतने मन्दगति पक्षीको वाहन बनाया। आपका यह सेवक तो उपस्थित ही है।'

इसी समय गरुड़ आये। मैं समझता हूँ कि मेरी बात उन्होंने सुन ली थी। लज्जासे उन्होंने मस्तक झुका दिया।

* यह कथा 'श्रीद्वारिकाधीश' में भी आयी है कुछ भिन्न शैलीमें।

४६-अर्जुनसे साक्षात्कार-

मैं प्रायः मानवके लिए दुर्गम हिमालयके प्रदेशोंमें रहने लगा था। एकान्तमें अपने आराध्यका चिन्तन करते हुए 'राम राम' रटता रहता था। मध्यम पाण्डव धनञ्जय भगवान व्यासकी सम्मतिसे तप करके पुरारिको सन्तुष्ट करने और उनसे पाशुपतास्त्र प्राप्त करनेकी इच्छासे हिमालयमें प्रविष्ट हुए। मुझे सामान्य वानर आकारमें 'राम राम' की रटमें तन्मय देखकर उन्होंने प्रणाम करके पूछा—'आप कौन हैं ? क्या कृपा करके अपना परिचय देंगे ?'

मैंने अपना परिचय दिया तो उन्होंने मुझसे पूछा—'हनुमानजी ! रामकथा मैंने मुनियोंके मुखसे सुनी है। उसमें एक बात समझमें नहीं आती कि श्रीरघुनाथको समुद्रपर वानरोंके द्वारा सेतु-निर्माण क्यों कराना पड़ा। वे स्वयं अथवा उनके अनुज ऐसे धनुर्धर तो थे ही कि समुद्रपर शरोंका सेतु बना देते।'

'सौ योजन समुद्रपर शरोंका सेतु बना देना असम्भव नहीं था।' मुझे अर्जुनकी बातोंमें अहंकारका आभास मिला, अतः मैंने कहा— 'किन्तु उस सेतुपरसे मेरे जैसे असंख्य वानरोंको पार भी होना था। वह इतना भार सहन नहीं कर सकता था।'

'मैं तो ऐसा नहीं समझता।' अर्जुन ने कहा।

'समुद्र तो दूर है ; किन्तु यह जो सम्मुख पर्वतीय सरोवर (झील) है, उसपर बना बाण-सेतु भी मेरा भार नहीं सह सकता।' मैंने सरलता पूर्वक समझाया।

'वह धनुर्विद्या क्या जो वानर-ऋक्षोंके उछलनेसे वाण-सेतु भङ्ग हो जाय।' अर्जुनने धनुष चढ़ा लिया और वाण-वर्षा प्रारम्भ करदी। सचमुच धनञ्जयने सरोवरपर शर-सेतु निर्मित कर दिया कुछ पलोंमें और बोला— 'आप इसपर चाहे जितना कूद सकते हैं।'

'यदि मेरे पद धरते ही यह सेतु भङ्ग हो जाय ?' मैंने पूछा।

अर्जुनने दृढ़ स्वरमें कहा—'ऐसा हो नहीं सकता।'

'मानलो कथञ्चित् ऐसा हो ही जाय ?' मैंने कहा—'मैं क्यों सरोवरमें गिरने एवं आहत होनेकी भी सम्भावना अकारण स्वीकार करूँ ?'

'यदि यह सेतु आपके भारसे टूट जाय' अर्जुनने प्रतिज्ञा की—'तो मैं जीवित अग्निमें प्रवेश करके जल जाऊँगा।'

'यदि यह मेरे भारसे न टूटे' मैंने भी कहा—'तो मैं तुम्हारे जीवन पर्यन्त तुम्हारे रथकी ध्वजाके समीप बैठा रहूँगा और तुम्हारी सहायता करूँगा।'

मैंने जैसे ही उस वाणोंसे बने सेतुपर दक्षिण-पाद निक्षेप किया, वह तड़ातड़ टूट गया। एक अंश टूटनेसे समस्त सेतु जलमें गिर गया। अर्जुनने बिना कुछ कहे काष्ठ चयन करना प्रारम्भ किया। उसने चिता बनायी। उसकी इस चेष्टाने मुझे खिन्न किया; किन्तु वह अपनी प्रतिज्ञा-पूर्ति करनेमें लगा था। इसमें मैं उसे रोक भी तो नहीं सकता था।

अचानक कहींसे एक अर्जुनके समान ही श्यामवर्ण, पलाशदण्ड करमें लिये, जटाधारी ब्रह्मचारी वहाँ आगया। उसने अर्जुनसे पूछा—'तुम कौन हो ? यहाँ काष्ठ चयन क्यों कर रहे हो ?'

अर्जुनने जो कुछ हुआ था, अपना परिचय देकर बतला दिया। ब्रह्मचारी बोला—'तुम सत्पुरुष हो। प्रतिज्ञा-पूर्ति उचित है और तुम उसका ठीक प्रयत्न कर रहे हो; किन्तु तुम दोनोंका साक्षी कौन था यहाँ ? तुमने कैसे मान लिया कि इस कपिने कोई कपट-चातुर्य नहीं किया ?'

अब मैंने समीप आकर कहा—'यहाँ हम दोनोंके अतिरिक्त तीसरा तो कोई भी नहीं था।'

'बिना मध्यस्थके कोई विवाद निर्णीत नहीं माना जा सकता।' ब्रह्मचारीने बड़े अधिकारपूर्ण स्वरमें कहा—'अर्जुनको पुनः शर-सेतु निर्माण कर लेने दो। यदि वह तुम्हारे चढ़ने-कूदनेसे टूटता है तो मैं साक्षी रहूँगा। मैं निर्णय दूँगा कि तुम दोनोंमें कौन विजयी और कौन पराजित हुआ।'

मैंने स्वीकार कर लिया—'मुझे कोई आपत्ति नहीं है।'

अर्जुनने धनुष उठा लिया और थोड़ी देरमें पहिलेके समान ही शर-सेतु सरोवरपर बना दिया। मुझे धनञ्जयकी प्रशंसा करनी होगी।

वह चाहता तो सेतुको पहिलेसे द्विगुण दृढ़ बना सकता था ; किन्तु उसने ऐसा कुछ नहीं किया था। मैं यह भी देख रहा था कि उसके मुखपर कोई उत्साह नहीं था। वह अपने पहिले सेतुका परिणाम देख चुका था, अतः उसे कोई आशा नहीं थी।

मैंने पृथ्वीपर ही रहकर सेतुपर दक्षिण-पाद रख कर उसे अपने पादांङ्गुष्ठसे दबाया—कोई परिणाम नहीं हुआ। सेतु सुदृढ़ बना रहा। मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने अपने उस पैरपर पूरा भार दिया। सेतु तब भी नहीं टूटा तो बैठकर मैंने उसे घुटनोंसे और हाथोंसे दबाया।

सेतुकी दृढ़ताने मुझे सोचनेको विवश किया—'इसमें कोई अन्य हेतु होना चाहिए।'

मैं उसपर कूदने वाला था ; किन्तु अन्य हेतु क्या होसकता है, यह जाननेके लिए श्रीरघुनाथका ध्यान करते ही मेरी दृष्टि सेतुके नीचे वहाँ जलपर गयी, जहाँ मैं घुटनोंके बल बैठा था। मैंने स्पष्ट देख लिया कि वहाँ जलमें अरुणिमा आगयी है ओह वह बढ़ रही है। मैं उठ कर भूमिपर आगया। अब मैंने ब्रह्मचारीके मुखकी ओर देखा। ओह ! अपने आराध्यके इन पद्मपलाश लोचनोंको मैंने पहिले ही देख लिया होता !

मैंने ब्रह्मचारीके पदोंका स्पर्श करना चाहा ; किन्तु मुझे विशाल भुजाओंमें उन नवनीरद सुन्दरने प्रकट होकर भर लिया। क्या हुआ कि वे उस समय मयूर मुकुटी थे ! उन्होंने धनुष-वाण नहीं ले रखा था। अब क्या यह कहना शेष रह गया था कि सेतुके नीचे न केवल उनका चक्र था, अपने सखाकी रक्षार्थ वे स्वयं कच्छप रूपसे पीठ लगाये स्थित थे। वैसे मेरे उतरनेके कुछ पल पश्चात ही टूट कर शर-सेतु जलमग्न होगया। पार्थका गर्व तो पहिले ही गलित हो चुका था।

'अर्जुन ! तुम्हारे सखाने तुम्हारी सहायता की और मैं पराजित होगया !' मैंने धनञ्जयको हृदयसे लगाया—'धन्य हो तुम ! मुझे मेरे इन आराध्यने द्वापरमें दर्शन देनेका वचन दिया था। द्वारिकामें मेरा स्मरण करके मुझे मेरे स्वामीने कृतार्थ किया और आज…… ।'

'केवल आज ही नहीं !' उन लीलामयका मेघ गम्भीर स्वर गूंजा—'आगामी महासमरमें जब तुम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अर्जुनकी

ध्वजापर बैठे रहोगे, मैं इनका सारथि रहूँगा। उन दिनों सम्पूर्ण दिन तुम मुझे देखते रह सकोगे !'

'मेरे प्रभु !' मैंने उनके पादारविन्द पकड़े। मेरी पराजय विजयसे उत्कृष्ट बनादी उन्होंने।

मुझे उठाकर फिर हृदयसे लगाते हुए उन्होंने कहा—'तुम दोनों मेरे अतिशय प्रिय हो। मैं चाहता था कि तुममें मैत्री हो जाय और पवनपुत्र, अर्जुनके सहायक रहें !'

× × ×

अपने वचनके अनुसार मैं अर्जुनके रथकी ध्वजाके नीचे ध्वज-दण्डके साथ बैठा रहता था। मेरे सम्मान स्वरूप अर्जुनने अपने नन्दिघोष रथकी पताकापर मेरा चिह्न अङ्कित कराया। इससे उनका एक नाम ही वानर-ध्वज पड़ गया। महाभारतके प्रारम्भमें ही उन पार्थ-सारथि प्रभुने मुझे आदेश दे दिया—'पवनपुत्र ! यह त्रेता नहीं है, द्वापर है। तुम्हारे पराक्रमके प्रकट होनेका समय नहीं है। तुम गर्जना भी करोगे तो ये सब हृदय फटनेसे मर जायेंगे। अतः तुम केवल बैठे रहो। तुम्हारी उपस्थिति मात्र पार्थकी पर्याप्त सहायता है।'

मैं ध्वजदण्डसे सटा बैठा रहता था। एक टक रथमें नीचे सारथिके रूपमें बैठे अपने स्वामीके श्रीमुखको देखता रहता था। क्योंकि मैं सामने बैठता था ध्वजदण्डको पीठ टिका कर, कर्णने कुढ़कर दुर्योधनसे कहा था—'अर्जुनकी ध्वजा काटी नहीं जासकती। वह अद्भुत वानर ध्वजाको पीठ पीछे किये बैठा रहता है। उसपर किसीके वाणोंका कोई प्रभाव पड़ता ही नहीं। वह इतना विकराल है कि जिधर देखता है, उधर हमारी सेना भयके कारण भागने लगती है। कोई कैसा भी शूर हो, उस वानरकी ओर देखते ही उसके हाथसे शस्त्र छूट गिरता है। मैं उसकी ओर दृष्टि ही नहीं उठाऊँगा।'

कर्णकी बात सच थी। कभी-कभी जब मैं कुतूहलवश खड़ा होता था और मुख घुमाकर सेनाकी ओर देखने लगता था, गज और अश्व तो भड़ककर भागने ही लगते थे, रथियोंमें—महारथियों तकमें भगदड़ मच

जाती थी। मेरे शरीरपर कब किसके वाण लगते हैं, मुझे पता नहीं था। वाण लगते थे और टूट गिरते थे।

मुझे स्मरण है कि युद्धमें जब कर्णके वाणसे अर्जुनका रथ कुछ पीछे खिसका, श्रीकृष्णचन्द्र बोल उठे—'धन्य! साधु! कर्ण सचमुच धनुर्धर है।'

अर्जुनके लिए प्रतिद्वन्द्वीकी यह प्रशंसा असह्य होगयी। उन्होंने कहा—'माधव! मेरे वाणसे इस सूत-पुत्रका रथ बहुत पीछे हट जाता है तब तो आप मौन रहते हैं और मेरा रथ किञ्चित् हटा तो कर्णको साधुवाद देने लगे हैं।'

वे अखिलेश अर्जुनसे बोले—'पार्थ! तुम भूलते हो कि तुम्हारे रथके ऊपर महावीर हनुमान बैठे हैं। वे तुम्हारे रथकी ध्वजाके पास न बैठे होते तो रथ कभी भस्म हो चुका होता।'

मैं तो उन दिनों रात्रिमें भी रथकी ध्वजाके पास ही बैठा रहता था। युद्धकी समाप्ति हो जानेपर जब रथ पाण्डव-शिविर अन्तिम दिन लौटा तो श्रीकृष्णचन्द्रने अर्जुनको अपने अक्षय त्रोण तथा गाण्डीव धनुष लेकर पहिले रथसे उतर जानेका आदेश दिया। अर्जुनके उतर जानेपर स्वयं उतरते समय उन मयूर मुकुटीने मुझे भी दृष्टिसे संकेत किया। मैं जैसे ही ध्वजा त्यागकर गगनमें गया, उस दिव्य रथसे लपटें उठने लगीं। अश्वोंके साथ उसी क्षण वह रथ भस्म हो गया।*

::

---

*यह कथा किञ्चित अन्तरसे 'पार्थ-सारथी' में भी आयी है।

४७--भीमसेनसे भेंट

अर्जुन तपस्या करके भगवान पशुपतिको सन्तुष्ट कर चुका तो इन्द्र उसे अपने शत्रु असुर निवात कवचोंका संहार कराने स्वर्ग लेगये। युधिष्ठिरादि शेष भाई द्रौपदीके साथ वनमें तो रहते ही थे, अमरावती गये अपने मध्यम भाईकी प्रतीक्षामें बदरिकाश्रम आकर रहने लगे।

किसी दिन वायुके प्रबल वेगके कारण हिम-सरोवरमें होनेवाला सौगन्धिक कमल (ब्रह्मकमल) का एक पुष्प ऊपरसे उड़कर वहाँ पाण्डवोंके समीप गिर पड़ा। पाण्डवोंने काहेको यह देवपुष्प देखा होगा। द्रुपद-तनयाको वह बहुत प्रिय लगा। उसने भीमसेनसे वैसे और पुष्प लानेको कहा। भीमसेनने गदा उठायी और चल पड़े।

भीम भी पवनपुत्र है। मेरा अनुज है। वह भयानक गर्जना करता ऊपर चला आरहा था। उसकी गर्जनासे वनके गज, रीछ, व्याघ्र भयभीत होकर भाग रहे थे। मुझे अपने इस भोले भाईपर दया आगयी। इसे यह पता नहीं था कि ऊपर हिम-प्रदेशमें इसकी उच्च गर्जन ध्वनि कितना अनर्थ करेगी। वहाँ तो मानवके खाँसनेके शब्दकी प्रतिध्वनि बढ़ती है तो उसके आघातसे विशाल हिमशिलाएँ टूट-टूट कर गिरने लगती हैं। भीमकी गर्जनासे तो समूचे हिम-शिखर टूटकर इसके ऊपर आ गिरेंगे। फिर यक्ष अत्यन्त असहिष्णु होते हैं। भगवान विश्वनाथके मित्र कुबेरके अनुचरोंसे युद्ध करके प्रथम कल्पके सतयुगमें श्रीहरिके वरदानसे सशक्त ध्रुव भी सफल नहीं होसके थे, तब भीमसेन भले उनके द्वारा मारा न जाय, अपमानित होनेसे तो नहीं बच सकता।

यह सब सोचकर जहाँ मार्ग सङ्कीर्ण था, अलकाको जाता था, वहाँ मैं वृद्ध वानर बनकर अपनी बाहुपर सिर रखकर इस प्रकार लेट गया कि मेरी फैली पूँछका उल्लंघन किये बिना कोई आगे नहीं जा सकता था। दोनों ओर सीधे शिखर खड़े थे।

भीमसेन गर्जना करता समीप आगया। सम्भवतः मेरे जैसा स्वर्ण-रोमा वानर उसने कभी देखा नहीं था। वह अपनी गर्जनासे डराकर मुझे

भगा देना चाहता होगा। जब वह समीप आगया, मैंने धीरेसे मस्तक उठाकर उसकी ओर देखकर कहा—'मैं पशु हूँ, रोगी हूँ, तुम तो मानव हो—बुद्धिमान हो, मैं यहाँ एकान्तमें सो रहा था, तुमने मुझे क्यों जगा दिया ? आगे मनुष्योंके जानेका मार्ग नहीं है। तुम्हें कहाँ जाना है ?'

भीमसेनने अपने स्वाभाविक अक्खड़पनसे उत्तर दिया—'तुमसे मार्ग कौन पूछ रहा है ? तुम बीचसे हटो और मुझे आगे जाने दो।'

मैंने प्रेमपूर्वक कहा—'यहाँ उस ओर समीप ही मीठे कन्द तथा मूल ऊपर ही मिल जायेंगे। उन्हें भोजन करके विश्राम करो। उनको खानेसे तुम्हारे शरीरमें शक्ति आवेगी। यहाँसे लौट जाओ। इतनी दूर तक इस दुर्गम प्रदेशमें आने वाले तुम कौन हो ?'

'मैं चन्द्रवंशी पाण्डुपुत्र भीमसेन हूँ।' उसने ऊबकर कहा—'तुमसे मैं परामर्श नहीं माँगता हूँ। मेरा परिचय तुमने पा लिया, अब मार्ग दो।'

मैंने फिर कहा—'मैंने पहिले ही तुम्हें बतलाया है कि इधरसे मानवके जानेका मार्ग नहीं है। इधरसे जानेपर प्राण सङ्कटमें पड़ सकते हैं !'

भयके कारण मान जाय तो भीमसेन काहेका। अन्ततः यह मेरा भाई ही तो था। भयसे कभी मैं पीछे हटा हूँ कि भीम हट जाता। उसने झल्लाकर कहा—'तुम मार्गसे हटो ! मेरी चिन्ता छोड़ दो।'

अब मैंने कहा—'भैया ! मैं रोगी हूँ। उठ नहीं सकता। तुम मेरे शरीरको कूदकर निकल जाओ।'

भीमने जो उत्तर दिया, उससे मैं प्रसन्न हुआ। उसका उत्तर धर्म-प्राण पाण्डवोंके ही अनुरूप था। उसने कहा—'कूदकर श्रीहनुमानजी समुद्र-लंघन कर गये थे। मैं कूदकर इस पर्वतको पार कर जा सकता हूँ; किन्तु सभी प्राणियोंमें परमात्माका निवास है। अतः किसीके भी शरीरका उल्लंघन करना अनुचित है।'

'कौन हनुमान ?' मैंने हँसकर पूछा।

भीमने कहा—'श्रीरामदूत, पवनपुत्र हनुमान। वे अतुल विक्रम श्रीजनक-नन्दिनीकी शोधके समय सौ योजन समुद्र कूद गये थे। वे मेरे बड़े भाई हैं। मैं उनका अनुज हूँ। तुम केवल पूँछ हटा लो, मैं निकल जाऊँगा।'

मैंने कहा—'मैं रोगी हूँ, अशक्त हूँ। तुम्हीं मेरी पूँछ उठाकर एक ओर करदो।'

भीमसेनने पहिले झुककर वाप हस्तसे मेरी पूँछ हटानेका प्रयत्न किया। पूँछ नहीं उठी तो गदा भूमिपर रखकर उसने दोनों हाथ लगाया। शक्तिशाली व्यक्ति शक्तिका सम्मान करना जानता है। जब दोनों हाथोंसे पूरी शक्ति लगाकर भीमसेन मेरी पूँछ हिला भी नहीं सका, हाथ जोड़कर मेरे सम्मुख खड़ा होगया। विनम्र होकर बोला—'आप अनजानमें की गयी मेरी धृष्टताको क्षमा करें। यदि मैं अनधिकारी न होऊँ तो परिचय देनेकी कृपा करें। आप देवता, गन्धर्व, सिद्ध, कौन हैं?'

मैंने परिचय दिया—'मैं केसरीका पुत्र हनुमान हूँ।'

भीमसेनने फिर पूछा—'आप यहाँ निर्जनमें?

मैंने उसे बतलाया—'यहाँ देवता, गन्धर्व, किन्नर मुझे मेरे स्वामी श्रीरामका चरित सुनाकर आनन्दित करते हैं। यहाँ मुझे मेरी वात्सल्यमयी अम्बा श्रीजनकनन्दिनीके आशीर्वादसे सब दिव्य-भोग, फल, कन्दादि उपलब्ध हो जाते हैं और गन्धर्वादि तो मानव जनपदमें मेरे समीप आ नहीं सकते। यहाँसे आगे देवता, यक्ष आदि निवास करते हैं। मनुष्यका आगे प्रवेश वर्जित है। आगे जानेपर तुम्हारी अवमानना होगी, इसलिए मैं मार्ग रोककर यहाँ सोरहा था। तुम जो सौगन्धिक सरोज पाना चाहते हो, उसका सरोवर तो समीप ही है।

भीमसेन मेरे चरणोंपर गिर पड़ा—'मेरा सौभाग्य कि मैंने अपने परम श्रद्धेय अग्रजके दर्शन प्राप्त किये।'

उसके पूछनेपर मैंने उसे रामचरित सुनाया। वह फिर बोला—'शैशवसे ही आप ही मेरे आदर्श रहे हैं। आपका पौरुष, पराक्रम ही मुझे प्रिय लगा है। मेरी एक अभिलाषा है—मैं आपके उस रूपका दर्शन करना चाहता हूँ, जिस रूपसे आपने समुद्रोल्लंघन किया था।'

मैंने भीमसेनको समझाया—'उसे देखनेका आग्रह मत करो। मेरा वह रूप तुम अथवा आजका अन्य कोई मनुष्य देखनेमें समर्थ नहीं है। यह युग त्रेतासे भिन्न है।'

भीमसेनने मेरे चरण पकड़ लिये। वह अत्यन्त हठी है। अड़गया—'मैं आपके उस रूपका दर्शन किये बिना यहाँसे नहीं हटूँगा।'

'अच्छा देखो!' छोटे भाईका हठ मानना पड़ा। कोई बालक मचलने लगे कि वह अपने कमण्डलुमें समुद्र भरेगा तो इसके अतिरिक्त और क्या उपाय रह जाता है कि उसे समुद्रके किनारे ले जाकर खड़ा कर दिया जाय। यही अवस्था भीमसेनकी हुई। उसने कहाँ कल्पना की होगी कि मेरा वह रूप गन्धमादन शिखरसे कहीं ऊँचा है। उसके सूर्याधिक तेजसे सम्पूर्ण गगन प्रज्वलित प्रतीत होता है। मैंने जैसे ही अपना वह रूप प्रकट किया भीमसेनने नेत्र बन्द कर लिये। उसके रोमाञ्च होने लगा। भयसे उसका शरीर काँपने लगा। स्वेद-स्नात, भरे-स्वर हाथ जोड़कर वह बोला—'बस! बस! अब आप शीघ्र अपना यह दुर्धर्ष रूप समेट लें। मैं आपके इस प्रलयङ्कर रूपकी ओर देख नहीं पाता। आपके अत्यन्त उग्र नेत्रों, भयानक दाढ़ों तथा प्रचण्ड तेजको सहनेमें मैं असमर्थ हूँ।'

जब मैंने पुन. सौम्य शान्त स्वरूप धारण किया, तब भी भीम हाथ जोड़े काँप रहा था। उसने पूछा—'भगवन! आप जैसे अविषह्य-तेजाके रहते भला श्रीरामको दशग्रीवसे संग्राम क्यों करना पड़ा?'

मैंने इसका उत्तर दूसरी प्रकार दिया। मैंने कहा—'भैया, इस बातपर पीछे विचार करेंगे। पहिले तुम मेरे छोटे भाई हो, पहिली बार मुझे मिले हो। मेरा दर्शन व्यर्थ न हो, इसलिए मैं तुम्हारा कुछ सत्कार करना हूँ। तुम कहो तो दुर्योधनको भाइयों सहित मार दूँ। अथवा उसे बाँधकर यहीं तुम्हारे पैरोंमें डाल दूँ। पर्वत पटक कर मैं पूरे हस्तिनापुरको नष्ट भी कर दे सकता हूँ।'

भीम गम्भीर होगया। उसने कहा—'आप हमपर कृपा दृष्टि रखें, इतना ही पर्याप्त है। शत्रुको तो हम आपकी कृपासे पराजित कर देंगे।'

मैंने तब समझाया—'भाई! इसी प्रकार मेरे स्वामी श्रीरामको भी अपने शत्रुको स्वयं पराजित करना था। उनका यश समुज्वल होना आवश्यक था। मैं दशग्रीवको उसके सहायकों सहित मार देनेमें समर्थ था; किन्तु ऐसा करना उचित नहीं था।'

भीमसेनको मैंने सौगन्धिक पद्म-सरोवरका पथ बतला दिया। वह मेरे पदोंमें प्रणत हुआ तो उसे हृदयसे लगाकर विदा करते सयम मैंने

कहा—'मैंने शत्रुओंके साथ होने वाले तुम्हारे आगामी युद्धमें अर्जुनके रथकी ध्वजापर बैठे रहनेका वचन दिया है। जब तुम शत्रु सेनामें सिंहनाद करोगे, तब मैं अर्जुनकी ध्वजापर बैठा गर्जना करके तुम्हारी ध्वनिको द्विगुण कर दिया करूँगा। इससे तुम्हारे शत्रु भयभीत हो उठेंगे और तुम सुगमता पूर्वक उन्हें मार सकोगे। तुम कभी कभी, विशेषतः जब अपनेको किसी सङ्कटमें पाओ, मेरा स्मरण कर लिया करना। मुझसे मिलनका यह प्रसङ्ग किसीसे प्रकट मत करना।'

भीमसेन जब सौगन्धिक पद्म-सरोवरकी ओर जानेको मुड़ा, मैं वहीं अन्तर्हित हो गया।
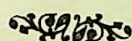
४८—शनिसे सामना

एक दिन मैं सन्ध्या समय अपने आराध्यका स्मरण करनेमें लगा था, उसी समय ग्रहोंमें मन्दगति सूर्यनन्दन शनिदेव पधारे। वे अत्यन्त कृष्णवर्ण, भीषणाकार हैं। अपना सिर प्रायः झुकाये रहनेके अभ्यासी हैं, जिससे उनकी दृष्टि नीची रहती है। जब वे कभी किसीकी ओर दृष्टि उठाते हैं, वह अवश्य नष्ट हो जाता है। मुझसे वे अपरिचित नहीं थे। मैंने उन्हें लङ्कामें दशग्रीवके बन्धनसे मुक्त किया था। मेरे समीप वे विनय पूर्वक ही बोले; किन्तु बेचारे अपने कर्कश स्वरका क्या करते। उन्होंने कहा—'हनुमानजी! मैं आपको सावधान करने आया हूँ। त्रेताकी बात दूसरी थी; किन्तु अब कलियुग प्रारम्भ हो गया है। भगवान वासुदेवने जिस क्षण अपनी अवतार लीलाका उपसंहार किया, उसी क्षणसे पृथ्वीपर कलिका प्रभुत्व हो गया। इस युगमें आपका शरीर अल्प हो गया है और मेरा बल बहुत बढ़ गया है। अब आपपर मेरा दशाकाल साढ़े सात वर्षको आरम्भ हो रहा है। मैं आपके शरीरपर आ रहा हूँ।'

शनिदेवको पता नहीं होगा कि श्रीरघुनाथके चरणाश्रितोंपर कालका प्रभाव नहीं होता। कालातीत करुणा-निधान जिनके हृदयमें आते हैं—एक क्षणको भी आ जाते हैं, कालकी कला वहाँ सर्वथा निष्प्रभाव हो जाती है।

प्रारब्धके विधान वहाँ प्रभुत्वहीन हो जाते हैं। सर्व-समर्थ सगुण साकार लीलामयके सेवकोंका नियन्त्रण, सञ्चालन, पोषण उनके अनन्त दयाधाम प्रभु ही करते हैं। उनके सेवकोंकी ओर दृष्टि उठानेका साहस कोई सुर-असुर करे तो स्वयं अनिष्ट-भाजन होता है। ग्रह उसपर क्या प्रभाव करेंगे ? शनिदेवके अग्रज यमराज भी उसकी ओर देखनेका साहस नहीं कर पाते।

मैंने शनिको समझानेका प्रयत्न किया—'आप कहीं अन्यत्र जावें। ग्रहोंका प्रभाव पृथ्वीके मरण-धर्मा प्राणियोंपर ही पड़ा करता है। मुझे अपने आराध्यका स्मरण करने दें। मेरे शरीरमें श्रीरघुनाथके अतिरिक्त दूसरे किसीको स्थान नहीं मिल सकता।'

शनिको इससे सन्तोष नहीं हुआ। वे बोले—'मैं सृष्टिकर्ताके विधानसे विवश हूँ। आप पृथ्वीपर रहते हैं, अतः मेरे प्रभुत्व क्षेत्रसे बाहर नहीं हैं। मैं पूरे साढ़े बाइस वर्ष व्यतीत होनेपर तो प्राणीकी राशिपर साढ़े सात वर्षको आता हूँ। वैसे मध्यमें दो बार साढ़े सात वर्षके अन्तरसे ढाई वर्षके लिए मेरा प्रभाव प्राणीपर पड़ता है; किन्तु वह तो गौण प्रभाव है। आपपर मेरी साढ़े साती आज इसी समयसे प्रारम्भ हो रही है। मैं आपके शरीरपर आ रहा हूँ। इसे आप टाल नहीं सकते।'

'जब आपको आना ही है तो आइये।' मैंने कहा—'अच्छा होता कि आप मुझ वृद्धको छोड़ ही देते। वैसे भी मैं उपदेवता हूँ।'

शनि कहने लगे—'कलियुगमें पृथ्वीपर देवता-उपदेवता किसीको नहीं रहना चाहिए। सबको अपना आवास सूक्ष्म लोकोंमें रखना चाहिए। जो पृथ्वीपर रहेगा, वह कलियुगके प्रभावमें रहेगा और उसे मेरी पीड़ा भोगनी पड़ेगी। मैं अपना प्रधान प्रभाव तो वृद्धपर ही प्रकट करता हूँ। अतः वृद्धको मैं छोड़ कैसे सकता हूँ। ग्रहोंमें मुझे अपने अग्रज यमका कार्य मिला है। मैं मुख्य मारक-ग्रह हूँ और मृत्युके सबसे सन्निकट वृद्ध होते हैं।'

मैंने पूछ लिया—'आप मेरे शरीरमें कहाँ बैठने आ रहे हैं ?'

'सिरपर' शनिने पूरे गर्वसे कहा—'मैं प्राणीके पहिले ढाई वर्ष सिरपर रहकर उसकी बुद्धि विचलित बनाये रखता हूँ। मध्यके ढाई वर्ष उसके उदरमें स्थित रहकर उसके शरीरको अस्वस्थ बनाता हूँ। अन्तिम ढाई वर्ष उसके पैरोंमें रहकर उसे भटकाता हूँ।'

'आइये ! अभी तो आप मेरे मस्तकपर आ रहे हैं।' मैंने कहा—'उदर और पैरकी बात पीछे सोच लूँगा।'

शनि मेरे मस्तकपर आ बैठे तो पहिली प्रतिक्रिया यह हुई कि मुझे अपने सिरमें कुछ कण्डू (खाज) प्रतीत हुई। इसे मिटानेके लिए मेरी अपनी पद्धति है। मैंने एक बड़ा पर्वत शिखर उठाकर सिरपर रख लिया।

'आप यह क्या करते हैं ?' शनि चिल्लाये।

मैंने उन्हें समझाया—'जैसे आप सृष्टिकर्ताके विधानसे विवश हैं, मैं भी अपने स्वभावसे विवश हूँ। मुझे मस्तक-कण्डू हो या कोई मेरे मस्तकपर आ बैठे तो यह मेरी अपनी उपचार पद्धति है। आप अपना काम करें। मैं उसमें बाधा नहीं देता ; किन्तु आप भी मेरे काममें बाधा मत बनें। मैं आपकी अब नहीं सुनूँगा।'

मैंने दूसरा शिखर और सिरपर रखा तो शनिने पुकार की—'आप इन्हें उतारिये। मैं सन्धि करनेको प्रस्तुत हूँ। मैं ढाई-ढाई दिन, ढाई-ढाई प्रहर भी आपके अङ्गोपर रहना स्वीकार कर लूँगा।'

मैंने कोई उत्तर देनेके स्थानपर तीसरा पर्वत शिखर भी उठाकर मस्तकपर रख लिया। शनिने आर्तनाद किया—'मुझपर कृपा कीजिये ! मैं अब कभी आपके समीप नहीं आऊँगा।'

मुझे यह आश्वासन पर्याप्त नहीं प्रतीत हुआ।' मैंने चौथा शिखर उठाया तो शनि चीखकर बोला—'पवनकुमार ! त्राहि ! त्राहि मां रामदूत ! आञ्जनेयाय नमः ! मैं उसको भी उत्पीडक नहीं बनूँगा जो आपका स्मरण करेगा ! मुझे उतर जानेका अवसर दें !'

मैंने पर्वतोंको उतार कर यथास्थान रखा तो शनि कराह रहे थे। मैंने कहा—'मैं केवल पाँच शिखर सिरपर रखना चाहता था और उन्हें प्रलय पर्यन्त भी धारण किये रह सकता हूँ। तुमने बहुत शीघ्रता की।'

शनि मेरे पैरोंपर गिर पड़ा—'मैं सदा आपको दिये वचनोंको स्मरण रखूँगा।' आहत शनिने शरीरपर मलनेको तैल माँगा। अब भी वे तैल-दानसे तुष्ट होते हैं। मैं उन्हें कहाँ तैल देने वाला था। मैंने कह दिया—'अन्यत्र माँगिये।'

४९–रामदास मिले

'आपने कलियुगमें भी तो कुछ महानुभावोंपर कृपा की है ?' रघुकुलके बालकोंको सम्भवत: शनिकी चर्चामें कलियुगका नाम आनेसे स्मरण आ गया। उन्होंने आग्रहपूर्वक पूछा—'अब इस युगमें आप कहाँ स्थिर रूपमें विराजते हैं ? पृथ्वीपर तो सुना है कि आपका पदार्पण कभी-कभी होता है।'

मैंने इन बालकोंको बतलाना प्रारम्भ किया—

अमृतके लिए क्षीराब्धिका मन्थन करते हुए जब सुर और असुर श्रान्त होगये, स्वयं श्रीहरिने मन्थन प्रारम्भ किया। वे स्वयं धन्वन्तरि रूप धारण करके सुधा-कलश लिये समुद्रसे प्रकट हुए और जब असुरोंने उनके हाथसे वह कलश झपट लिया, तब मोहिनी रूप धारण करके उन्होंने असुरोंसे अमृत-कलश प्राप्त किया। हाथमें अमृत-कलशको लेकर उसे आनन्दपूर्वक उन मोहिनी रूपधारी श्रीहरिने देखा तो उनके नेत्रसे हर्षाश्रुका एक बिन्दु कलशमें गिरा। उस अमृतमें पड़े श्रीहरिके अश्रुबिन्दुसे एक क्षुप उत्पन्न हुआ, जिसे तुलसी कहा जाता है। भगवान विष्णुने उस मूल तुलसीके क्षुपका नाम रङ्गवल्ली रखा और उसे किंपुरुषवर्षमें रोपित किया। उसीके बीजोंसे अन्यत्र तुलसीके पौधे उत्पन्न हुए।

सम्पूर्ण पृथ्वी जो बहुत विस्तीर्ण है, जहाँ तक भी पार्थिवतत्त्व हैं, सब पृथ्वी ही है। सप्त द्वीपवती पृथ्वीके ६ द्वीप सूक्ष्म संसारके हैं। मरणधर्मा मानव जिसे पृथ्वी कहते हैं, जो कर्मलोक है, वह तो जम्बूद्वीपका केवल एक वर्ष—अजनाभवर्ष है ; जिसका नाम भगवान ऋषभदेवके पुत्र भरतके नामपर भारतवर्ष हो गया। इसमें भी हिमालयसे कन्याकुमारी तकके भागको जो कि परमपावन भगवदीय भूमि है, भरतखण्ड कहा जाता है। इस भरतखण्डमें ही श्रीहरि अपनी लीलाका विस्तार अवतार लेकर करते हैं।

युगोंका प्रभाव कर्मलोकपर—भारतवर्षपर ही पड़ता है, जिसे मनुष्य पृथ्वी मानते हैं। जब शनिने मेरा ध्यान इधर आकृष्ट किया कि पृथ्वीपर कलियुगका प्रभाव पड़ने लगा है, तब मुझे स्थायी आवास

यहाँ रखना उचित नहीं लगा। मुझसे पहिले ही यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नाग, ऋक्ष, वानर आदि उपदेवता इस पृथ्वीका त्याग करके जम्बूद्वीपके दूसरे वर्षोंमें रहने लगे थे। वे सब स्थान सूक्ष्मदेशमें हैं। वहाँ सदा त्रेतायुगके समान ही काल बना रहता है।

पहिले भी मैं गन्धर्वराज अग्निषेणके साथ प्राय: प्रतिदिन किम्पुरुषवर्षमें रङ्गवल्लीके दर्शनार्थ वहाँके रङ्गवल्लीपुर जाया करता था। श्रीरघुनाथके स्वधाम-गमनके पश्चात् मेरा यह नित्यकर्म बन गया था। इसमें केवल महाभारत युद्धके अष्टादश दिनोंका व्याघात पड़ा; क्योंकि मैं उन दिनों अर्जुनके रथपर ही रात-दिन रहा। अब इस धरापर कलिका प्रभुत्व हो गया तो मैंने किम्पुरुषवर्षको अपना स्थायी आवास बना लिया।

वैसे मैं अपने आराध्यके साथ साकेत नहीं गया केवल उनक कथा-श्रवणके लोभसे और उनके भक्तों--नाम जप करने वालोंके संरक्षणके लिए। अत: जहाँ कहीं भी श्रीराम-कथा होती है, मैं वहाँ अवश्य पहुँच-जाता हूँ। एक साथ सहस्र-सहस्र रूप धारण करलेना मेरे लिए सरल है, अत: मैं सब कहीं श्रीराम-कथाके श्रोता रूपमें उपस्थित रहकर भी किम्पुरुषवर्षमें रहता हूँ।

श्रीरघुनाथके भक्तोंकी संख्या कर पाना सम्भव नहीं है। मुझे उन सभीकी सेवा-संरक्षणके लिए सतर्क रहना पड़ता है। अत: ऐसे भक्तोंकी मुझे जो सेवा प्राप्त होती है, अब तक प्राप्त हुई है, उन सबका मैं स्मरण भी करलूँ तो उसका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें सम्भव होगा। इसलिए इस प्रकारके वर्णन-विस्तारमें न जाकर केवल एक-दोकी चर्चा कर देता हूँ।

श्रीरघुनाथके अनन्य भक्त निकले महाराष्ट्र कहेजाने वाले भरत-खण्डके भूभागके रामदास। क्योंकि उन्होंने अपना जयनाद बना लिया 'जय जय श्रीरघुवीर समर्थ।' अत: पीछे लोग उन्हें समर्थ रामदाम कहने लगे थे। मैं भी रामदास हूँ, अत: मेरा नामके कारण भी उनसे स्नेह था।

युवावस्थामें रामदास ब्रह्ममुहूर्तमें उठकर नित्य कर्मसे निवृत्त होकर गोदावरी स्नान करते और सूर्योदय तक जलमें रहकर राम नामका जप करते थे। यह कौपीनधारी, भव्य शरीर साधु मुझे बहुत प्रिय लगा। जैसे ही यह जप करने लगता था, मैं एक साधारण कपिका रूप बनाकर इसके सामने अशोक वृक्षपर बैठ जाता था। जलमें निश्चल वह खड़ा 'राम राम राम' का जप करता था। वृक्ष पर निश्चल बैठा मैं भी यही जप करता था।

रामदासने द्वादश वर्षमें त्रयोदश कोटि श्रीरामनामका जप जब पूर्ण कर लिया, मैं प्रभात कालमें वृक्षसे उतरा और उसके सम्मुख जाकर खड़ा हो गया। मुझ स्वर्णरोमा कपिको देखकर वह चकित हुआ। किन्तु तभी मैंने उसके शरीरके भीतर प्रवेश किया। सूक्ष्मरूपमें उसके शरीरमें प्रवेश करके मैंने उसकी कुण्डलिनी उत्थित कर दी और उसे चक्र-वेध करके सहस्रार तक पहुँचनेकी शक्ति देदी। रामदास उसी क्षण सिद्धपुरुष हो गया। वह सचमुच समर्थ बन गया।

मेरे भीतर प्रवेश करनेसे रामदासके नेत्र बन्द हो गये थे। जब उसने नेत्र खोला, मैं उसके सामने खड़ा था। अब मैंने अपना स्वरूप प्रकट किया। वह साधु मेरे महाकाय रूपको देखकर मेरी स्तुति करने लगा।

उस समय मैं अवश्य रामदासके सम्म्मुखसे अन्तर्हित हो गया, किन्तु उसे मेरी सहायता सदा प्राप्त रही। वह भी मेरी आराधनाका प्रचारक बन गया, यद्यपि यह कार्य मुझे प्रिय नहीं था। प्रचार-प्रसार तो मेरे स्वामी श्रीरघुनाथकी आराधनाका मुझे अभीष्ट है; किन्तु मैं इन श्रद्धालु साधुओंको, भक्तोंको रोक नहीं पाता हूँ।

रामदासने तो पवित्र गोमयसे मेरी मूर्ति-स्थापनकी एक अभिनव परम्परा ही प्रचलित कर दी। अपनी भाषामें वह तथा उसके अनुयायी इसे 'शेन मारुति'* कहने लगे। अनेक स्थानोंपर उसने मेरी इस प्रकारकी मूर्ति भित्तिमें बने स्थानोंमें स्थापित की।

— × —

* 'शेन' मराठीमें गोबरको कहते हैं। शेन मारुति अर्थात् गोबरसे बने मारुति।

५०—तुलसीकी तुष्टि

भगवान विश्वनाथ जिसे अपना लेते हैं, मेरे स्वामी श्रीरघुनाथका वह सहज ही अनुग्रह-भाजन होजाता है। कलियुगमें ऐसा सर्मपित व्यक्ति एक हुआ जिसने सचाईके साथ कहा—

'गुरु पितु मातु महेस भवानी।'

आश्चर्य क्या कि आशुतोषकी अहैतुकी कृपाने उसे राम-भक्ति प्रदान की और सर्वमान्य महाकवि बना दिया। महाकवि भी कैसा? जो मङ्गल काव्य महेश्वरका मानस-सर्वस्व था, उसे उन पुरारिने अपने उस अनन्य आश्रितके चित्तमें अवतरित किया और उसने उस दुर्गम देववाणीके महाकाव्यको सर्वसामान्यके लिए 'श्रीरामचरितमानस' के रूपमें सुगम कर दिया।

मुझे श्रीरघुनाथने आज्ञा दी है कि मैं उनके नाम-जापककी रक्षा करूँ। श्रीराम-कथा मेरा जीवन है। जो किसी भी प्रकार मेरे आराध्यका गुणगान करता है, वह मेरा सम्मान-भाजन है। उसकी सेवा करके मैं अपनेको कृतार्थ अनुभव करता हूँ।

तुलसीदास श्रीसीतारामके अनन्य आराधक। तुलसीदास राम-नामके नैष्ठिकव्रती। वे महाभाग कहते हैं—

संकर साखि जौं राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरौ।
अपनो भलो राम नामहिं तें तुलसिहिं समुझि परौ॥

उनकी दृढ़ निष्ठाका भेरीघोष है—

बनै तो रघुबर तें बनै, बिगरै तौ भरपूर।
तुलसी औरनि तें बनै, वा बनिबे मैं धूर॥

अब यह भी कोई कहनेकी बात रह जाती है कि गोस्वामी तुलसीदास मुझे अतिशय प्रिय थे। वे मेरा स्मरण न भी करते तो भी मैं उनका था—उनका सहायक था। उनकी सेवा करके मुझे प्रसन्नता प्राप्त होती थी।

वे उन दिनों काशी-निवासी बन गये थे। स्वभावसे शौचकर्मसे निवृत्त होकर लौटते तो अपने बड़े लोटेका शेष जल एक बबूलके वृक्षमें डाल दिया करते थे। लगभग एक महीना यह क्रम चलते हुए बीता होगा कि एक दिन उनके लोटेमें जल नहीं बचा। वृक्षके समीप पहुँचकर उनके पद रुक गये। उनके मनमें आया—'वृक्षमें भी जीवन होता है। इस कण्टक तरुने इतने दिन बराबर मेरे हाथसे जल पाया है। आज इसे निराशा होगी।'

उसी समय वृक्षसे एक छायामूर्ति प्रकट हुई। वह थोड़ी दूरीपर खड़ी होकर बोली—'मैं प्रसन्न हूँ, वरदान माँगो।'

तुलसीदास स्वभावसे विनम्र थे। उन्होंने कहा—'आप पहिले अपना परिचय दें। मैं अपनेपर अकारण कृपा करनेवालेको जान तो लूँ।'

उस छाया मूर्तिने कहा—'मैं प्रेत हूँ। इस योनिमें पड़ा जीव स्वयं न आहार ग्रहण कर सकता, न जल पी सकता। पता नहीं कबसे मैं अत्यन्त तृषार्त था। शुद्ध पवित्र जल मैं पी नहीं सकता। यह वृक्ष मेरा निवास है। एक महीनेसे आप जो जल इसमें डालते हो,उससे मेरी तृषा तृप्त हो रही है। अतः मैं आपकी कोई सेवा करना चाहता हूँ।'

'आपका अनुग्रह' तुलसीदासने उस प्रेतसे कहा—'यदि आप मुझे कुछ देना चाहते हैं तो मुझे श्रीरघुनाथजीका दर्शन करा दें।'

प्रेत थोड़ी दूर और हटकर बोला—'यदि मैं उनका दर्शन करा सकता तो प्रेत क्यों होता ? आप कुछ लौकिक वस्तु माँगो।'

'लौकिक किसी वस्तुकी मुझे कामना नहीं है।' तुलसीदासने कहा—'मैंने वह माँगा जो एकमात्र मेरी कामनाका विषय है। आप इस कामनाके लिए मुझे क्षमा करें और पधारें ! आपका मङ्गल हो।'

'सुनो !' प्रेतने जानेको उद्यत तुलसीदासको पुकारा—'आपने मुझ प्यासेको इतने दिन पानी पिलाया है। मैं आपकी सेवा अवश्य करना चाहता हूँ। आपको एक युक्ति बतला रहा हूँ। इन दिनों काशीमें प्रह्लाद घाटपर प्रतिदिन कथा होती है। कथाके प्रारम्भमें एक कुष्ठ रोगीके वेशमें पवनपुत्र आते हैं। सबसे पीछे बैठते हैं। सब श्रोताओंके अन्तमें जाते हैं। उनके पैर पकड़ लेना और तब छोड़ना जब वे तुम्हारी कामना पूर्ण करनेका वचन दें।'

तुलसीदासको कभी पता नहीं लगा कि श्रीरघुनाथके दर्शनकी उनकी व्याकुलता उनके परमाश्रय भगवान भूतनाथसे देखी नहीं जा रही थी।

उन्होंने अपने एक गणको प्रेरित कर दिया और वह मेरा पता तुलसीदासको बतला गया। अन्यथा सामान्य प्रेत तो मेरे स्मरणसे भागता है। शिवगण ही मुझे पहिचान सकता था और पता बतला सकता था।

वहाँ कथाके समयसे बहुत पूर्व तुलसीदास उस दिन आ गये। मैं सदाकी भाँति कुष्ठ रोगीके वेशमें पहुँचा तो मैंने देखा कि आज मैं सर्वप्रथम आनेवाला नहीं हूँ। वे बहुत ध्यानपूर्वक मेरी ओर देख रहे थे। कथा प्रारम्भ होनेपर मैं तन्मय हो गया। दूसरे किसीकी ओर मेरा ध्यान नहीं रहा। कथा समाप्त हुई और श्रोता जाने लगे तो तुलसीदास मेरे पीछे आकर खड़े हो गये। सबसे अन्तमें मैं जैसे ही जानेके लिए मुड़ा, उन्होंने मेरे दोनों पैर दृढ़ता पूर्वक पकड़ लिए।

'अरे ! अरे ! महात्मा, यह क्या करते हो ?' मैंने पैर छुड़ानेका प्रयत्न करते हुए कहा—'देखते नहीं कि मैं गलित कुष्ठका रोगी हूँ। मुझ अधमको छोड़ो और जाकर गङ्गा-स्नान करो।'

'आप समर्थ हो। मैं निर्बल हूँ। आप मुझे अपने चरणोंसे ठुकराकर-फेंककर जा सकते हो।' तुलसीदास फूट-फूटकर रोने लगे—'मुझे अब आप इस रूपसे वञ्चित मत करो। मैं आपको पहिचानता हूँ। जब तक आप मुझे मेरे हृदय सर्वस्व श्रीरामका दर्शन करानेका वचन नहीं दोगे, मैं अपना वश रहते तो आपका चरण छोड़नेसे रहा।'

मैं समझ गया कि इनसे बहाना बनानेसे कोई लाभ नहीं। सब श्रोता जा चुके थे। स्वयं मुझे तुलसीदास अत्यन्त प्रिय थे। मैंने अपनेको प्रकट करके उनको वचन दिया—'तुम चित्रकूट चलकर भजन करो। उस स्थानपर श्रीरघुनाथ सानुज सदा निवास करते है। मैं वचन देता हूँ कि उनसे तुमको साक्षात् दर्शन देनेकी प्रार्थना करूँगा। मुझे विश्वास है कि मेरी प्रार्थना मेरे स्वामी अवश्य स्वीकार कर लेंगे।'

मेरे आश्वासनसे तुलसीदास सन्तुष्ट हो गये। वे इतना तो समझ ही सकते थे कि मैं श्रीरघुनाथका सेवक हूँ। मैं अपने स्वामीसे प्रार्थना ही कर सकता हूँ। वे काशीसे चित्रकूट पहुँच गये। मन्दाकिनीके तटपर यज्ञवेदीके नीचे उन्होंने अपनी कुटिया बनायी। वनवासके समय प्रभुकी पर्णकुटीके नीचेका यह स्थान परम-पावन था।

मैंने अपने आराध्यसे प्रार्थना की तो उन उदार शिरोमणिने कहा—'पवनकुमार ! तुम किसीके लिए आवेदन करोगे तो वह सदा स्वीकार

होगा। हम तुलसीदासको एक नहीं, दो बार दर्शन देंगे ; किन्तु वे पहिचान लें, इसका दायित्व तुम्हारा है।'

सचमुच महत्त्वकी बात तो उन सर्वेश्वरको पहिचान लेना ही है। वे सर्वरूप सर्वत्र सब समय उपस्थित हैं ; किन्तु माया-मोहित जीव उन्हें पहिचान कहाँ पाता है और जब तक पहिचान न ले, दर्शनका कोई लाभ उसे नहीं होता।

गोस्वामी तुलसीदास चित्रकूटमें रहकर अनुष्ठान कर रहे थे। एक दिन वे अपनी कुटियाके बाहर खड़े थे। उनके समीपसे अश्वपर आरूढ़ सानुज श्रीरघुनाथ निकल गये।

प्रभुके चले जानेके पश्चात् मैं अपने ही वेशमें तुलसीदासके समीप गया। मैंने पूछा—'आपको श्रीरघुनाथके दर्शन हो गये ?'

'कहाँ थे प्रभु ?' तुलसीदासने चौंककर पूछा। जब उन्हें मैंने बतलाया, तब वे बहुत दुःखी हुए। फूट-फूटकर रुदन करने लगे—'मेरे समीपसे अश्वपर बैठे मेरे स्वामी निकल गये और मैंने ध्यान ही नहीं दिया। मैंने समझा कि कोई दो राजकुमार आखेट करने निकले हैं।'

मेरे पैर पकड़कर वे रो रहे थे। मैंने उन्हें पुनः दर्शन मिलनेका आश्वासन दिया। पहिचान करानेका दायित्व मेरा था। अतः मैं अधिक सतर्क हो गया।

दूसरी बार प्रभु तब पधारे जब चित्रकूटमें पर्वके अवसर पर बहुत अधिक साधु पधारे थे। महात्माओंके भोजनादिकी व्यवस्था श्रद्धालु जनोंने की थी। अकिञ्चन तुलसीदास साधुओंका सत्कार कैसे करते ? उन्होंने सोचा—'संतोंको चन्दन लगाकर चरण-वन्दना कर लूँ।'

वे चन्दन घिसनेमें लग गये। बहुत अधिक साधु आये थे, अतः पर्याप्त चन्दन घिसना था उन्हें। इसी समय श्याम-गौर बालकोंके रूपमें सानुज प्रभु पधारे और उन्होंने तुलसीदाससे कहा—'बाबा ! हमको भी चन्दन दो !'

तुलसीदासने उनकी ओर देखा ; किन्तु पहिचान नहीं सके। लेकिन उन रूपराशि बालकोंको देखकर चन्दन देना अस्वीकार भी नहीं कर सके। एक पत्तेपर थोड़ा चन्दन उन्होंने दोनों भाइयोंको दे दिया। आरसी लेकर

प्रभु तिलक करने लगे। अब मैंने तोतेका वेश बनाया और समीपके वृक्षपरसे पुकार की—

'चित्रकूटके घाट पै, भइ संतनकी भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसैं, तिलक करत रघुबीर॥'

तुलसीदासने सुना, चौंके और प्रभुको पहिचानकर उनके पाद-पद्मोंपर गिर पड़े।

इसके पश्चात् तो तुलसीदासने मेरा पीछा ही पकड़ लिया। उन्होंने अनेक रूपोंमें मेरी स्तुतियाँ लिखीं। मैं तो सदा उनका सहायक था ही, उनकी लिखी स्तुतियोंको मैंने सिद्ध मान लिया। उनके द्वारा स्तवन करने वालोंकी भी अभीष्टपूर्ति कर दिया करता हूँ।

—×—

५१—उपसंहार

'हनुमानजी ! आप हमारे कुलपुरुष मर्यादा-पुरुषोत्तमके सेवक हैं, सखा हैं और अम्बा मैथिलीके आप परमप्रिय पुत्र हैं, अतः हमारे पूज्य हैं। परम सम्मान्य हैं।' रघुकुलमें उत्पन्न कुमारोंने अन्तमें कहा—'आपके हम बच्चे ही हैं। आपने अपने वात्सल्यवश हमारे आग्रहको स्वीकार करके अपना चरित हमको सुनानेका अनुग्रह किया। हम आपके द्वारा पालित-रक्षित होते हैं। आपकी अनुकम्पाका अनुभव करके निश्चिन्त रहते हैं। हम आपकी कोई सेवा करनेमें समर्थ नहीं हैं। अतः आपके परमपावन पादारविन्दोंमें प्रणाम करते हैं।'

मुझे रघुकुलके बालकोंकी इस स्तुतिने इतना संकुचित किया, जितना आत्म-चरित सुनानेके आग्रहने नहीं किया था। मैं अपने आराध्यके कुलमें उत्पन्न इन कुमारोंका कितना सम्मान करता हूँ, यह शब्दोंमें इन्हें समझा नहीं सकता। ये मुझसे स्नेह करते हैं, मैं इसीको अपना सौभाग्य मानता हूँ। अतः अब इनसे मुझे शीघ्र विदा लेनी है।

'एक बात और हनुमानजी !' कुमारोंने उसी स्वरमें कहा—'हम तो अबोध हैं, अज्ञानी हैं। मर्यादा-पुरुषोत्तमके वंशमें होकर भी मर्यादाका पालन नहीं कर पाते। आप अपने उन अनन्त करुणाधाम आराध्यके समान

ही हमारे दोष-दुर्गुण देखे बिना हमपर सदय रहा करें और सङ्कटके समय हमारे स्मरणकी अपेक्षा किये बिना भी सहायता करते रहें।'

यह भी अच्छी रही। मैंने उनसे कहा—'देखो, मैं वानर हूँ। कोई संयम-नियम, सदाचार, शौचाचार मुझमें हो नहीं है—मेरी जातिमें तो सर्वथा नहीं है। अतः ये सब सद्गुण किसीमें हैं या नहीं, यह देखनेका न मुझे स्वत्व है, न मेरा यह स्वभाव है। श्रीरघुनाथका नाम, उनका भुवन-पावन चरित तथा उनके वंशज मुझे स्वभावसे प्राणप्रिय हैं।'

अब बालकोंके आहार-विश्रामका समय हो चुका था। मुझे भी किम्पुरुषवर्षमें भगवती रङ्गवल्लीके समीप सायंकालीन श्रीराम-नाम-संकीर्तनमें जानेकी शीघ्रता थी। अतएव मैंने कुमारोंसे विदा माँगी। हमारी परस्पर मिलन एवं विदाकी तो एक ही ध्वनि है—

'जय जय श्रीसीताराम !'
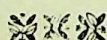
५२—परिशिष्ट

(१)

स्वरूप एवं वैशिष्टय

स्वरूप——

आराधनामें श्रीहनुमानजीके दो रूपोंका वर्णन शास्त्रोंमें मिलता है। प्रधान रूप एक मुख है जो वानर-मुख है। मुख उगते हुए बाल सूर्यके समान अरुण वर्ण है; किन्तु भयानक है। नेत्र गोल, पीले रंगके हैं। सम्पूर्ण शरीरमें बड़े-बड़े स्वर्णवर्णके बाल हैं। बहुत बड़ी पूँछ है; किन्तु उसके सिरेपर बालोंका गुच्छा नहीं है। क्योंकि श्रीहनुमानजी गोपुच्छ वानर नहीं हैं। पूँछ जड़की ओर मोटी है। और क्रमशः पतली होती गयी है।

श्रीहनुमानजीकी कटिमें लाल कछनी है। मूँजसे बना मोटा जनेऊ पहिने हैं। हाथोंमें लम्बे अत्यन्त सुदृढ़ उज्वल नख हैं। गलेमें तुलसीके बड़े दानोंकी कण्ठी है। मस्तकपर तिलक है, जिसके बीचमें लाल रेखा है।

इस रूपमें ध्यानके लिए कुछ भेद भी होते हैं। जैसे हनुमानजीने सर्वाङ्गमें तेलमें मिला सिन्दूर लगा रखा है। उनके गलेमें, कलाइयोंमें; भुजाओंमें, पैरोंमें भी रत्नजटित आभूषण हैं।

वामहस्त गदायुक्तम्।

—मन्त्रमहार्णव, पूर्वखण्ड, नवम तरंग

श्रीहनुमानजी बायें हाथमें गदा लिये रहते हैं। दाहिने हाथमें अभय-मुद्रा अथवा राम-नाम अङ्कित ध्वज अथवा गिरिशिखर धारण किये हैं।

अनुष्ठान भेदसे हनुमानजीके लङ्का-दहनके पश्चात्के रूपका ध्यान भी होता है और तब उनका मुख, पूँछ कृष्ण-वर्ण है, ऐसा ध्यान किया जाता है।

पञ्चमुख हनुमानजीका वर्णन भी शास्त्रोंमें मिलता है। देशमें कहीं-कहीं पञ्चमुख मारुति मूर्ति हैं।

पञ्चास्यमच्युतमनेक विचित्र वीर्यं
वक्त्रं सुशङ्ख विधृतं कपिराजवर्यम्।
पीताम्बरादि मुकुटैरभिशोभिताङ्गं
पिङ्गाक्षमाद्यमनिशं मनसा स्मरामि ॥

—श्रीविद्यार्णवतन्त्र, हनुमत्प्रकरण, २३. ११

अनेक प्रकारके पाँच मुखों वाले, विचित्र पराक्रमशील, शङ्खाकार मुख वाले, कपिराजवर्य, पीताम्बर, मुकुट आदिसे शोभिताङ्ग, पीले नेत्रवाले आदिदेव हनुमानजीको हम मनसे अहर्निशि स्मरण करते हैं।

श्रीविद्यार्णवतन्त्रके इसी हनुमत्प्रकरणमें बतलाया गया है कि श्रीहनुमानजी पञ्चमुख दस भुजाओं वाले हैं। उनका १. पूर्व दिशाका मुख वानरके समान है, उसकी कान्ति सूर्य सदृश है; २. दक्षिण मुख नृसिंह जैसा है, बहुत भीषण है, तेजोदीप्त है; ३. पश्चिम मुख गरुड़के समान है, यह रोगशमनकारी और विषको निष्प्रभाव करने वाला है; ४. उत्तर मुख नीलवाराह जैसा है; ५. ऊर्ध्वमुख हयग्रीवका है, यह दानव नाशक है।

श्रीहनुमानजीके दस हाथोंके आयुधोंका वर्णन इस प्रकार है—१. खांडा, २. त्रिशूल, ३. खट्वाङ्ग, ४. अंकुश, ५. पर्वत, ६. खम्भा, ७. मुष्टिका, ८. गदा, ९. वृक्ष-शाखा, और १०. पाश।

श्रीहनुमानजीके इस पञ्चमुख धारणकी कथा तो मुझे नहीं मिली है; किन्तु वे भगवान-शिवके अवतार हैं और शङ्करजी पञ्चमुख हैं, अतः उनके अंश होनेसे सहज रूपमें हनुमानजी भी पञ्चमुख हैं। यह पञ्चमुख रूप अनुष्ठान विशेषमें ध्यान करनेके लिए है।

महर्षि मरीचि प्रणीत विमानार्चन कल्पमें श्रीहनुमानजीके स्वरूप वर्णनमें कहा गया है—

'हनूमान् श्वेतवस्त्रधरः कपिरूपः सर्वाभरणभूषितः द्विभुजः श्यामाङ्गः।'

हनुमानजी श्वेतवस्त्र धारण करते हैं, कपिरूप हैं, सर्वाभरण भूषित हैं, द्विभुज हैं और कृष्णवर्ण हैं। ये श्रीरामके दाहिने भागमें (चरणोंके समीप) बैठते हैं।

वैशिष्ट्य—

श्रीहनुमानजी सर्वसद्गुणगणैक धाम हैं। इसलिए उनमें कौन-सा सद्गुण है और कौन-सा नहीं है, यह कहना ही नहीं बनता। उनको ज्ञानियोंमें अग्रगण्य माना गया है। वे व्याकरण, ज्योतिष तथा संगीतके आद्याचार्योंमें आते हैं। वे महावीर तो हैं ही, बाल ब्रह्मचारी हैं।

संगीत शास्त्रके तीन प्राचीन आचार्य कहे जाते हैं—हनुमान, शार्दूल तथा काहल। इनमें तीन मत मान्य हैं—हनुमन्मत, शिवमत एवं भरतमत। हनुमन्मतका ग्रन्थ 'संगीत-पारिजात' प्राप्त होता है। भद्र, ग्रीव, भाल, प्रकाश, विन्दु, सन्धिप्रच्छादन, उद्वाहितादि संगीतालङ्कारोंके लक्षणमें हनुमानजीके निर्देशका उल्लेख मिलता है।

'अनूप संगीत रत्नाकर' में संगीतके आठ प्रवर्तकाचार्य माने गये हैं। उनके नाम हैं—१. हनुमान, २. मातृगुप्त, ३. रावण, ४. नन्दिकेश्वर, ५. स्वातिर्गण, ६. विन्दुराज, ७. क्षेत्रराज और, ८. काहल।

श्रीहनुमानजीके गायनकी एक कथा स्कन्द पुराणमें प्राप्त होती है। एक बार भगवान विष्णु तथा शिव एक साथ महर्षि गौतमके आश्रमपर पधारे। महर्षिने दोनोंकी पूजा की, स्तुति की। दोंनोने वरदान माँगनेको कहा तो महर्षिने माँगा—'यदि आप दोनों प्रसन्न हैं तो आज मेरे यहाँका आतिथ्य ग्रहण करें।'

दोनोंने स्वीकार कर लिया। दोनों गोदावरी स्नान करने गये तो देर तक जल-क्रीड़ा करते रहे। परस्पर जल उलीचते रहे। स्नान समाप्त हुआ। दोनों जलसे निकलकर बैठे तो हनुमानजीने आकर गायन प्रारम्भ कर दिया। यह संगीत ऐसा था कि किसीको भोजनकी सुधि ही नहीं रही। बहुत विलम्ब होता देखकर महर्षि गौतमने आकर प्रार्थना की।

भोजनके अनन्तर फिर हनुमानजीसे गायनके लिए कहा गया। हनुमानजीके गायनसे भगवान विश्वनाथ ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपना एक

चरण हनुमानजीकी अञ्जलिमें रख दिया और दूसरे चरणसे उनके ललाट, ठुड्डी, कण्ठ आदिका स्पर्श करते हुए, उसे उनके हृदयपर रखकर लेट गये।

भगवान विष्णुने हर्षित होकर कहा--'आज समस्त लोकोंमें हनुमानसे अधिक धन्य कौन है जिन्हें सदाशिवने स्वयं अपने श्रीचरण प्रदान किये।*

सृष्टिकर्ता भगवान ब्रह्माजीसे प्रवर्तित वैखानस सम्प्रदायके प्रधानाचार्योंमें हनुमानजी हैं।

संकटमें सहायक, भक्त-भयहारी तो श्रीहनुमानजी स्वभावसे हैं। भूत-प्रेतोंकी पीड़ासे सन्त्रस्त लोग पवन-कुमारके पादपद्मोंकी शरण लेते हैं और श्रीमहावीरके स्मरणसे प्रेत-पीड़ा शान्त हो जाती है, यह बहुत अधिक लोगोंका अनुभव है।

सकाम आराधक जहाँ श्रीहनुमानजीकी आराधना करके अपनी विविध प्रकारकी कामनाओंकी पूर्ति प्राप्त करते हैं, निष्काम भावसे शरण आये साधकोंको श्रीरामदूत भव-भय-परित्राणकारिणी ; निखिल संक्लेश-हारिणी मर्यादा-पुरुषोत्तमके पादारविन्दोंमें अमल भक्ति प्रदान करते हैं।

ऐसी कोई कामना नहीं जो श्रीहनुमानजीकी आराधनासे पूर्ण न हो सके। ऐसा कोई सङ्कट नहीं, कोई क्लेश नहीं जो श्रीपवनकुमार दूर न कर सकते हों। उनका नाम ही सङ्कटमोचन है। श्रीरघुनाथजीके चरणों तक पहुँचाने वाले तो वे श्रीअयोध्यानाथके अत्यन्त अन्तरङ्ग प्रधान परिकर हैं। अतः रामभक्तोंके प्रथम-आराध्य हैं।

—:×:—

---

* यह पूरी कथा 'शिवचरित' में गयी है।

अनुष्ठान–स्तुति–आरती

श्रीहनुमानजीके अनेक अनुष्ठान ग्रन्थोंमें मिलते हैं। अनुष्ठान तभी सफल होते हैं, जब उन्हें सविधि किया जाय। अतः अनुष्ठान तो किसी जानकारसे मिलकर सीखकर करना चाहिए। यज्ञ ऐसा विषय नहीं है कि पुस्तक पढ़कर अथवा पत्र-व्यवहारसे जानकर किया जा सकता है। यहाँ केवल अनुष्ठान सम्बन्धी सामान्य नियमोंकी चर्चा की जा सकती है।

१- श्रीहनुमानजीका अनुष्ठान करते समय आवश्यक है कि ब्रह्मचर्यका पूरा पालन किया जाय।

२- स्त्रियाँ भी श्रीहनुमानजीकी पूजा-आराधना कर सकती हैं। इनकी आराधनामें स्त्री-पुरुष सब वर्णोंका अधिकार है।

३- अनुष्ठान-कालमें तेल लगाना, बाल बनवाना, नशा सेवन, मांसाहार, अण्डा अथवा लशुन-प्याज आदि अपवित्र वस्तुओंका सेवन वर्जित है। जिन पदार्थोंमें चर्बी पड़ती है उन साबुन, स्नो आदिका सेवन भी नहीं करना चाहिए।

४- सम्भव हो तो अनुष्ठान-कालमें सब प्रकारकी दाल, मूली, गाजर, शलजम, सेम, गोभी, शहदका त्याग करके एक समय भोजन करना चाहिए और दूसरे समय दूध-फल लेना चाहिए।

५- भूमि या तख्तपर सोना उत्तम माना जाता है।

सब हनुमत् मन्त्रोंका बीज 'हूं' है। 'हूं हनुमते नमः' यह हनुमानजीका सामान्य मन्त्र है। इसके जपसे भी बहुत लाभ होता है।

हनुमान चालीसा, हनुमान बाहुक, बजरङ्ग बाण, संकटमोचन अष्टक, लांगूलोपनिषत् तथा वाल्मीकीय रामायणका सुन्दरकाण्ड—ये हनुमानजीके अनुष्ठानमें पाठके प्रधान ग्रन्थ हैं। जो संस्कृत नहीं पढ़ सकते वे श्रीराम-चरितमानसका सुन्दरकाण्ड नित्य-पाठके लिए आधार बनाते हैं।

हनुमान चालीसाका प्रतिदिन १०८ पाठ लगातार ४० दिन करनेसे लोगोंको कठिन सङ्कटसे परित्राण मिलते देखा गया है।

हनुमान बाहुक, संकटमोचन स्तोत्रका पाठ रोगसे छूटनेके लिए किया जाता है।

बजरङ्गबाणका अनुष्ठान शत्रु-भयसे छुटकारेके लिए अथवा प्रेतबाधा दूर करनेके लिए किया जाता है।

वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका पाठ स्वयं प्रतिदिन करने अथवा ब्राह्मणसे ४० दिन—कम-से-कम ९ दिन करवा देनेसे शनि-ग्रहकी बाधा शान्त हो जाती है।

× × × ×

स्तुति

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥

माता अञ्जनाके लाड़ले, महावीर, श्रीजानकीजीके शोकको नष्ट करने वाले, अक्षयकुमारको मारने वाले, लङ्काको भय देने वाले कपीशकी हम वन्दना करते हैं।

× × × ×

वीताखिलविषयेच्छं जातानन्दाश्रुपुलकमत्यच्छम् ।
सीतापतिदूताद्यं वातात्मजमद्य भावये हृद्यम् ॥१॥

जिनके हृदयसे सम्पूर्ण विषय-भोगकी इच्छा निकल गयी है, (श्रीराम प्रेममें) जिनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु प्रवाह चल रहा है और शरीर अत्यन्त रोमाञ्चित हो रहा है, श्रीसीतानाथके उनप्रधान दूत पवनकुमारका मैं इस समय हृदयमें ध्यान करता हूँ।

तरुणारुणमुखकमलं करुणारसपूरितापाङ्गम् ।
संजीवनमाशासे मञ्जुलमहिमानमञ्जनाभाग्यम् ॥२॥

बालसूर्यके समान अरुणमुख, करुणारससे पूर्ण दृगाञ्चल वाले माता अञ्जनाके घनीभूत-भाग्य-मूर्ति, मञ्जुल महिमाशाली, जीवनदाता (हनुमानजी) से हम आशा करते हैं।

शम्बरवैरिशरातिगमम्बुजदलविपुललोचनोदारम् ।
कम्बुगलमनिलदिष्टं बिम्बज्वलितोष्ठमेकमवलम्बे ॥३॥

कामदेवके वाण जिनतक पहुँच नहीं पाते, उन कमलदल दीर्घ उदार लोचन, कम्बु कण्ठ, प्रज्वलित बिम्बाधरोष्ठ पवनके परम सौभाग्य (श्रीहनुमानजी) का ही हम एकमात्र आश्रय लेते हैं।

दूरीकृतसीतार्तिः प्रकटीकृतरामवैभवस्फूर्तिः ।
दारितदशमुखकीर्तिः पुरतो मम भातु हनुमतो मूर्तिः ॥४॥

श्रीसीता-सङ्कटको दूर करके, श्रीरामके ऐश्वर्यकी स्फूर्ति प्रकटकर दशग्रीवकी कीर्तिका दलन करदेनेवाले श्रीहनुमानजीकी मूर्ति मेरे सम्मुख प्रकट हो।

वानरनिकराध्यक्षं दानवकुलकुमुदरविकरसदृशम् ।
दीनजनावनदीक्षं पवनतपः पाकपुञ्जमद्राक्षम् ॥५॥

सम्पूर्ण वानर समूहके अध्यक्ष, दानवकुल कुमुदिनीके लिए (संकुचित करने वाले) सूर्य किरणोंके समान, दीनजनोंकी रक्षाके व्रती, पवनकी तपस्याके घनीभूत परिपाक (श्रीमारुति) का मैंने दर्शन किया।

एतत् पवनसुतस्य स्तोत्रं यः पठति पञ्चरत्नाख्यम् ।
चिरमिह निखिलान्भोगान् भुक्त्वा श्रीरामभक्तिभाग्भवति ॥६॥

——श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य

यह पञ्चरत्ननामक श्रीपवनकुमारका स्तोत्र जो पढ़ता है, वह बहुत दिनों तक सभी भोगोंको भोगकर श्रीराम-भक्ति पानेका अधिकारी हो जाता है।

× × × ×

कदा सीताशोकत्रिशिखजलदं चाञ्जनिसुतं
चिरञ्जीवं लोके भजकजनसंरक्षणकरम् ।
अये वायोः सूनो रघुवरपदाम्भोजमधुप
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥

श्रीसीता शोकाग्निको बुझानेके लिए मेघके समान अञ्जनीनन्दन, संसारमें चिरजीवी, भजन करने वाले लोगोंके संरक्षकको मैं कब 'हे पवन-

पुत्र, रघुवर-चरण-कमल-चञ्चरीक ! (मुझपर) प्रसन्न हो !'—ऐसा पुकारते हुए अपने दिनोंको एक क्षणके समान व्यतीत करूँगा।

× × × ×

उल्लंघ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥

खेल-खेलमें ही समुद्रके अपार जलको लाँघकर जिन्होंने श्रीजानकीजीकी शोकाग्नि ली और उसीसे लङ्काको भस्म कर दिया, उन अञ्जनि-नन्दनको हम हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं।

× × × ×

पद्मरागमणिकुण्डलत्विषा पाटलीकृत कपोलमण्डलम् ।
दिव्यदेह कदलीवनान्तरे भावयामि पवमाननन्दनम् ॥

पद्मरागमणिके कुण्डलोंकी कान्तिसे जिनके कपोल मण्डल गुलाबी लग रहे हैं, कदली वनमें बैठे उन दिव्य देहवाले श्रीपवनकुमारका हम ध्यान करते हैं।

× × × ×

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥

जहाँ-जहाँ श्रीरघुनाथजी (के गुण, नाम, यश, लीला) का कीर्तन होता है, वहाँ-वहाँ हाथ जोड़कर सिरसे लगाये, नेत्रोंमें अश्रु भरे (उपस्थित रहने वाले) राक्षसान्तक श्रीमारुतिको (अवश्य) नमस्कार करना चाहिए।

× × × ×

श्रीहनुमानजीका महामन्त्र

जयत्यति बलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयतु सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
हनूमान् शत्रुसेनानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत् ।
शिलाभिस्तु प्रहरतः पादपैश्च पुनः पुनः ।
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम् ।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥

——वाल्मीकीय रामायण, सुन्दरकाण्ड, ४२ . ३३ से ३६

अत्यन्त बलवान श्रीरामकी जय हो ! महान बलवान लक्ष्मणकी जय हो ! श्रीराघवके द्वारा पालित राजा सुग्रीवकी जय हो !!

मैं कोसलेन्द्र निष्पापकर्मा श्रीरामका दास, शत्रु सेनाओंका विनाशक मारुतनन्दन हनुमान हूँ ।

शिलाओंसे और बार-बार वृक्षोंसे जब मैं प्रहार करने लगता हूँ तो युद्धमें सहस्रों रावण मेरा सामना नहीं कर सकते ।

लङ्कापुरीको रौंदकर, श्रीमैथिलीको प्रणाम करके, सब राक्षसोंके देखते हुए मैं अपना उद्देश्य पूरा करके जाऊँगा ।

—×—

सङ्कटमोचनाष्टक

(गोस्वामी तुलसीदास कृत)

बाल समय रवि भच्छि लियो तब तीनहुँ लोक भयो अँधियारो ।
ताहि सो त्रास भयो जगको, यह सङ्कट काहुसों जात न टारो ॥
देवन आनि करी बिनती तब छाँड़ि दियो रवि-कष्ट निवारो ।
को नहिं जानत है जगमें कपि सङ्कटमोचन नाम तिहारो ॥१॥
बालिकी त्रास कपीस बसैं गिरि जात महाप्रभु पंथ निहारो ।
चौंकि महामुनि साप दियौ तब चाहिय कौन विचार विचारो ॥

कै द्विज रूप लिवाय महाप्रभु सो तुम दासको सोक निवारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि सङ्कटमोचन नाम तिहारो।।२।।

अङ्गदके सँग लेन गये सिय खोज कपीस ये बैन उचारो।
जीवत ना बचिहौ हमसों जु बिना सुधि लाए इहाँ पगु धारो।।
हेरि थके तट सिन्धु सबै तब लाय सिया सुधि प्रान उबारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि सङ्कटमोचन नाम तिहारो।।३।।

रावन त्रास दई सियको सब राक्षसिसों कहि सोक निवारो।
ताहि समय हनुमान महाप्रभु जाय महा रजनीचर मारो।।
चाहत सीय असोक सों आगि सु दै प्रभु मुद्रिका सोक निवारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि सङ्कटमोचन नाम तिहारो।।४।।

बान लग्यो उर लछिमनके तब प्रान तजे सुत रावन मारो।
लै गृह वैद्य सुषेन समेत तबै गिरि द्रोन सुबीर उपारो।।
आनि सजीवन हाथ दई तब लछिमनके तुम प्रान उबारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि सङ्कटमोचन नाम तिहारो।।५।।

रावन जुद्ध अजान कियो तब नागकी फाँस सबै सिर डारो।
श्रीरघुनाथ समेत सबै दल मोह भयो यह सङ्कट भारो।।
आनि खगेस तबै हनुमान जु बन्धन काटि सु त्रास निवारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि सङ्कटमोचन नाम तिहारो।।६।।

बन्धु समेत जबै अहिरावन लै रघुनाथ पताल सिधारो।
देबिहिं पूजि भली विधिसों बलि देउ सबै मिलि मंत्र बिचारो।।
जाय सहाय भयो तबहीं अहिरावन सेन समेत सँहारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि सङ्कटमोचन नाम तिहारो।।७।।

काज किये बड़ देवनके तुम वीर महाप्रभु देखि बिचारो।
कौनसो संकट मोर गरीबको जो तुमसों नहिं जात है टारो।।
वेगि हरो हनुमान महाप्रभु जो कछु संकट होय हमारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि सङ्कटमोचन नाम तिहारो।।८।।

लालदेह लाली लसै, अरु धरि लाल लँगूर।
वज्र देह दानव-दलन जय जय जय कपि सूर।।

———

आरती

आरति पवन-कुमारकी कीजै ।
आर्ति, कष्ट, सब संकट छीजै ।।

अतुलित बलिनिध अञ्जनि-नन्दन ।
विपति-विदारक, असुर-निकन्दन ।।
रघुपति प्रिय खल-दल-मदगञ्जन ।
जनरञ्जन, भव-भीति-विभञ्जन ।।

शंकर-सुत हनुमानकी जै जै ।
आरति पवन-कुमारकी कीजै ।।

आरति रामदूत गुण-मन्दिर ।
देह विशाल स्वर्णगिरि-सुन्दर ।।
संत-साधु-साधकजन रक्षक ।
भूत - पिशाच - प्रेतगण भक्षक ।।

कृपानिधान कृपा अब कीजै ।
आरति पवन-कुमारकी कीजै ।।

आरति राम-भक्तिके दाता ।
विद्या-बुद्धि-विवेक विधाता ।।
सन्तत साधक-सङ्कट-त्राता ।
ज्ञानि शिरोमणि, प्रेम प्रदाता ।।

जनकी प्रणति प्रेमसे लीजै ।
अपना जान अभय अब कीजै ।।
आरति पवन-कुमारकी कीजै ।
आर्ति, कष्ट, सब संकट छीजै ।।

—×—

लाङ्गूलोपनिषत्

ॐ अस्य श्रीअनन्तघोरप्रलयज्वालाग्निरौद्रस्य वीरहनुमत्साध्यसाधनाघोरमूलमन्त्रस्य ईश्वर ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीरामलक्ष्मणौ देवता। सौं बीजम्। अञ्जनासूनुरिति शक्तिः। वायुपुत्र इति कीलकम्। श्रीहनुमत्प्रसादसिद्धयर्थं भूर्भुवस्स्वर्लोकसमासीनतत्त्वंपदशोधनार्थं जपे विनियोगः।

ॐ अस्य श्रीअनन्तघोरप्रलयज्वालाग्निरौद्रस्य वीरहनुमत्साध्यसाधनाघोरमूलमन्त्रस्य ईश्वर ऋषये नमः शिरसि। अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे। श्रीरामलक्ष्मणौ देवतायै नमः हृदये। सौं बीजं नमः कण्ठकूपे। अञ्जनासूनुरिति शक्तिः नमः गुह्ये। वायुपुत्र इतिकीलकं नमः नाभौ। श्रीहनुमत्प्रसादसिद्धयर्थं भूर्भुवस्स्वर्लोकसमासीनतत्त्वंपदशोधनार्थंजपे विनियोगः नमः सर्वाङ्गे।

ॐ भूः नमो भगवते दावानलकालाग्निहनुमते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। हृदयाय नमः। ॐ भुवः नमो भगवते चण्डप्रतापहनुमते तर्जनीभ्यां नमः। शिरसे स्वाहा। ॐ स्वः नमो भगवते चिन्तामणिहनुमते मध्यमाभ्यां नमः। शिखायै वषट्। ॐ महः नमो भगवते पातालगरुडहनुमते अनामिकाभ्यां नमः। कवचाय हुम्। ॐ जनः नमो भगवते कालाग्निरुद्रहनुमते कनिष्ठिकाभ्यां नमः। नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ तपः सत्यं नमो भगवते भद्रजातिविकटरुद्रवीरहनुमते करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। अस्त्राय फट्। पाशुपतेन दिग्बन्धः। अथ ध्यानम्—

वज्राङ्गं पिङ्गनेत्रं कनकमयलसत्कुण्डलाक्रान्तगण्डं
दम्भोलिस्तम्भसारप्रहरणविवशीभूतरक्षोऽधिनाथम्।
उद्यल्लाङ्गूलघर्षप्रचलजलनिधिं भीमरूपं कपीन्द्रं
ध्यायन्तं रामचन्द्रं प्लवगपरिवृढं सत्त्वसारं प्रसन्नम्॥

इति मानसोपचारैः संपूज्य, ॐ नमो भगवते दावानलकालाग्निहनुमते [जयश्रियो जयजीविताय] धवलीकृतजगत्त्रय वज्रदेह वज्रपुच्छ वज्रकाय वज्रतुण्ड वज्रमुख वज्रनख वज्रबाहो वज्ररोम वज्रनेत्र वज्रदन्त वज्रशरीर सकलात्मकाय भीमकर पिङ्गलाक्ष उग्र प्रलयकालरौद्र

वीरभद्रावतार शरभसालुवभैरवदोर्दण्ड लङ्कापुरीदाहन उदधिलङ्घन दशग्रीवकृतान्त सीताविश्वास ईश्वरपुत्र अञ्जनागर्भसंभूत उदयभास्कर-बिम्बानलग्रासक देवदानवऋषिमुनिवन्द्य पाशुपतास्त्रब्रह्मास्त्रबैलवास्त्रनाराय-णास्त्रकालशक्तिकास्त्रदण्डकास्त्रपाशाघोरास्त्रनिवारण पाशुपतास्त्रब्रह्मास्त्रबैल-वास्त्रनारायणास्त्रमृड सर्वशक्तिग्रसन ममात्मरक्षाकर परविद्यानिवारण आत्म-विद्यासंरक्षक अग्निदीप्त अथर्वणवेदसिद्धस्थिरकालाग्निनिराहारक वायुवेग मनोवेग श्रीरामतारकपरब्रह्मविश्वरूपदर्शन लक्ष्मणप्राणप्रतिष्ठानन्दकर स्थल-जलाग्निमर्मभेदिन् सर्वशत्रून् छिन्धि छिन्धि मम वैरिणः खादय खादय मम संजीवनपर्वतोत्पाटन डाकिनीविध्वंसन सुग्रीवसख्यकरण निष्कलङ्क कुमारब्रह्मचारिन् दिगम्बर सर्वपाप सर्वग्रह कुमारग्रह सर्वं छेदय छेदय भेदय भेदय भिन्धि भिन्धि खादय खादय टङ्क टङ्क ताडय ताडय मारय मारय शोषय शोषय ज्वालय ज्वालय हारय हारय देवदत्तं नाशय नाशय अति-शोषय अतिशोषय मम सर्वं च हनुमन् रक्ष रक्ष ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं हुं फट् घे घे स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते चण्डप्रतापहनुमते महावीराय सर्वदुःखविनाश-नाय ग्रहमण्डलभूतमण्डलप्रेतपिशाचमण्डलसर्वोच्चाटनाय अतिभयङ्करज्वर-माहेश्वरज्वर- विष्णुज्वर-ब्रह्मज्वर-वेतालब्रह्मराक्षसज्वर-पित्तज्वर-श्लेष्मसा-न्निपातिकज्वर-विषमज्वर-शीतज्वर-एकाहिकज्वर-द्व्याहिकज्वर-त्र्यैहिकज्वर चातुर्थिकज्वर-अर्धमासिकज्वर-मासिकज्वर-षाण्मासिकज्वर-सांवत्सरिकज्वर-अस्थ्यन्तर्गतज्वर-महापस्मार-भ्रमिकापस्मारांश्च भेदय भेदय खादय खादय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं हुं फट् घे घे स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते चिन्तामणिहनुमते अङ्गशूल-अक्षिशूल-शिरःशूल-गुल्मशूल-उदरशूल-कर्णशूल-नेत्रशूल गुदशूल-कटिशूल-जानुशूल-जङ्घाशूल हस्तशूल-पादशूल-गुल्फशूल-वातशूल-पित्तशूल-पायुशूल-स्तनशूल-परिणामशूल परिधामशूल-परिबाणशूल-दन्तशूल-कुक्षिशूल सुमनःशूल-सर्वशूलानि निर्मूलय निर्मूलय दैत्यदानवकामिनीवेतालब्रह्मराक्षसकोलाहलनागपाशानन्तवासुकि-तक्षककार्कोटकलिङ्गपद्मककुमुदज्वलरोगपाशमहामारीन् कालपाशविषं निर्विषं कुरु कुरु ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं हुं फट् घे घे स्वाहा ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ग्लां ग्लीं ग्लूं ॐ नमो भगवते पातालगरुडहनुमते भैरववनगतगजसिंहेन्द्राक्षीपाशबन्धं छेदय छेदय प्रलयमारुत कालाग्नि-हनुमन् शृङ्खलाबन्धं विमोक्षय विमोक्षय सर्वग्रहं छेदय छेदय मम सर्वका-र्याणि साधय साधय मम प्रसादं कुरु कुरु मम प्रसन्न श्रीरामसेवकसिंह

भैरवस्वरूप मां रक्ष रक्ष ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लां ह्लीं क्ष्मौं भ्रैं श्रां श्रीं क्लां क्लीं क्रां क्रीं ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः ह्लां ह्लीं हुं ख ख जय जय मारण मोहन घूर्ण घूर्ण दम दम मारय मारय वारय वारय खे खे ह्लां ह्लीं ह्लूं हुं फट् घे घे स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते कालाग्निरौद्रहनुमते भ्रामय भ्रामय लव लव कुरु कुरु जय जय हस हस मादय मादय प्रज्वलय प्रज्वलय मृडय मृडय त्रासय त्रासय साहय साहय वशय वशय शामय शामय अस्त्रत्रिशूलडमरुखड्ग-कालमृत्युकपालखट्वाङ्गधर अभयशाश्वत हुं हुं अवतारय अवतारय हुं हुं अनन्तभूषण परमन्त्र-परयन्त्र-परतंत्र-शतसहस्र-कोटितेजःपुञ्जं भेदय भेदय अग्निं बन्धय बन्धय वायुं बन्धय बन्धय सर्वग्रहं बन्धय बन्धय अनन्तादिदुष्ट-नागानां द्वादशकुलवृश्चिकानामेकादशलूतानां विषं हन हन सर्वविषं बन्धय बन्धय वज्रतुण्ड उच्चाटय उच्चाटय मारणमोहनवशीकरणस्तम्भनजृम्भणाक-र्षणोच्चाटनमिलनविद्वेषणयुद्धतर्कमर्माणि बन्धय बन्धय ॐ कुमारीपदत्रिहार-बाणोग्रमूर्तये ग्रामवासिने अतिपूर्वशक्ताय सर्वायुधधराय स्वाहा अक्षयाय घे घे घे घे ॐ लं लं लं घ्रां घ्रौं स्वाहा ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं हुं फट घे घे स्वाहा ॥

ॐ श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः ॐ नमो भगवते भद्रजानिकटरुद्रवीर-हनुमते टं टं टं लं लं लं लं देवदत्तादिगम्बराष्टमहाशक्त्यष्टाङ्गधर अष्ट-महाभैरवनवब्रह्मस्वरूप दशविष्णुरूप एकादशरुद्रावतार द्वादशार्कतेजः त्रयोदशसोममुख वीरहनुमन् स्तंभिनीमोहिनीवशीकरिणीतन्त्रैकसावयव नगर-राजमुखबन्धन बलमुखमकरमुखसिंहमुखजिह्वामुखानि बन्धय बन्धय स्तम्भय स्तम्भय व्याघ्रमुखसर्ववृश्चिकाग्निज्वालाविषं निर्गमय निर्गमय सर्वजन-वैरिमुखं बन्धय बन्धय पापहर वीर हनुमन् ईश्वरावतार वायुनन्दन अञ्जना-सुत बन्धय बन्धय श्रीरामचन्द्रसेवक ॐ ह्लां ह्लां ह्लां आसय आसय ह्लीं ह्लां घ्रौं क्रीं यं भैं म्रं म्रः हट् हट् खट् खट् सर्वजन-विश्वजन-शत्रुजन-वश्यजन-सर्वजनस्य दृशं लं लां श्रीं ह्लां ह्लीं मनः स्तम्भय स्तम्भय भञ्जय भञ्जय अद्रि ह्लीं व ह्रीं ह्रीं मे सर्व ह्रीं ह्रीं सागरह्रीं वं वं सर्वमन्त्रार्थाथर्वण-वेदसिद्धि कुरु कुरु स्वाहा । श्रीरामचन्द्र उवाच ह्रीं । श्रीमहादेव उवाच । श्रीवीरभद्रस्ती उवाच । त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ॥

इत्याथर्वणरहस्ये लाङ्गूलोपनिषत् समाप्ता

श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र'

जन्म—१४-११-१९११ ई०

स्थान—ग्राम भेलहटा, चन्दौली तहसील, वाराणसी।

शिक्षा—सामान्य हिन्दी शिक्षा। सामान्य संस्कृत, गुजराती तथा बंगला पढ़ लेना।

कार्य—सन् १९३७ से १९४१ ई. तक मासिक पत्र 'संकीर्तन' मेरठका सम्पादन। १९४० से १९७२ तक 'मानसमणि' (मासिक), रामवन (सतना) का सम्पादन। १९६९ से १९७२ तक 'विवेक-रश्मि' (मासिक) परमार्थ आश्रम, हरिद्वारका संपादन। अब १९७५ से 'श्रीकृष्ण-सन्देश' मथुराका सम्पादन।' 'कल्याण' गीताप्रेस, गोरखपुर, के हिन्दू-संस्कृति-अङ्क, 'बालकाङ्क' सतक था अङ्क, 'तीर्थाङ्क' आदि कई विशेषाङ्कोंका सम्पादन-कार्य। कैलास-मानसरोवर सहित पूरे भारतकी तीर्थ-यात्रा।

ग्रन्थ—श्रीहनुमान-चरित, शिव-चरित, शत्रुघ्नकुमारकी आत्मकथा, विशाल चार खण्डोंके श्रीकृष्ण-चरित, चार खण्डोंके श्रीरामचरित, प्रभु आवत, राक्षसराज जैसे बड़े ग्रन्थोंके अतिरिक्त सूरके पद-संग्रहोंका अनुवाद तथा मानससङ्घ, रामवन, गीताप्रेस गोरखपुरसे प्रकाशित लगभग तीन दर्जन पुस्तकोंका लेखन। गीताप्रेससे बिना लेखकके नामके प्रकाशित बाल-साहित्यकी सब पुस्तकोंके लेखक।

अन्य—श्री 'चक्र' नामसे ढाई-तीन सौ कहानियोंका लेखन। गम्भीर निबन्ध कई दर्जन 'कल्याण' तथा अन्य पत्रोंमें मुख्यतः भारतीय संस्कृति, साधना, कर्म-रहस्य तथा श्रीरामचरितमानस सम्बन्धी।

वर्तमान पता—**सम्पादक—'श्रीकृष्ण-सन्देश'**
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरा-२८१००१

श्रीसुदर्शन सिंह जी 'चक्र' की अन्य पुस्तकें

१—**भगवान वासुदेव** २३×३६'' सोलह पेजी आकारमें
पृष्ठ ४०८ मूल्य १२) ५०

२—**राम-श्यामकी झाँकी**—पाकेट आकारमें, पृष्ठ १६२,
मूल्य २) ००

३—**सखाओंका कन्हैया**—पाकेट आकारमें, पृष्ठ १६०,
मूल्य २) ००

४—**हमारी संस्कृति**
पृष्ठ २६४ मूल्य ८)००

५—**श्यामका स्वभाव**
पृष्ठ ९६ मूल्य १)२५

६—**हमारे धर्म-ग्रन्थ**—पाकेट आकारमें, पृष्ठ ८०
मूल्य १)००

७—**शत्रुघ्नकुमारकी आत्मकथा** पृष्ठ २०८
मूल्य ७)५०

प्रेस में—

·शिवस्मरण

अन्य पुस्तकें—

महामना मदनमोहन मालवीयके प्रेरक संस्मरण—
पाकेट आकारमें, पृष्ठ ६६, मूल्य १) ००

श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाके प्रेरक संस्मरण—
पाकेट आकार, पृष्ठ ६०, मूल्य १) ००

प्राप्ति स्थान
प्रकाशन विभाग
श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवासंघ
मथुरा—२८१००१ (उ० प्र०)